पादप पारिस्थितिकी, पादप भूगोल एवं जैव सांख्यिकी

(Plant Ecology, Phyto-geography & Biostatistics)

प्रो० एल एन व्यास
सेवानिवृत प्रोफेसर
वनस्पतिशास्त्र
सुखाडिया विश्वविद्यालय
उदयपुर

डॉ० आर के गर्ग
वनस्पतिशास्त्र विभाग
विद्या भवन रूरल इन्स्टीट्यूट
उदयपुर

डॉ० पी पी पालीवाल
वस्पतिशास्त्र विभाग
एम एस जे महाविद्यालय
भरतपुर

डॉ० एस के सांखला
वनस्पतिशास्त्र विभाग
राजकीय महाविद्यालय
चित्तौडगढ़

१९९३

हिमांशु पब्लिकेशन्स्

दिल्ली उदयपुर

विषय सूची

पृष्ठ

खण्ड (अ) पादप पारिस्थितिकी

1	पारिस्थितिकी	1–5
2	पर्यावरणीय कारक	6–51
3	पादप समुदाय	52–64
4	पारिस्थितिक तत्र	65–82
5	पर्यावरणीय प्रदूषण	83–106
6	प्राकृतिक ससाधनो का सरक्षण एवम् प्रबन्ध	107–135
7	पारिस्थितिक अनुकूलन	136–161
8	राजस्थान की प्राकृतिक वनस्पति	162–174

खण्ड (ब) पादप भूगोल

9	पादप भूगोल–परिचय	175–177
10	भारत के पादप भौगोलिक क्षेत्र	178–188
11	पादप वितरण	189–215

खण्ड (स) जैव सांख्यिकी

12	साख्यिकी.अर्थ, उद्देश्य, कार्य क्षेत्र व जैवसाख्यिकी	216–224
13	केन्द्रीय प्रवृति के माप	225–276
14	अपकिरण के माप	277–308

प्रस्तावना

हिन्दी, भारत की न केवल राष्ट्रभाषा है बल्कि पूरे देश मे इसका प्रयोग एक सम्पर्क भाषा के रूप मे किया जाता है। भारत जैसे देश मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे अभी तक अंग्रेजी भाषा का एकाधिकार बना हुआ था। विज्ञान विषयो मे मौलिक शोध एवम् विशिष्ठ साहित्यो का अंग्रेजी मे प्रकाशन होना तो समझ मे आता है लेकिन स्नातक स्तर पर यदि पाठ्य पुस्तके एवम् सन्दर्भ ग्रन्थो का प्रकाशन हिन्दी मे हो तो यह विद्यार्थियो के हित मे रहता है।

पूरे देश मे 10 + 2 + 3 प्रणाली लागू होने के साथ ही पाठ्यक्रमो मे परिवर्तन हुए हैं। सुखाड़िया विश्वविद्यालय दक्षिण राजस्थान का एकमात्र विश्वविद्यालय है। नये पाठ्यक्रम मे प्रथम वर्ष मे ही पादप-पारिस्थितिकी, पादप भूगोल एव जैव-सांख्यिकी का समावेश किया गया है। वैसे तो इन विषयो पर अनेक पुस्तके उपलब्ध है लेकिन सुखाड़िया विश्व-विद्यालय के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रख कर लिखी गई यह प्रथम पुस्तक है।

पुस्तक मे भाषा एव शैली को सरल रखते हुये आधारभूत ज्ञान के समावेश का प्रयास किया गया है। अंग्रेजी शब्दो के हिन्दी शब्द भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त ही प्रयोग मे लिये गये है। यथोचित चित्रो को आवश्यकतानुसार दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना एक पाठ्य-पुस्तक के रूप मे की गई है, अस्तु, पुस्तक के पूर्णतया मौलिक होने का दावा नही किया जा सकता। हम उन सभी विद्वानो के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते है जिनके ग्रन्थो का यथोचित उपयोग इस पुस्तक मे किया गया है। पुस्तक के लेखन काल मे हमे जिन साथियो, विद्वानो का जो सहयोग मिला है उसके लिये हम उनके आभारी है।

हम इस पुस्तक को शिक्षको एव विद्यार्थियो को समर्पित करते हुये गौरवान्वित अनुभव करते है। संशोधन एवम् परिवर्धन हेतु पाठको के सुझाव सादर आमन्त्रित है।

—लेखकगण

खण्ड (अ) पादप पारिस्थितिकी (Plant Ecology)

अध्याय : 1

पारिस्थितिकी
(Ecology)

(अ) परिचय :

पादप पृथ्वी के हर भाग पर अर्थात् सर्वत्र स्थानो पर पाये जाते हैं। ये पहाडो की चोटियो पर जो बर्फ से ढकी रहती है, नदियो मे, गर्म जल के झरनो मे, मरुस्थल की शुष्क भूमि मे तथा समुद्र की गहराइयो मे भी उगते हैं। शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ किसी न किसी प्रकार के पादप न मिलते हो। ध्यान मे रखने योग्य विशेष बात यह है कि पृथ्वी के विभिन्न स्थानो पर पाई जाने वाली पादप जातियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, जैसे – कमल जल मे उगता है, पहाडो की चोटी या मरुस्थल मे नही। क्या आपने कभी सोचा कि इसका कारण क्या है ?

प्रत्येक जीव का स्वभाव, स्वरूप एव सरचना आदि उसके आनुवाशिक लक्षणो पर तो निर्भर करते ही है, इन पर वातावरण का भी विभिन्न प्रकार से प्रभाव पडता है। इन कारको के प्रभाव के साथ तालमेल बनाये रखने के लिये जीव अपने आप को अनुकूलित कर लेता है। भिन्न-भिन्न स्थानो पर वातावरणीय कारक भी भिन्न-भिन्न होते हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पादप पाये जाते है, जैसे – जल मे उगने वाले पौधे कमल आदि, मरुस्थली जलवायु मे नही उग पाते। इसी प्रकार जल मे मरुस्थली पादपो की उगने की सम्भावना नही रहती। इससे स्पष्ट होता है कि पादपो एव वातावरण का एक सीधा सम्बन्ध रहता है और यही कारण है कि भिन्न भिन्न स्थानो मे वातावरण के अनुसार पादप उगते है।

(ब) परिभाषा :

वैज्ञानिको ने पादपो व जन्तुओं पर पर्यावरण के विशेष प्रभाव को देखते हुये विज्ञान की एक नई शाखा को रूप दिया। प्रारम्भ मे पादप तथा जन्तु पारिस्थितिकी विज्ञान को पृथक्-पृथक् रखा गया था किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से पादपो एव जन्तुओं को पृथक्-पृथक् रख कर पारिस्थितिकी का ज्ञान अर्जित करना सही नही रहेगा। पारिस्थितिकी (Ecology) शब्द दो ग्रीक शब्दो से मिलकर बना है – Oikos = House (आवास), Logos = Study (अध्ययन), अत इस शब्द से यह स्पष्ट होता है कि यह विज्ञान की वह शाखा है जो जीव और उसके पर्यावरण के आपसी सम्बन्ध को दर्शाता है। इस शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग प्राणी वैज्ञानिक रैइटर (Reiter) ने किया, बाद मे हेकेल (Haeckel), ओडम (Odum) आदि वैज्ञानिको ने इसे अनेक प्रकार से परिभाषित किया। हेकेल की परिभाषा के अनुसार पारिस्थितिकी विज्ञान की वह शाखा है जिसके अतर्गत जीवो और उनके बाह्य वातावरण के पारिस्परिक सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

पादप पारिस्थितिकी के तीन पहलू या शाखाऐं हैं –

(1) **स्वपारिस्थितिकी** (Autecology) :-- इसके अतर्गत एक ही जाति के पादप का इसके पर्यावरण के साथ सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

(2) **समुदाय पारिस्थितिकी** (Syn-ecology) :-- इसके अन्तर्गत किसी पादप समुदाय (समूह) तथा उनके वातावरण सम्बन्धो का अध्ययन किया जाता है।

(3) **जीन-पारिस्थितिकी** (Gene-ecology) :-- इसके अन्तर्गत आनुवाशिकी क्षमता के आधार पर किसी जाति मे पर्यावरण के प्रभाव से जो विभिन्नताऐं उत्पन्न होती गई उनका अध्ययन किया जाता है।
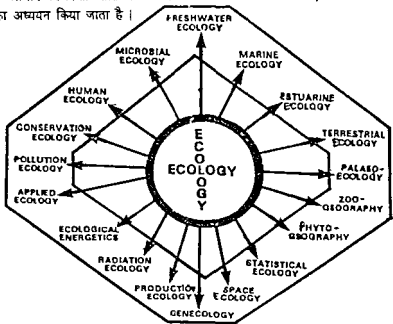
चित्र 1 1 पारिस्थितिक विज्ञान की विभिन्न शाखाऐं

उपरोक्त शाखाओं के अतिरिक्त पारिस्थितिकी को कुछ अन्य उप शाखाओं मे विभाजित किया गया है जैसे

(1) **समिष्ट पारिस्थितिकी** (Population ecology) : एक ही जाति के जीव-समूह पर वातावरण के प्रभावो का अध्ययन।

(2) **पारिस्थितिक - तत्र पारिस्थितिकी** (Ecosystem ecology) : सभी जीव (पादप एव जन्तु), भौतिक प्रक्रियाओं तथा रसायनिक चक्रो का सम्मिलित अध्ययन।

(3) **अलवणीय जल पारिस्थितिकी** (Fresh water ecology) : तालाब, झील, नदी आदि अलवणीय जल के जीवो व उसके वातावरण का अध्ययन। इसे सरोवर विज्ञान (limnology) भी कहते हैं।

(4) **लवणीय जल या समुद्री पारिस्थितिकी** (Marine ecology) : समुद्र एवं महासागर मे पाये जाने वाले जीवो व वातावरण कारको का अध्ययन।

(5) पादप भूगोल (Phyto-geography) : पादपो का भौगोलिक वितरण सम्बन्धी अध्ययन ।

(6) विकिरण पारिस्थितिकी (Radiation ecology) : विभिन्न जीवधारियो तथा उनके वातावरण पर रेडियोधर्मिता के प्रभाव का अध्ययन ।

(7) अंतरिक्ष पारिस्थितिकी (Space ecology) : विभिन्न जीवधारियो तथा उनके वातावरण पर अतरिक्ष के वातावरण के प्रभाव का अध्ययन ।

(8) उत्पादन पारिस्थितिकी (Production ecology) : *प्राकृतिक साधनो द्वारा जीव-धारियो का उत्पादन बढ़ाने का अध्ययन उत्पादन परिस्थितिकी कहलाता है ।*

(9) संरक्षण पारिस्थितिकी (Conservation ecology) : *विभिन्न प्राकृतिक साधनो (जल, वायु, खनिज, जीव-जन्तु आदि) के सरक्षण पूर्ण सदुपयोग का अध्ययन ।*

(10) मानव पारिस्थितिकी (Human ecology) : मानव पारिस्थितिकी की विशेषताओं का अध्ययन ।

(11) ऊर्जात्मक पारिस्थितिकी (Ecological energetics) : विभिन्न पारीतत्रो मे ऊर्जा के प्रवाह का अध्ययन ।

(12) प्रदूषण पारिस्थितिकी (Pollution ecology) : प्रदूषण के कारण, प्रभाव व निदान के उपायो का अध्ययन ।

(13) जीवाश्म पारिस्थितिकी (Paleo ecology) : विलुप्त हो गये जीवधारी जिनके अब जीवाश्म ही मिलते हैं, उसके वातावरण का अध्ययन ।

(स) पारिस्थितिकी विज्ञान के अध्ययन का उद्देश्य एवं महत्व :

पारिस्थितिकी विज्ञान ने सर्वाधिक सफलता 19वी शताब्दी मे प्राप्त की जब इस पृथ्वी पर मानव को अपना अस्तित्व समझने का ज्ञान प्राप्त हुआ । मानव अब समझने लगा है कि यदि पर्यावरण के प्रति सुधारात्मक दृष्टि-कोण नही अपनाया गया तो मानव सहित सभी जीव-धारियो का अस्तित्व खतरे मे पड़ जायेगा । पृथ्वी पर समस्त प्राणियो की जनसख्या मे भी वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक ससाधनो पर विशेष भार पड़ने लगा है । मानवीय सभ्यता के विकसित होने के साथ-साथ तथा औद्योगीकरण मे विस्तार के कारण भी मानव प्राकृतिक ससाधनो का दोहन तीव्र गति से करने लगा है । प्राकृतिक ससाधनो की कमी के साथ-साथ औद्योगीकरण से निकले अपशिष्ट पदार्थ, गैस, द्रव या ठोस पदार्थ के रूप में पर्यावरण को दूषित कर रहे है । हरित-क्रान्ति के कारण फसलो की उपज बढ़ाने के लिए मानव विभिन्न कीट-नाशक एव उर्वरको का उपयोग करने लगा है जिसके फलस्वरूप मृदा की उर्वरता मे कमी होने लगी है । औद्योगिक क्षेत्रो से विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थ, नदियो, तालाबो, झीलो व समुद्रो मे डाले जा रहे है जिसके फलस्वरूप जल प्रदूषण बढ़ रहा है तथा विभिन्न प्रकार के रोग जन्म ले रहे हैं ।

मानव स्वय एक जीवधारी है और वह अपने भोजन, आवास, कपडे, दवाइयाँ व अन्य आवश्यकताओं के लिए विभिन्न जीवधारियो एव पारिस्थितिक तत्र के अजीव

घटको पर निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त मानव शरीर की सम्पूर्ण जैविक क्रियाओं पर पारिस्थितिकी का सीधा प्रभाव पड़ता है। अत: मानव समाज की विभिन्न आर्थिक समस्याओं का समाधान पारिस्थितिकी से ही है, विशेषत. बढ़ती हुई आबादी के कारण पारिस्थितिकी का ज्ञान और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

जगलो मे पेडो की अधाधुध कटाई से भूमि कटाव होता जा रहा है, तथा मृदा अपरदन की समस्या बढ़ती जा रही है। यही मृदा वर्षा ऋतु मे बह कर झीलो व तालाबो मे जमने लगी है जिसके कारण उनकी भरण क्षमता कम होने लगी है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पारिस्थितिकी तत्र के विभिन्न घटक – अजैविक (वायु, जल, एव मृदा) तथा जैविक (विभिन्न पादप व जन्तु) पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित होते जा रहे हैं। मानव भी इससे अछूता नही रहा है।

इस विषम स्थिति को देखते हुये अपने जीवन को स्वस्थ्य एव सुरक्षित बनाये रखने के लिए पारिस्थितिकी का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है और इसी ज्ञान के माध्यम से तथा पारिस्थितिकी तत्र के अध्ययन से ही मानव जाति का आर्थिक विकास व कल्याण सभव है। इसी महत्ता को समझ मानव जाति के कल्याण के लिए एक विश्वव्यापी कार्यक्रम जिसे अन्तरराष्ट्रीय जीव-विज्ञान कार्यक्रम (International Biological-programme) कहते है, चलाया गया है। इस कार्यक्रम का मुख्य विषय "उत्पादन का जैविक आधार और मानव कल्याण (Biological basis of productivity and human welfare) है।" इस कार्यक्रम के माध्यम से विभिन्न देशो के पारिस्थितिकी विशेषज्ञ अपने क्षेत्र के प्राकृतिक ससाधनो के सरक्षण के उपाय तथा आर्थिक महत्त्व की वनस्पतियो एव जन्तुओं के उत्पादन बढ़ाने के उपाय सुझाने मे लगे है। इस कार्यक्रम की समाप्ती के पश्चात एक नया कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है जिसे "मानव एव जैव मडल" (Man and Biosphere = MAB) कहते है। इसका मुख्य उद्देश्य मानव और पर्यावरण के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करना है।

आप पारिस्थितिकी विज्ञान की उपरोक्त विभिन्न शाखाओं के अतर्गत पढ़ ही चुके है कि प्रदूषण पारिस्थितिकी हमे प्रदूषण के कारण, प्रभाव एव निदान सुझाती है।

सरक्षण पारिस्थितिकी विभिन्न प्राकृतिक ससाधनो (जल, मृदा, खनिज, जन्तु आदि) के सरक्षण पूर्ण सदुपयोग सुझाती है।

उत्पादन पारिस्थितिकी से प्राकृतिक ससाधनो विशेषकर फसलो एव जन्तुओं के उत्पादन बढ़ाने के उपायो का ज्ञान होता है। मानव पारिस्थितिकी हमे मानव की आवश्यकताऐं, आचरण व जनसख्या से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं का ज्ञान कराती है।

अत: यह निर्विवाद सत्य है कि पारिस्थितिकी विज्ञान के उद्देश्य बहुत ही स्पष्ट है तथा इसका अध्ययन आज की मूलभूत आवश्यकता ही नही वरन् अनिवार्यता भी है।

(द) पारिस्थितिकी का विज्ञान की अन्य शाखाओं से सम्बन्ध :

पारिस्थितिकी विज्ञान की सीमाऐं अनन्त हैं तथा इस बात की पुष्टि उपरोक्त विवरण से सुगमता से हो जाती है। पारिस्थितिकी का विज्ञान की अन्य शाखाओ से इतना घना सबन्ध है कि इसे उनसे पृथक करना कठिन है। इस विज्ञान का भौतिक एव जैविक वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण जीव-विज्ञान की विभिन्न शाखाऐं जैसे आकारिकी

(Morphology), कार्यिकी (Physiology), आनुवांशिकी (Genetics) तथा अन्य मुख्य शाखाऐं जैसे भौतिक विज्ञान, भूगोल, रसायन विज्ञान, खगोल विज्ञान आदि से घनिष्ट समबन्ध प्रमाणित हो चुका है जो निम्न उदाहरणो से स्पष्ट होता है।

वर्गीकरण विज्ञान :

वर्गीकरण को पारिस्थितिकी के अध्ययन का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है क्योंकि इसकी सहायता से विभिन्न स्थानो पर पाये जाने वाले पादप एव जन्तुओं का वर्गीकरण किया जाता है।

भौतिक एवम् रासायनिक विज्ञान :

पारिस्थितिकी के अध्ययन मे वातावरण के अनेक भौतिक एव रासायनिक कारक जैसे – प्रकाश, तापक्रम, वायु, आर्द्रता, लवणता, पी० एच० (pH) तथा जल एव थल मे उपस्थित विभिन्न रासायनिक तत्वो का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि ये कारक पादपो व जन्तुओं पर प्रभावी होते हैं।

आनुवांशिकी विज्ञान :

जीवधारियो मे वातावरण से प्रभावित होकर रूपान्तरित हो जाने की क्षमता होती है। नवीन जातियो एव प्रजातियो की उत्पत्ति का मुख्य कारण जीवधारियो की वातावरण के प्रति अनुकूलित होने की क्षम्ता है। अनुकूलन के कारण जीवो मे आकार, स्वभाव व अन्य लक्षणो मे परिवर्तन होते है जो धीरे-धीरे स्थाई हो जाते है। प्रकृति द्वारा अनुकूलन परिवर्तनो को स्थायित्व देना प्राकृतिक चयन (Natural Selection) कहलाता है। अत यह स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी का आनुवांशिकता एव उद्विकास से निकटतम सम्बन्ध है।

परिमाणात्मक विज्ञान :

इस विज्ञान के अन्तर्गत जीवो एव समुदायो की गणना उनकी आबादी के घनत्व का संख्यात्मक एव मात्रात्मक अध्ययन किया जाता है।

भूगर्भ एवं जलवायु विज्ञान :

इस विज्ञान का ज्ञान होना पर्यावरण के अनेक कारको के अध्ययन के लिए आवश्यक है। इस विज्ञान से पर्यावरण के जलवायु सम्बन्धी कारक का अध्ययन होता है।

भूगोल के अध्ययन के माध्यम से विभिन्न पादपो एव जन्तुओं का पृथ्वी के विभिन्न भागो मे वितरण का ज्ञान प्राप्त होता है।

अध्याय : 2

पर्यावरणीय कारक

(Environmental Factors)

पृथ्वी पर सभी प्रकार के जीव (पेड़ पौधे एव जीवाणु) किसी न किसी परिस्थिति अथवा पर्यावरणीय स्थिति मे रहते है। पेड़ पौधो की विभिन्न क्रियाये एव कार्य प्रणाली, सरचना एव वृद्धि पर्यावरणीय कारको पर निर्भर रहती है। प्रत्येक जीव को प्रभावित करने वाले सभी अर्न्तसम्बन्धित (interacting) कारक, जो एक जटिल एव मिश्रित प्रभाव डालते है, पर्यावरण (Environment) कहलाता है। साधारण शब्दो मे यह कहा जाता है कि जीवो को चारो तरफ से घेरे हुए वे कारक, जो उन्हे प्रभावित करते है, पर्यावरणीय कारक (Environmental factors) कहलाते है। इन्हे पारिस्थितिक कारक (ecological factors) भी कहते है।

पर्यावरणीय कारक जैविक एव अजैविक दोनो ही प्रकार के हो सकते है। पारिस्थितिक कारको मे भिन्नता के फलस्वरूप एक स्थान की वनस्पति दूसरे स्थान की वनस्पति से भिन्न होती है। यही कारण है कि एक ही प्रकार के पारिस्थितिक लक्षणो मे रहने वाली वनस्पतियो मे कुछ आकारिकी (morphological) एव शारीरिक (anatomical) समानता पायी जाती है। वैसे तो विभिन्न प्रकार के कारक अलग-अलग भी वनस्पति को प्रभावित करते है लेकिन प्रकृति मे पायी जाने वाली वनस्पति उसके चारो ओर उपस्थित सभी कारको के मिश्रित प्रभाव से प्रभावित होती है। इसी प्रकार जहाँ एक ओर पर्यावरणीय कारक जीव को प्रभावित करते है वही जीव भी कारको को प्रभावित करते है। अत जीव पर्यावरण सम्बन्धो को समझने के लिए हमे समग्रतात्मक दृष्टिकोण (holistic approach) अपनाना होगा।

सभी पर्यावरणीय कारक वनस्पति को समान रूप से प्रभावित नही करते। उदाहरणार्थ वायु मे उपस्थित ऑक्सीजन अथवा कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा विभिन्न स्थानो पर लगभग समान (अत्यन्त कम अन्तर) रहती है। अत विभिन्न स्थानो पर उग रही वनस्पति पर उसका प्रभाव समान रहता है। लेकिन कुछ कारक जैसे मिट्टी मे जल की मात्रा, मिट्टी की जल अवशोषण क्षमता अथवा मिट्टी मे उपस्थित विभिन्न रासायनो की मात्रा भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न हो सकती है तथा इस भिन्नता के कारण वहाँ की वनस्पति प्रभावित होती है।

सभी प्रकार के पारिस्थितिक कारको को, सुविधा की दृष्टि से, निम्न दो भागो मे बाटा जा सकता है

(अ) अजैविक अथवा भौतिक कारक (Abiotic or Physical factors)

(ब) जैविक कारक (Biological factors)

भौतिक कारको को पुन तीन समूहो मे विभाजित किया जा सकता है –

1 जलवायु सम्बन्धी कारक (climatic factors) इसमे प्रकाश, तापमान, वर्षा, वायु, वायुमण्डलीय गैसो आदि का पौधो पर प्रभाव सम्मिलित है।
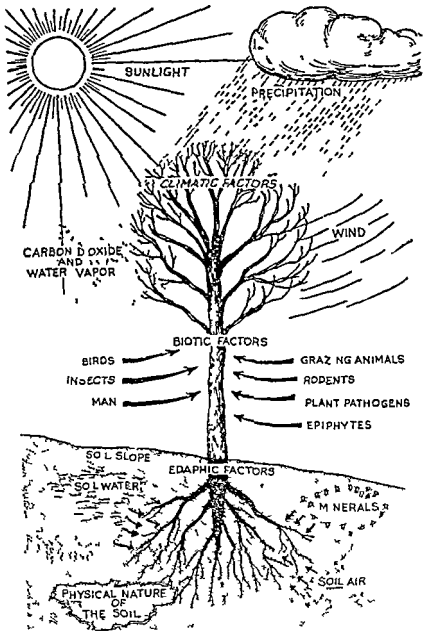
चित्र 2.1 पौधे को प्रभावित करने वाले पर्यावरणीय कारक

2 स्थलाकृतिक कारक (Topographical factors) : इसमे भौगोलिक कारको जैसे – अक्षाश, समुद्र तल से ऊचाई, भूपृष्ठ, ढाल इत्यादि को सम्मिलित किया गया है ।

3 मृदीय कारक (Edaphic factors) : ये मिट्टी से सम्बन्धित कारक हैं । इसमे मृदा जल, मृदा वायु, मृदाजीव एव मृदा के भौतिक तथा रासायनिक गुणो को सम्मिलित किया जाता है ।

इस पुस्तक मे इस सभी कारको का विवरण एव उनका वनस्पति पर प्रभाव की चर्चा आगे के पृष्ठो मे की जायेगी । सबसे महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये कारक कभी अकेले नही बल्कि जटिल सयोगो के रूप मे कार्य करते है और अन्योन्य क्रिया द्वारा एक दूसरे के प्रभाव को परिवर्तित करते रहते हैं । ये कारक प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पौधो को प्रभावित करते हैं । प्रत्यक्ष कारक वे कारक है जो पौधो को सीधे ही प्रभावित करते हैं परन्तु कुछ कारक ऐसे भी होते है जो दूसरे कारको को प्रभावित कर वनस्पति पर प्रभाव डालते हैं एव परोक्ष कारक कहलाते है ।

आवास – ऐसा पर्यावरण जिसे पौधा पसन्द करता है उसका आवास कहलाता है । अत. आवास उसके परिवेश (surrounding) को इगित करता है ।

जैसा कि पूर्व मे लिखा जा चुका है कि कोई भी कारक अकेला नही बल्कि जीव पर सभी कारको के मिश्रण का प्रभाव होता है । गुडं (Good) ने सन् 1935 मे अपने 'सहनशीलता तथा सीमाकारी कारको के सिद्धान्त (Theory of tolerance and Principles of limiting factors)' मे इस बात को स्पष्ट किया है कि पादप समुदाय का वितरण प्राथमिक (Primarily) रूप से जलवायवी (climatic) कारको पर द्वितीयक (Secondarily) रूप से मृदीय कारको पर और मृदीय कारको की तीव्रता एव उपलब्धता से नियत्रित होता है ।

(अ) जलवायु सम्बन्धी कारक
(Climatic factors)

यह देखा गया है कि किसी एक क्षेत्र की जलवायु एक वृहद क्षेत्र मे समान रहती है । भूआकृति या अन्य कारणो से अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र के जलवायु मे कुछ भिन्नता पायी जाती है । ये स्थानीय परिवर्तन अथवा सूक्ष्म जलवायु (Micro climatic) परिवर्तन केवल कुछ निश्चित छोटे क्षेत्र तक ही सीमित है । उदारणार्थ राजस्थान के सिरोही जिले के सभी स्थानो की जलवायु लगभग समान (uniform) है लेकिन उसी जिले मे ऊँचाई पर स्थित होने के कारण आबू पर्वत की जलवायु सिरोही जिले के अन्य स्थानो की जलवायु से भिन्न है । इसी प्रकार पर्वत की ऊँचाई, गहराई ढलान, घनी वनस्पति तथा अपावृत (exposed) एवं अअपावृत (unexposed) स्थानो की जलवायु मे परिवर्तन देखे जा सकते है ।

जलवायवी कारको मे हम वर्षण (Precipitation), वायुमण्डलीय आर्द्रता, प्रकाश, तापमान, वायु वेग तथा दिशा एव वायुमण्डलीय गैसो का प्रमुख रूप से अध्ययन करेंगे ।

(i) वर्षण (Precipitation)

वर्षा, ओले, हिम तथा ओस सभी के लिए सम्मिलित शब्द वर्षण है। इसमे सर्वाधिक महत्व वर्षा का है। पौधो को जल की उपलब्धता वर्षण पर निर्भर है। पादप समुदाय के प्रकार एव उनका वितरण जल की उपलब्धता से नियन्त्रित होता है। वर्षा से मृदा जल एव वायुमण्डलीय आर्द्रता बढ़ जाती है। अधिकतर पौधे मिट्टी से ही जल अवशोषित करते हैं। कुछ अधिपादप (जैसे - ऑरकिड आदि) वायुमण्डलीय आर्द्रता से जल का अवशोषण कर सकते है।

वायुमण्डल से जल वर्षण के रूप मे पृथ्वी पर आता है और पृथ्वी से वायुमण्डल को वाष्पोत्सर्जन एव वाष्पीकरण की क्रिया द्वारा पहुँचता है। इस प्रकार वायुमण्डल एव स्थलमण्डल के बीच जल का आदान प्रदान लगातार चलता रहता है। पृथ्वी तथा वायुमण्डल के बीच चलने वाले इस जल चक्र को जलीय चक्र (Hydrological cycle) कहते हैं। समुद्रो, नदियो व झीलो तथा जलाशयों का जल वाष्पीकृत होता है। इसी प्रकार पौधे भी अवशोषित जल का अधिकतर भाग वाष्पोत्सर्जित कर देते है। यह वाष्पीकृत जल (जल वाष्प) वायुमण्डलीय आर्द्रता बढ़ाता है। एक निश्चित तापक्रम व दाब पर हवा मे अधिकतम जल वाष्प की स्थिति को सन्तृप्त वायुमडल (Saturated atmosphere) कहते है। अत: सन्तृप्त बिन्दु पर यदि तापक्रम कम हो जाये तो वायुमण्डल मे जल को रोके रखने की क्षमता कम हो जाने के कारण जल वाष्प सघनित (condense) होकर वर्षा बून्दो, ओस, पाला या बर्फ, ओलो आदि मे बदल जाती है। इसे वर्षण कहते हैं। वर्षा का जल मृदा मे अवशोषित होकर पौधो के लिए 'उपयोगी जल' के रूप मे उपलब्ध होता है।
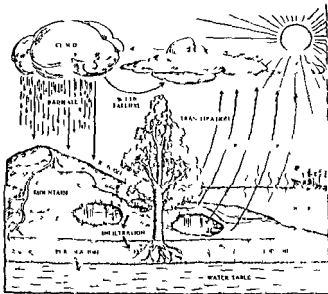
चित्र 2.2 : जल चक्र एवं वर्षा का चित्र मॉडल

किसी भी स्थान की कुल वार्षिक वर्षा एव उसका मौसमी बटन (Seasonal distribution) वहाँ की खेती एव प्राकृतिक वनस्पति को अत्यधिक प्रभावित करते है। इसमे कुल वर्षा दिनो (number of rainy days) का भी अत्यधिक महत्व है। ऐसे समान वार्षिक वर्षा वाले दो अलग-अलग क्षेत्र, जिनमे कुल वर्षा दिनो मे अन्तर हो, मे बिल्कुल भिन्न प्रकार की वनस्पति प्रकार (vegetation type) पायी जाती है। उदाहरणार्थ ऐसे क्षेत्र जहाँ वर्ष भर में केवल कुछ दिन लेकिन अत्यधिक तेज वर्षा होती है वहाँ पर जल भू सतह से ही बहकर निकल जाता है और पौधो को अवशोषण हेतु अत्यन्त अल्प मात्रा मे ही जल उपलब्ध हो पाता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ वर्षा ठीक ठीक हो लेकिन वह अधिक दिनो मे समान रूप से आती हो तो पौधो को अधिक लाभ मिलता है। ऐसे स्थानो पर वर्ष भर मे कुल औसत कम वर्षा भी अधिक प्रभावशाली रहती है। अत्यन्त कम वर्षा पौधो के लिए अधिक उपयोगी नही होती क्योंकि थोड़ा सा जल भूमि मे अवशोषित होने से पूर्व ही वाष्पीकृत होकर उड जाता है। अल्प वर्षा से पौधों की वृद्धि भी अल्प रहती है अत: पौधे ठीगने (stunt) एव क्षुप या झाड़ीनुमा हो जाते हैं।
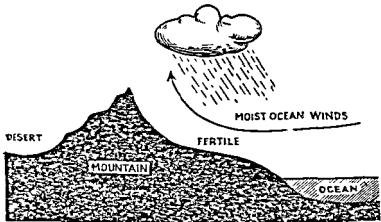
चित्र 2.3 · पहाड़ पर वायु की दिशा की तरफ वर्षण

वर्षा की मात्रा की भिन्नता से भिन्न प्रकार की वनस्पति उत्पन्न होती है। ये निम्न प्रकार की है –

(अ) गर्म उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशो मे पूरे वर्ष सघन वर्षा होती है। वहाँ सघन सदाहरित वन उत्पन्न होते हैं।

(ब) ऐसे स्थान जहाँ अच्छी वर्षा हो लेकिन वर्ष भर मे कुछ महिनो में ही वर्षा होती हो वहाँ पर्णपाती वनो की वनस्पति पाई जाती है।

(स) ऐसे क्षेत्र जहा केवल सर्दी के मौसम मे अच्छी वर्षा होती है वहाँ दृढ़पर्णी (sclerophyllous) प्रकार के वन होते है। ऐसे वनो मे छोटे वृक्ष अथवा झाड़ियो की बहुतायत होती है।

(द) ऐसे क्षेत्र जहाँ गर्मी के मौसम मे अधिक लेकिन सर्दी के मौसम मे अपेक्षाकृत कम वर्षा होती है वहाँ चारागाह या घास स्थल (Grass lands) होते हैं।

(ई) ऐसे क्षेत्र वहाँ गर्मी एव सर्दी मे अल्प मात्रा मे वर्षा होती हो वहाँ मरुस्थलीय वनस्पति पैदा होती है।

वर्षा एव तापमान का मिश्रित प्रभाव किसी भी स्थान पर पायी जाने वाली वनस्पति को अत्यधिक प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ – भूमध्य तथा उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रो मे अत्याधिक वर्षा तथा उच्च तापमान के फलस्वरूप विश्व की सर्वाधिक विकसित वनस्पति "उष्ण कटिबन्धीय वृष्टि वन" (*Tropical rain forests*) बनते हैं। उत्तरी एव दक्षिणी अक्षाश (latitude) जहाँ वर्षा या वर्षण तो सर्वाधिक होती है लेकिन तापमान नीचा रहता है, वहाँ छोटे कोणधारी वृक्ष (coniferous trees), छितरी हुई कठोर झाड़ियाँ एव शाक तथा लाइकेन इत्यादि पाये जाते है। सामान्य वर्षा लेकिन लम्बा एव तीव्र गर्मी के मौसम वाले क्षेत्र मे शुष्क पर्णपाती (dry deciduous) तथा कटीली झाड़ियो (thorn scrub) *वाली वनस्पति उत्पन्न होती है। ऐसे स्थान जहाँ वर्षा अत्यन्त कम होती है और तापमान* काफी ऊँचा चला जाता है वहाँ छोटे, छितराये हुए वृक्ष, झाड़ियाँ एव केक्टस आदि उगते हैं और यहाँ की वनस्पति मरुस्थलीय प्रकार की होती है।

(ii) वायुमण्डलीय आर्द्रता (Atmospheric Humidity) :

जल वाष्प के रूप मे वायुमण्डल मे आर्द्रता हमेशा विद्यमान रहती है। किसी स्थान के वायुमण्डल मे आर्द्रता की मात्रा अनेक कारणो पर निर्भर करती है और कारणो की *मात्रा मे सख्यात्मक अथवा गुणात्मक परिवर्तन होने पर आर्द्रता की प्रतिशतता भी प्रभावित* होती है। एक निश्चित ताप एव दाब पर वायु मे इतनी जल वाष्प हो कि वह और अधिक जल वाष्प का समावेश न कर सके तो उसे उस ताप एव दाब पर सन्तृप्त आर्द्रता कहा जाता है। तापमान बढ़ने से यह सन्तृप्त वायु असतृप्त हो जाती है यानि कि वायु की जल वाष्प ग्रहण करने की क्षमता तापमान के बढ़ने पर बढ़ जाती है। 20° फ० ताप बढ़ने पर *वायु की जलवाष्प ग्रहण क्षमता दुगुनी हो जाती है। सतृप्त आर्द्रता वाली वायु* का तापमान कम होने पर उसकी जल वाष्प ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाने के कारण जल ओस की बून्दो के रूप मे सघनित हो जाता है।

वायुमण्डलीय आर्द्रता पादप जीवन को पौधे के जल सम्बन्धो के कारण प्रभावित करती है। आर्द्रता का सीधा प्रभाव वाष्पोत्सर्जन की दर पर पड़ता है। निरपेक्ष आर्द्रता (absolute humidity) को प्राय: किसी तापमान विशेष पर सतृप्ति के लिए अपेक्षित जलवाष्प मात्रा के प्रतिशत के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है। इसे आपेक्षिक आर्द्रता (relative humidity) कहते हैं। उदाहरण के लिए 40 प्रतिशत आपेक्षिक आद्रता का

तात्पर्य यह है कि वायु मे सतृप्ति के लिए आवश्यक जल वाष्प मात्रा का 2/5 भाग उपस्थित है। आपेक्षिक आर्द्रता तापमान के घटने या बढ़ने पर घटती या बढ़ती है जबकि निरपेक्ष आर्द्रता पर तापमान का कोई प्रभाव नही पड़ता।

वाष्पोत्सर्जन की दर को नियत्रित करने की क्षमता के कारण किसी भी स्थान पर पायी जाने वाली वनस्पति को आपेक्षिक आर्द्रता प्रभावित करती है। अनेक क्रिप्टोगेमस पौधे उच्च आपेक्षिक आर्द्रता वाले स्थानो पर ही ऊगते हैं। ऐसे पौधो को हाइग्रोफाइट्स (Hygrophytes) कहा जाता है। उच्च आर्द्रता वाले स्थानो पर कुछ कवक एव लाइकेन अत्यन्त तेजी से पनपते है। अधिपादप (Epiphytes) भी नमी एव आर्द्रता वाले स्थानो पर सर्वाधिक पाये जाते हैं।

ऐसे स्थान जहाँ वर्षा एव शुष्क ऋतु सुस्पष्ट होती है, वहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पति आपेक्षिक आर्द्रता के बढ़ने के साथ ही तेजी से वृद्धि दर्शाती है लेकिन शुष्क एव कम आपेक्षिक आर्द्रता वाले मौसम मे पौधो की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है।

अधिक आर्द्रता के मौसम मे बैक्टीरिया एव अन्य सूक्ष्म जीवाणु तेजी से पनपते हैं। अत: ऐसे मौसम मे मृत जीवो का अपघटन (decomposition) भी तेजी से होता है। इस प्रकार ऐसे मौसम मे मिट्टी को खनिज एव कार्बनिक पदार्थ तेजी से उपलब्ध होते रहते हैं।

अधिक आपेक्षिक आर्द्रता के मौसम मे बीमारी फैलाने वाले कवक, जीवाणु, इत्यादि, भी तेजी से पनपते हैं और ये रोग फैलाकर पौधो को प्रभावित करते हैं।

(iii) तापमान (Temperature)

तापमान एव उनमे होने वाले परिवर्तन वनस्पति को प्रभावित करते हैं। पृथ्वी के धरातल पर तापमान मे परिवर्तन के कारण ही अलग-अलग भौगोलिक स्थानो पर अलग-अलग प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। तापमान एव मृदा मे उपस्थित नमी दोनो का मिश्रित प्रभाव वनस्पति पर देखा जा सकता है। तापमान के प्रभाव का सही आकलन केवल वार्षिक औसत ताप से नही किया जा सकता इसके लिये वर्ष भर के तापक्रम मे परिवर्तन एव प्रतिदिन दिन एव रात के ताप मे हो रहा परिवर्तन भी अत्यन्त महत्व रखता है।

ताप का प्रभाव पौधो की शारीरिक सरचना, जैविक क्रिया, प्रजनन एव भौगोलिक वितरण पर पड़ता है। पौधो की उपापचयी क्रियाये किसी निम्नतम (minimum) तापमान पर आरम्भ होती है, तापमान मे वृद्धि के साथ ही साथ इन क्रियाओं की दर भी बढ़ती चली जाती है तथा एक तापक्रम ऐसा आता है जहाँ यह तीव्रता अधिकतम हो जाती है इसे उस क्रिया का अनुकूलतम (optimum) तापक्रम कहते है। तापमान मे इसमे अधिक वृद्धि क्रिया को मन्द करने लगती है तथा एक विशेष तापमान पर यह क्रिया बिल्कुल रूक जाती है जिसे इसका अधिकतम (maximum) तापमान कहते हैं। प्रत्येक जाति का निम्नतम एव उच्चतम ताप अलग-अलग होता है।

वैज्ञानिको ने तापमान के आधार पर ससार की समस्त वनस्पतियो को निम्न श्रेणियो मे बाँटा है –

सारणी -- 1

विभिन्न क्षेत्रो मे तापमान के आधार पर पाई जाने वाली वनस्पति :

तापक्रम क्षेत्र	भौगोलिक क्षेत्र	तापमान स्थिति	वनस्पति का प्रकार
उच्चतापी (Megatherms)	भूमध्यीय और उष्ण कटिबन्धीय (Equatorial and Tropical)	पूरे वर्ष भर अधिक तापमान	उष्ण कटिबन्धीय वृष्टि वन (Tropical rain forest)
मध्यतापी (Mesotherms)	उष्णकटिबन्धीय एव समशीतोष्ण क्षेत्र (Tropical and sub tropical)	अधिक तापमान के साथ सर्दी के मौसम मे कम तापमान	उष्ण कटिबन्धीय पर्णपाती वन (Tropical Deciduous forest)
निम्नतापी (Microtherms)	शीतोष्ण तथा उच्च-ऊँचाई वाले (12,000 फीट तक) उष्ण कटिबन्धीय एव समशीतोष्ण क्षेत्र	न्यून तापमान	मिश्रित शकुधारी वन (Mixed coniferous forests)
हेकिस्टोथर्म (Hekistotherms)	उत्तरी ध्रुवीय और अल्पाईन प्रदेश (उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र मे 16000 फीट से अधिक तथा शीतोष्ण क्षेत्र मे 12000 फीट से अधिक की ऊँचाई)	अत्यन्त कम तापमान	अल्पाईन वनस्पति (Alpine Vegetation)

तापमान के आधार पर वनस्पति के वितरण को समझने के लिए पश्चिमी हिमालय पर ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण समझना सर्वाधिक उपयुक्त रहेगा । यदि हम हिमालय के आधार से ऊपर की ओर बढ़ते हैं तो सभी प्रकार की जलवायु (climate) का अनुभव किया जा सकता है । हिमालय की ऊँचाई पर बढ़ने पर तापमान मे गिरावट आती है । इसके आधार से 1200 मीटर तक के क्षेत्र मे हमे मिश्रित पर्ण पाती वन मिलते है । 1200 मीटर से 3300 मीटर तक की ऊँचाई पर शकुधारी वन (coniferous forests) मिलते है । ऐसे स्थान पर जलवायु शीतोष्ण प्रकार की हो जाती है । इसमे भी नीचे के

क्षेत्र मे चौडी पत्तियो वाले वृक्षो की तथा ऊँचाई के क्षेत्र मे शकुवृक्षो की बहुलता रहती है । लगभग 3600 मीटर की ऊँचाई के पश्चात् वृक्षो की कतार समाप्त होने लगती है तथा छोटे वृक्ष एव झाडियाँ दिखाई देने लगती है । यहाँ पर जलवायु एल्पाईन (Alpine) प्रकार की हो जाती है । जैसे जैसे ऊपर बढ़ते है तो झाड़ियो की जगह घास, लाइकेन, मॉस इत्यादि मिलने लगते है । 4500 मीटर से ऊपर पहुँचने पर केवल बर्फ से ढ़की चोटियाँ दिखाई देती है । यहाँ पर किसी प्रकार की वनस्पति नही पाई जाती है इसी बात को चित्र मे समझाया गया है । चित्र 2.4 मे अक्षाश व ऊँचाई के अनुसार समान प्रकार के वनस्पति क्षेत्रो का विस्तारण दर्शाया गया है ।

चित्र 2.4 : पश्चिम हिमालय पर ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण

अक्षाश एव समुद्र तल से ऊँचाई के अतिरिक्त किसी स्थान का तापमान बादलो, वायु, मृदा मे उपस्थित जल, मृदा आवरण (Soil cover), ढलान एव पहाडी का खुलापन (exposure) इत्यादि से भी प्रभावित होता है ।

पौधो की वृद्धि एव वितरण मे हालाकि वर्षण एव तापमान के मिश्रित असर की प्रभावशाली भूमिका है । लेकिन यदि हम टून्ड्रा एव मरुस्थल की तुलना करे तो पायेंगे कि दोनो ही क्षेत्रो मे वार्षिक वर्षा लगभग 20 से० मी० होती है परन्तु इन दोनो स्थानो की वनस्पति मे काफ़ी भिन्नता पाई जाती है । मरुस्थलीय क्षेत्रो मे अत्यधिक उच्च तापमान के कारण वाष्पोत्सर्जन एव वाष्पीकरण अत्यन्त तेजी से होता है और जल का ह्रास भी अत्यन्त तीव्र है जबकि टून्ड्रा क्षेत्र मे वाष्पोत्सर्जन की दर अत्यन्त अल्प है और इस कारण से मिट्टी मे पानी एव नमी बनी रहती है ।

चित्र 2.5 : अक्षांश व समुद्र तल से ऊँचाई के अनुसार समान प्रकार की वनस्पति का वितरण

पौधो की सभी क्रियाऐं तापमान से प्रभावित होती हैं । पौधो मे होने वाली समस्त उपापचय क्रियाएँ इन्जाइम द्वारा नियत्रित होती है । इन्जाइम रासायनिक क्रियाओं का सम्पादन एक निश्चित ताप पर ही करने मे सक्षम होते हैं । अत: प्रकाश सश्लेषण, श्वसन, वृद्धि एव अन्य क्रियाएँ तापमान से प्रभावित होती हैं ।

तापमान से प्रभावित होने वाली कार्यिकी क्रियाये नीचे वर्णित की जा रही हैं ।

(i) ताप का सीधा प्रभाव वायु की आर्द्रता पर होता है अत: अधिक तापमान पर वायु आर्द्रता कम तथा कम तापक्रम पर वायु आर्द्रता अधिक हो जाती है । वायु की आर्द्रता का प्रभाव वाष्पोत्सर्जन क्रिया पर पड़ता है । अत: तापक्रम अधिक होने पर वाष्पोत्सर्जन की दर अधिक एव तापक्रम कम होने पर वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है ।

(ii) वाष्पोत्सर्जन क्रिया का प्रत्यक्ष प्रभाव रसारोहण (Ascent of sap) क्रिया पर पड़ता है । अत: तापक्रम की अधिकता रसारोहण क्रिया की दर को भी बढ़ाती है ।

(iii) स्थलीय पौधो मे 20° से० से 30° से० के बीच अवशोषण की दर सर्वाधिक होती है तथा इससे अधिक अथवा कम तापमान होने पर अवशोषण की दर मे कमी आ जाती है।

(iv) सामान्यत पौधो मे प्रकाश सश्लेषण हेतु 10° से 35° से० का तापमान उचित होता है। 40° से० से अधिक तापमान होने पर प्रकाश सश्लेषी एन्जाइस अपघटित होकर नष्ट हो जाते हैं। अत प्रकाश सश्लेषण की दर मे कमी होकर यह शून्य के स्तर पर चली जाती है। कुछ पौधो मे जैसे शकुधारी (conifers) मे अत्यन्त निम्न ताप (35° से०) तथा कुछ शैवाल व मरुद्भिद् पादपो मे अत्यधिक ऊष्ण जल या स्थानो (75° c) पर भी प्रकाश सश्लेषण की क्रिया होती रहती है।

(v) श्वसन क्रिया – सामान्यत श्वसन क्रिया 10° से 40° से० के मध्य ही होती है। अनेक पादप, बैक्टिरिया इत्यादि 10° से कम तापमान पर भी अल्प श्वसन करते हैं लेकिन 0° से० के नीचे व 40° से० से अधिक तापमान पर श्वसन की दर तेजी से कम हो जाती है।

(vi) अनेक पादपो के बीजो मे एक विशेषता पाई जाती है जिसके कारण ये बीज निम्न ताप मे कुछ दिन गुजारने के पश्चात् ही सामान्य ताप पर अकुरित हो पाते है। *इस क्रिया को vernalisation या बसन्तीकरण कहते हैं। ऐसे बीजो को कुछ समय के* लिए निम्न ताप उपचार द्वारा भी अकुरित किया जा सकता है।

(vii) अनेक पौधो मे ताप के उद्दीपन के कारण गति होती है। उदाहरण के लिए क्लेमाइडोमोनास जाति की शैवाल को एक बीकर मे रखकर उसे एक तरफ से गर्म किया जाए तो सभी कोशिकाएँ गर्म जल की तरफ से हटकर सामान्य ताप वाले जल की तरफ चली जाती है।

शीत आघात तथा शीत प्रतिरोध :– तापमान मे परिवर्तन होने से पौधे तीन प्रकार से प्रभावित होते हैं -

(i) निर्जलीकरण – Desiccation

(ii) शीत आघात – Chilling injury

(iii) जमाव आघात – Freezing injury

सर्दी के मौसम मे तापमान कम होने के कारण वाष्पोत्सर्जन दर अत्यन्त कम हो जाती है। इस मौसम मे ऊत्तको के निर्जलीकरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और पौधो को आघात लगता हैं। गर्म जलवायु मे उगने वाले पौधा को यदि कुछ समय के लिए भी शीत लहर के सम्पर्क मे लाया जाये तो पौधे या तो मर जाते है अथवा उन्हे गहरा आघात लगता है। इसे शीत आघात कहते हैं। जमाव आघात सामान्यतया शीतोष्ण प्रदेशो के पौधो मे होता है। ऐसे क्षेत्रो मे जब तापमान अत्यन्त कम हो जाता है तब *अन्तर कोशिकीय स्थानो मे उपस्थित जल जमकर बर्फ के छोटे-छोटे क्रिस्टल बना देता है।* तापमान मे और अधिक कमी होने पर कोशिका जल भी बाहर निकलकर जम जाता है जिससे अन्तरकोशिकीय स्थानो म उपस्थित क्रिस्टल का आकार बडा हो जाता है। कोशिका

का जीव द्रव्य निर्जल हो कर थक्का (coagulate) बन जाता है। अन्तर कोशिकीय बर्फ अधिक स्थान घेरने के कारण कोशिका को यात्रिक आघात पहुँचाता है।

पाला पडने पर कोशिका मे उपस्थित जल भी बर्फ के रूप मे जम जाता है। यह अन्तराकोशिकीय बर्फ कोशिका को मार डालता है। बर्फ के छोटे-छोटे टुकड़े एक दूसरे को पीटकर जीवद्रव्य की सरचना को नष्ट कर देते हैं।

अनेक पौधे विशेषकर बहुवर्षीय, बर्फ बनने की क्रिया को सहन करने की क्षमता रखते हैं। इस गुण को पाला – प्रतिरोधी गुण या दृढ़ीकरण (hardness) कहते हैं। इस क्रिया मे पौधो की कोशिका मे उच्च परासरण सान्द्रता (High osmotic concentration) विकसित हो जाता है जिससे उसका जमाव बिन्दु (freezing point) नीचे चला जाता है और उसमे उपस्थित जल की कमी भी हो जाती है ताकि बर्फ बनने के लिए अन्तरकोशिय एव अन्तराकोशिय जल की उपलब्धता कम हो जाए। बहुत से पौधो को नर्सरी मे कुछ समय के लिए ठड मे रखकर उनमे दृढ़ीकरण के गुण का विकास किया जाता है। इसे शीत प्रतिरोधी क्षमता का विकास करना कहते हैं।

गर्मी से आघात एवं गर्मी से प्रतिरोधी क्षमता :--

अत्यधिक उच्चताप से पौधो की वृद्धि रुक जाती है। अधिक गर्मी से पौधो की श्वसन दर बढ़ जाती है तथा इससे पौधे भूखे (starvation) हो जाते हैं। पौधे बौने रह जाते है और लम्बे समय तक उच्च तापमान के कारण मर भी जाते है उच्च ताप से वाष्पोत्सर्जन दर बढ़ जाती है और इससे निजर्लीकरण हो जाता है। अधिक ताप के कारण प्रोटीन के थक्के (coagulation) बन जाते हैं और जीवद्रव्य मर जाता हैं।

पौधो मे गर्मी से बचने के लिए कुछ विशेष प्रतिरोधी क्षमता उत्पन्न हो जाती है। उसके कुछ उदाहरण निम्नाकित हैं .--

(1) शुष्क बीज एव बीजाणु (spores) मे जल अत्यन्त अल्प मात्रा मे होता है जिससे वे दूसरे पौधो की अपेक्षा गर्मी का अधिक प्रतिरोध कर सकते हैं।

(2) कोशिका मे शर्करा की अधिक सान्द्रता गर्मी की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है।

(3) अधिक मोटी छाल से गर्मी को सहन कने की क्षमता बढ़ती है।

(4) अधिक वाष्पोत्सर्जन से पौधो को ठण्डक मिलती है और इससे पौधे आसानी से नही मरते। ऐसे पौधो मे मिट्टी मे जल की कमी के कारण पौधे मर सकते हैं।

(5) सूर्य की किरणो से बचने के लिए पत्तियाँ उदग्र (vertical) प्रकार से व्यवस्थित हो जाती है।

(6) चमकदार पत्तियाँ सूर्य की गर्मी को परावर्तित कर अपने आप को बचाती है।

(7) पत्तियो पर मोम की परत अथवा रोमो से भी गर्मी से बचाव होता है।

(IV) प्रकाश (Light)

क्रियात्मक दृष्टि से प्रकाश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक है। इस पर हरे पौधो द्वारा खाद्य पदार्थों का सश्लेषण निर्भर करता है जिससे वृद्धि तथा अन्य पादप क्रियाये समव होती है। प्रकाश सश्लेषण द्वारा भोजन के रूप मे सग्रहित ऊर्जा ही पृथ्वी पर सभी जीवो एव अनेक अन्य साधनो के लिए ऊर्जा का स्रोत है और पूरा विश्व उसके कारण ही चल रहा है। पृथ्वी के जीवों एव सौर ऊर्जा के मध्य प्रकाश सश्लेषण एक महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रकाश के प्रभाव से पौधो मे रन्ध्रो (stomata) का खुलना एव बन्द होना भी नियत्रित होता है अत प्रकाश वाष्पोत्सर्जन की दर का नियमन भी करता है।

प्रकृति के एक वृहद क्षेत्र मे प्रकाश का प्रभाव एक सा रहता है जिससे यह पादप समुदाय के सामान्य गुणों को प्रभावित नही करता। ऐसे पौधे जो सूर्य की सीधी रोशनी मे ऊगते हैं उन्हे सूर्य तापी या प्रकाश प्रिय (Heliophytes) कहते हैं। उदाहरण – ऐमेरेन्थस (Amaranthus) जेन्थियम (Xanthium), बिटुला (Betula), पोपुलस (Populus), सेलिक्स (Salix)। जो पौधे कम प्रकाश या छाया मे ऊगते एव वृद्धि करते हैं उन्हे छायातापी या छाया प्रिय (Sciophytes) कहते हैं। उदाहरण – एकलिफा (Aclypha), फेगस (Fagus), ऐबीज (Abies), पिसिया (Picea) इत्यादि।

कुछ सूर्य तापी पौधे ऐसे होते हैं कि वे प्रकाश मे अत्यधिक वृद्धि करते हैं किन्तु उन्हे छाया मे भी सामान्य रूप से ऊगाया जा सकता है। ऐसे पादपो को विकल्पी छाया तापी (Facultative sciophytes) कहते हैं। इसी प्रकार जिन पौधो की अत्याधिक वृद्धि हेतु छाया या मन्द प्रकाश की आवश्यकता होती है किन्तु उन्हे अधिक प्रकाश मे भी ऊगाया जा सके, ऐसे पौधो की विकल्पी सूर्यतापी (Facultative heliophytes) कहते हैं।

प्रकाश के आधार पर पौधो मे बाहरी, आन्तरिक व कार्यिकी रूपान्तर दो प्रकारो द्वारा विभेदित किये गये हैं।

(1) हिलिओमार्फिक (Heliomorphic) : पौधो मे ऐसे लक्षण आनुवाशिकी रूप से निश्चित (Genetically fixed) होते है तथा ये गुण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे निरन्तर आते रहते है। इन पौधो को प्रकाश के स्थान से छाया मे उगाया जावे तो उनके लक्षणो मे कोई भी परिवर्तन नही होगा।

(2) हिलियोप्लास्टिक (Helioplastic) : पौधो मे यह लक्षण प्रकाश व छाया के आधार पर उत्पन्न होते है तथा ये लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे स्थानान्तरित नही होते। ऐसे पौधो को सूर्य की रोशनी से छाया मे अथवा छाया से सूर्य की रोशनी मे उगाया जाए तो उनके लक्षणो मे पुन अन्तर उत्पन्न हो जाएगा।

सूर्यतापी एव छायातापी पादपो के अन्तरिक, बाह्य सरचना तथा कार्यिकी लक्षणो मे अन्तर को सारणी 2 मे दिखाया गया है।

सारणी-- 2

	सूर्यतापी (Heliophytes)		छायातापी (Sciophytes)
1	तना मोटा, सुदृढ़ व इनमे जाइलम ज्यादा विकसित होता है ।	1	तना अपेक्षाकृत पतला, दुर्बल व जाइलम कम होता है ।
2.	पत्तियाँ छोटी, हल्के हरे रंग की कटी हुई या सयुक्त पिच्छका (Compound pinnate) व मोटी होती है ।	2	पत्तियाँ बड़ी, गहरे हरे रग की व पतली होती है ।
3	पर्ण मध्योतक मे स्पष्ट रूप मे दो प्रकार की कोशिकाएँ ऊपर खम्भ ऊतक व नीचे स्पजी मृदुतक होती है। अन्तरकोशिकीय स्थान कम होता है ।	3	केवल एक ही प्रकार की कोशिकाएँ (स्पजी मृदुतक) होती है इनमे अन्तरकोशिकीय अवकाश अपेक्षाकृत अधिक होता है ।
4	शाखाये अधिक तथा पर्व छोटे होने से पर्व सधिया (Nodes) पास-पास मे होती है ।	4	शाखाएँ कम तथा पर्व लम्बे होने से पर्व सधिया दूर-दूर होती है ।
5	तने व पत्तियो पर रोम अधिक होते हैं ।	5	रोम कम पाये जाते हैं ।
6	पर्णरन्ध्रो की सख्या अधिक होती है। इनकी सख्या निचली सतह पर अधिक व ऊपरी सतह पर कम होती है।	6	पर्णरन्ध्र सख्या मे कम तथा पत्ती की दोनो सतह पर समान सख्या मे होते हैं ।
7	ऊपरी बाह्य त्वचा बहुपरतीय एव लवक रहित होती है ।	7	ऊपरी बाह्य त्वचा एक परत की व दोनो सतह की कोशिकाएँ अपेक्षाकृत पतली परत वाली क्यूटिन तथा हरित लवक युक्त होती है ।
8	यान्त्रिक ऊतक ज्यादा विकसित होती है ।	8	यान्त्रिक ऊतक कम या अनुपस्थित होती है ।
9	जडे अत्यधिक गहरी व सख्या मे अधिक तथा पूर्ण शाखित होती है ।	9	जड़े छोटी व सख्या मे कम और अल्प शाखित होती है ।
10	पौधो का शुष्क भार अधिक होता है ।	10	कम होता है ।
11	पुष्प जल्दी निकलते हैं तथा इनमे पुष्प व फल उत्पन्न करने की क्षमता ज्यादा होती है ।	11	पुष्प देरी से निकलते हैं तथा इनमे पुष्प और फल पैदा करने की क्षमता बहुत कम या नही के बराबर होती है ।
12	कोशिका रस (cell sap) अधिक अम्लीय व परासरण दाब (Osmotic pressure) अधिक होता है ।	12	कोशिका रस कम अम्लीय व परासरण दाब भी कम होता है ।

13 पौधे मे शुष्कता व ताप से बचने की क्षमता होती है ।	13 ये पौधे अधिक शुष्कता व ताप को सहन नही कर पाते ।
14 कार्बोहाइड्रेट / नाईट्रोजन का अनुपात अधिक होता है ।	14 कम होता है ।
15 पोटेशियम की मात्रा कम होती है ।	15 अधिक होती है ।
16 बीज के प्रति ग्राम शुष्क भार मे अधिक केलोरीज ऊर्जा होती है ।	16 कम होती है ।

पौधो पर प्रकाश का प्रभाव तीन प्रकार से सभव है –

(i) प्रकाश तीव्रता (Light intensity)

(ii) प्रकाश गुणवत्ता (Light quality)

(iii) प्रकाश दीप्तीकाल (Light duration)

यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रकाश तीव्रता मे परिवर्तन से तापक्रम भी परिवर्तित हो जाता है और उससे ही आपेक्षिक आर्द्रता भी परिवर्तित हो जाती है अत केवल प्रकाश के ही प्रभाव का आकलन करना कठिन है ।

(अ) प्रकाश तीव्रता: सूर्योदय से दोपहर तक प्रकाश तीव्रता बढ़ती है और दोपहर से सूर्यास्त तक घटते घटते समाप्त हो जाती है । वायुमण्डलीय धूल, बादल, उनकी मोटाई तथा पृथ्वी से उनकी ऊँचाई, बादलो की गति, वायुमण्डलीय आर्द्रता – विशेषकर धुन्ध या स्मोग (smog) इत्यादि प्रकाश तीव्रता पर प्रभाव डालते हैं । पृथ्वी या मिट्टी की सतह पर पहुँचने वाले प्रकाश का प्रभाव वनस्पति के कारण भी कम हो जाता है । मकान अथवा अन्य भवन निर्माण भी प्रकाश पर प्रभाव डालते है । समुद्र तल से ऊँचाई बढ़ने पर प्रकाश की तीव्रता बढ़ जाती है । जल के गर्भ मे ज्यो 2 गहराई बढ़ती है प्रकाश तीव्रता कम होती जाती है । स्वच्छ एव साफ जल मे प्रकाश 60 मीटर तक की गहराई मे पहुँच सकता है इसके पश्चात् नगन्य हो जाता है । ऐसा जल जिसमे कुछ निलम्बक पदार्थ (Suspended particles) इत्यादि हो वहाँ प्रकाश कुछ गहराई तक ही प्रवेश कर सकता है ।

प्रकाश तीव्रता का पौधो की वृद्धि पर प्रभाव पड़ता है । अधिकतर पौधे उन पर गिरने वाले प्रकाश का केवल 1% भाग ही प्रकाश सश्लेषण मे उपयोग कर पाते है । प्रकाश तीव्रता के आधार पर पौधो को हेलियोफाइट्स एव सियोफाइट्स मे विभाजित किया जाता है इसके बारे मे विस्तार से पूर्व मे लिखा जा चुका है ।

अनेक बीज प्रकाश की उपस्थिति मे अकुरित होते है । ऐसे बीजो को प्रकाश सवेदी (Light sensitive) बीज कहते है । क्लोरोफिल एव अन्य वर्णको का बनना, पुष्पो का खिलना, सूक्ष्म जीवो द्वारा नाइट्रोजन का स्थिरीकरण, इत्यादि प्रकाश पर निर्भर रहने वाली क्रियाये है ।

पौधो को उपलब्ध होने वाला प्रकाश खुले स्थानो पर तीव्र होता है लेकिन वृक्षो की छाया मे उगने वाले पौधो को मन्द प्रकाश मिलता है । तीव्र प्रकाश से पौधे अपनी रक्षा

कई विधियो से करते है। उदाहरणत. उनके पत्तो मे हरित लवको (Chloroplasts) की व्यवस्था इस प्रकार होती है कि केवल उनके किनारे प्रकाश की आपाती (incident) किरणों की ओर होते है तथा वे एक दूसरे को ढक लेते है। कुछ पौधे जिन्हे 'दिक सूचक पौधे' *(Compas plants)* कहते है दोपहर के समय अपने पर्णकोर सूर्य की ओर कर लेते है।

पौधो के कायिक भागो का दिक विन्यास (orientation) इस प्रकार होता है कि प्रत्येक पत्ती को उपलब्ध प्रकाश का कुछ अंश मिल जाता है। मन्द प्रकाश या छाया मे उगने वाले पौधो मे पर्ण समूहो को प्रदर्शित करने के लिए अनेक अनुकुलन पाये जाते हैं। कई पौधो के पत्ते मोजेक मे कणो के रूप मे व्यवस्थित होते है जिससे अतिव्यापन (over lapping) नही हो पाता तथा प्रकाश प्रत्येक पत्ते तक अवश्य पहुँचता है। बहुत से पौधो मे पत्ते एक चक्र मे व्यवस्थित होकर रोजेट (rosette) बनाते हैं, ताकि प्रत्येक पत्ते को प्रकाश मिल सके। अधिपादप (epiphytes) सूर्य के प्रकाश को अधिक ग्रहण करने के लिए ही ऊँचे वृक्षो पर उगते है। कुछ पौधो मे (उदाहरण – घास, रीड, जलबेत तथा टाइफा) पर्ण विन्यास इस प्रकार होता है कि ऊपरी पत्तियो की छाया बहुत कम होती है। अत: सब पत्ते (सबसे नीचे वाले भी) प्रदीप्त (illuminate) हो जाते हैं।

अत्यन्त बड़े वृक्षो (आम आदि) मे वृक्ष के लीनाक्ष (deliquiscent) स्तम्भ का अर्धगोल शीर्ष पत्तियो को प्रदीप्त करने के लिए उत्तम है। शंकु वृक्षो मे तना नीचे से ऊपर की ओर पतला होता जाता है और इससे निकलने वाली शाखाएँ शिखर की ओर उत्तरोत्तर छोटी होती चली जाती हैं। यह व्यवस्था अधिकतम प्रदीप्ति के लिए उत्तम है। बल्लरिया प्रतान आदि भी अपने पत्तो को सूर्य को रोशनी मे रखने के लिए कुछ विशिष्ट शैली अपनाती है।

ऑक्सिन जैसे वृद्धि हार्मोनो के उत्पादन का प्रकाश की उपस्थिति मे ह्रास होता है। इसके *कारण पौधो के अगो का आकार, गति एव दिक्‌विन्यास भी प्रभावित होता है। पूर्ण अंधेरे मे* ऊगने वाले पौधे मे आक्सिन बनने के कारण उसकी वृद्धि तेजी से होती है लेकिन ऐसे पादपो मे ऊतको का विभेदन ठीक ढग से नही हो पाता है जिससे यात्रिक ऊतको का निर्माण नही होता और पौधे कमजोर रह जाते हैं। इसी कारण घनी छाया मे उगने वाले पौधो मे पर्व लम्बे तथा पत्ते कम होते हैं। अधिक प्रकाश मे उगने वाले पौधे सघन एव दृढ़ होते हैं।

एक पार्श्विक (one sided) प्रदीप्ति से तना प्रकाश की ओर झुकता है, क्योंकि जिस ओर छाया होती है उस ओर आक्सिन अधिक बनते हैं, जिससे उस ओर की वृद्धि भी अधिक होती है। सूरजमुखी का पौधा इतना प्रकाश सवेदी होता है कि इसके जिस भाग पर फूल खिलते हैं वह प्रतिदिन प्रात काल से सायकाल तक पूर्व से पश्चिम की ओर मुड़ जाता है क्योंकि तने की छाया मे रहने वाले भाग मे वृद्धि अधिक होती है तथा स्थिति सूर्य की रोशनी की दिशा के अनुसार बदलती रहती है।

पौधो की वृद्धि पर प्रकाश के ये प्रभाव पौधो के कायिक अगो की प्रकाश अनुवर्ती (photo tropic) अनुक्रियाओं के लिए उत्तरदायी है।

मद प्रकाश पौधो की लम्बवत (elongation) वृद्धि, कायिक वृद्धि तथा सरचनाओं मे कोमलता प्रदान करने के लिए अनु... ...रण है कि अधिकतर कायिक फसलो

(vegetative crops) से खेती बसन्त व शरद ऋतु मे की जाती है। पत्तागोभी, सलाद या चाय जैसी फसल इसीलिए कृत्रिम छाया मे उगाई जाती है। सिगार लपेटने हेतु तम्बाकू के पत्तो की चौडाई बढ़ाने के लिए उन्हे छाया मे उगाया जाता है। इसके विपरित तीव्र प्रकाश पुष्पन, फलन तथा बीजोत्पादन के लिए अनुकूल है। पर्णपाती वनो मे वृक्षो पर नई पत्तियो के निकलने से पूर्व ही पुष्प खिल जाते है। सघन शकु वृक्ष वनो के वृक्षो मे पुष्पन कभी प्रचुर मात्रा मे नही होता है।

(ब) प्रकाश गुणवत्ता (Light quality) : गर्मी के मौसम मे जब सूर्य पृथ्वी के सर्वाधिक नजदीक होता है, तब उस मे लाल तथा अवरक्त प्रकाश अधिक होता है। वर्षा के मौसम मे तथा सुबह के समय अधिक तरग दैर्घ्य वाला प्रकाश अपेक्षाकृत कम पाया जाता है। पत्तियाँ लाल एव नीले प्रकाश को अधिक अवशोषित करती है अत : किसी वृक्ष की छाया मे हरे रग का प्रकाश अधिक पाया जाता है। जल के कुछ सेन्टीमीटर की गहराई पर ही लाल एव अवरक्त प्रकाश अवशोषित कर लिया जाता है अत. गहरे पानी मे कम तरग दैर्घ्य वाला प्रकाश ही पहुँच पाता है। क्लोरोफिल द्वारा लाल तथा नीले रग का प्रकाश ही सर्वाधिक अवशोषित किया जाता है। साधारणतया अवरक्त प्रकाश पौधो की वृद्धि के लिए अवरोधक है। प्रकाश गुणवत्ता का सर्वाधिक प्रभाव जल पादपो मे देखा जा सकता है जहाँ पर अलग-अलग गहराई पर अलग-अलग प्रकार के प्रकाश को अवशोषित किया जाता है अत विभिन्न प्रकार के शैवाल अलग -अलग गहराई पर पाये जाते है।

(स) प्रकाश दीप्तीकाल (Light duration) : *प्रकाश दीप्तीकाल के आधार पर* पौधे तीन भागो मे विभाजित किये जाते है –

(i) दीर्घ प्रदीप्तीकाली पौधे (long day plants)

(ii) लघु प्रदीप्तीकाली पौधे (short day plants) तथा

(iii) प्रदीप्तिकाल उदासीन पौधे (day neutral plants)

दीप्तिकाल पूरे वर्ष तक एक समान होने के कारण भूमध्य रेखीय वनो मे समान लेकिन अत्यन्त तेजी से वृद्धि होती है। ऐसे स्थानो पर पौधो मे वर्ष भर वृद्धि होती है और वर्ष भर पुष्पन भी होता है। ज्यो-ज्यो भूमध्य रेखा से उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव की ओर बढ़ते है पौधे छोटे होते चले जाते है क्योंकि वर्ष भर मे प्रकाश दिवस की सख्या उत्तरोत्तर घटती रहती है। इसी प्रकार अधिक सूर्य-दिन (sunny days) वाले क्षेत्रो वाले क्षेत्रो मे पौधो की वृद्धि अधिक बादल दिवस (cloudy days) की अपेक्षा अधिक होती है।

पतझड से पहले पत्तो मे विलग परत (abscission layer) का निर्माण तथा इससे सह सम्बधित क्रियात्मक सक्रियता से ह्रास का प्रारभ अल्प दीप्तिकाल की अनुक्रिया के कारण ही होता है।

(v) वायु (Wind)

वायु गति तथा वायु दिशा (wind direction) का वनस्पति पर प्रत्यक्ष एव परोक्ष दोनो प्रकार से प्रभाव होता है। समुद्रो या बडे जलाशयो से उठने वाली हवाओ मे आर्द्रता

अधिक होती है जबकि गरम स्थलो से उठने वाली हवाये शुष्क होती है जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ जाती है। इसी प्रकार ऊँचे पर्वतो या ध्रुवीय प्रदेशो से आने वाली हवाये तापमान को कम कर देती है जिससे ओस की बून्दे बनती है।

तेज वायु वेग से पौधो की वाष्पोत्सर्जन दर बढ़ जाती है। इसी प्रकार वायु गति के कारण अनेक सूक्ष्म जीव, कवक बीजाणु, परागकण, फल एव बीज एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाते है। इस प्रकार वायु पेड़ पौधो की जातियो एव समुदाय के विस्तार का काम करती है। तेज गति से चलने वाली हवा से पेड़ पौधे जड़ सहित उखड़ जाते हैं। तेज वायु के कारण पेड़ो की शाखाएँ, फल, कलियाँ, पुष्प, पत्तियाँ आदि टूट कर गिर जाती है। कभी-कभी तेज तूफानी हवाओं, चक्रवातो व हरिकेन के कारण भी बड़े-बडे वृक्ष उखड़ कर गिर जाते हैं। तूफानी हवाओं से सर्वाधिक नुकसान बड़े एव घने वृक्षो को होता है क्योंकि ये वृक्ष एक वायुरोध (*wind break*) या रक्षक मेखला (shelter belt) का कार्य कर वायु को रोकने का कार्य करते हैं।

वायु वेग का प्रभाव पौधो की आतरिक सरचना पर भी होता है। वायु वेग के फलस्वरूप स्तम्भ मे यात्रिक ऊत्तको (Mechanical tissues) का निर्माण अधिक होता है। सामान्य पौधो मे उत्तको का निर्माण चारो तरफ बराबर होता है लेकिन वायु प्रभावित क्षेत्रो के वृक्षो मे द्वितीयक वृद्धि व वार्षिक वलय की उत्केन्द्र वृद्धि (Ecentric growth) होती है। इस उत्केन्द्र वृद्धि के कारण तेज वायु वेग मे भी स्तम आसानी से टूट नही पाता। ऐसे क्षेत्र मे उगने वाले कुछ वृक्षो मे लाल रग की घनी दारु (xylem) विकसित हो जाती है जिसे सपीडक दारु (compression wood) कहते हैं। शाकीय पादपो मे तेज हवा के प्रभाव से स्थूलकोण ऊत्तक (collenchyma) का निर्माण अधिक होता है ताकि उन्हे अधिक यात्रिक मजबूती मिल सके।

ऊँचाई पर चलने वाली तेज हवाओं से तने के शिखर की शाखाएँ सूख जाती है। इससे पौधो की ऊचाई मे वृद्धि रुक जाती हैं। अत खुले क्षेत्रो मे वायु के प्रभाव के कारण पौधो की ऊँचाई सीमित ही रहती है। ऐसे स्थानो पर अपेक्षाकृत ऊँचे वृक्ष लगभग समान ऊँचाई तक ही पहुँचते हैं। जिसे 'सामान्य वनस्पति सीमा' कहते है। किसी उपवन के पवनाभिमुख वृक्षो मे भी ऐसा ही होता है। ये वृक्ष उपवन के अन्य वृक्षों की अपेक्षा कम ऊँचे होते है। उच्च पर्वतीय (alpine) अपावृत (exposed) क्षेत्रो मे तेज हवाएँ चलती है। यहाँ कोई वृक्ष नही उगते। यहाँ की झाड़ियाँ व शाकीय पौधे भी बौने होते हैं। वृक्ष सीमा पर स्थित काष्ठीय पौधे (उदाहरणत रोडोडेड्रान या सिल्वर फिर) अत्यन्त छोटे तथा झाडीनुमा रह जाते हैं जबकि यह पौधे उसी स्थान से कुछ सौ फीट नीचे सीधे एव ऊँचे वृक्ष होते हैं। ऐसी वनस्पति को बौना झाड़ (elfin shurb) कहते हैं।

तेज हवा के फलस्वरूप मैदानी क्षेत्रो मे ऊगने वाले फसली पौधे भूमि पर गिर जाते हैं, इसे पत्तन (lodging) कहते हैं। ऐसे स्थानो पर फसलो की बौनी किस्मे पाई जाती है।

समुद्रतट के आस-पास के ऐसे क्षेत्र जहाँ वर्ष के अधिकतर भाग मे एक ही दिशा मे (uni-directional) हवाएँ चलती है वहाँ की वनस्पति की शाखाएँ व अन्य भाग केवल वायु की दिशा की तरफ ही होते है ऐसे वृक्षो को ध्वज वृक्ष (flag trees) कहते हैं।

मरुस्थलीय क्षेत्रो मे, जहाँ मिट्टी पर वनस्पति का अभाव होता है, तेज वायु वेग अपने साथ ऊपर की उपजाऊ एव बारीक मिट्टी को बहाकर ले जाती है इससे मृदा का

अपरदन (soil erosion) होता है तथा गर्मी के मौसम मे धूल भरी आधियाँ चलती है। रेगिस्तान मे रेत के टीले एक जगह से दूसरी जगह स्थानान्तरित हो जाते है इन्हे अस्थाई रेत के टीले (shifting sand dunes) कहा जाता है। इस प्रकार की अस्थाई मिट्टी (unstable soil) पर पौधो की वृद्धि सभव नही है।

(vi) वायुमण्डलीय गैसें (Atmospheric gases) :

पृथ्वी के चारो तरफ, मिट्टी के रन्ध्रो (Pores) मे तथा जल मे घुलनशील वायु पायी जाती है। पृथ्वी के चारो तरफ 200 मील चौड़ा वायुमण्डल का घेरा है। वायुमण्डलीय गैसो मे नाइट्रोजन 79%, आक्सीजन 21% तथा कार्बन डाईऑक्साइड 0.03% होती है। इसके अतिरिक्त वायुमण्डल मे कुछ उत्कृष्ट (inert) गैसे भी पायी जाती है। हालाकि इन गैसो की प्रतिशत मात्रा मे कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नही होता फिर भी ये पौधो की वृद्धि पर अपना प्रभाव प्रदर्शित करती है।

जीवो मे गैसो के विनिमय हेतु वायुमण्डल माध्यम प्रदान करता है, ये गर्म किरणो को अवशोषित कर उसका प्रभाव कम करता है, वायुमण्डल मे उपस्थित ओजोन परत पृथ्वी पर आने वाली पराबैगनी (ultra voilet) किरणो को अवशोषित कर उन्हे पृथ्वी पर आने से रोकता है, कार्बन डाई आक्साइड पृथ्वी के ऊष्मा सन्तुलन (Heat balance) को बनाये रखने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मानव सभ्यता के विकास एव उच्च तकनिकी उपयोग के फलस्वरूप ऐसी अनेक गैसे, जो हम हमारी भौतिक सुविधाओं को बढ़ाने के लिए काम मे ले रहे है, वायुमण्डल के लिए घातक सिद्ध हुई है। वैज्ञानिको ने पता लगाया है कि शीतलीकरण (refrigeration) मे काम ली जाने वाली क्लोरो फ्लोरोओ कार्बन (सी० एफ० सी०) गैस वायुमण्डल की ओजोन परत को नष्ट कर रही है। इससे ओजोन परत मे छेद हो गये है। ओजोन परत मे छेद होने से पराबैगनी किरणे पृथ्वी पर आ रही है। इन किरणो के कारण मानव शरीर मे त्वचा (skin) के कैसर होने की सभावनाएँ बढ़ गई है।

हम यहाँ पर तीन प्रमुख गैसो के प्रभाव का अध्ययन करेगे।

(अ) कार्बन डाई आक्साइड : -- पौधो के शरीर के सभी अगो मे उपस्थित कार्बनिक पदार्थ कार्बन डाई आक्साइड से ही बनते है। हालाकि वायुमण्डल मे इसकी मात्रा अत्यन्त अल्प (0.03%) है। हरे पौधे प्रकाश सश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वय बनाकर कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते है। इस क्रिया मे ये वायुमण्डलीय कार्बन डाई आक्साइड ग्रहण करते है। श्वसन की क्रिया मे ये कार्बनिक पदार्थ पुन: आक्सीकृत हो कार्बन डाई आक्साइड वायुमण्डल को देते है। कार्बनिक पदार्थों का कार्बन डाई आक्साइड मे परिवर्तन दहन की क्रिया अथवा मृत्यु के पश्चात् होने वाली सड़ान के दौरान अपघटन (decay) द्वारा भी होता है।

एक वृहद क्षेत्र मे कार्बन डाई आक्साइड की सान्द्रता लगभग समान रहती है और समय के अनुसार उसमे मामूली परिवर्तन होता रहता है। घने वनो के क्षेत्र मे रात्रि के समय तथा प्रात: कार्बन डाई आक्साइड की सान्द्रता बढ़ जाती है और दिन मे घट जाती है।
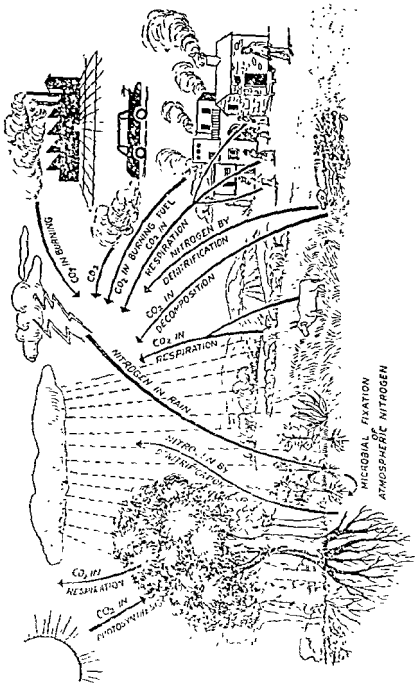
चित्र 2.6 : कार्बन–नाइट्रोजन का चक्र

जलीय पादप जल से ही कार्बन डाई आक्साइड ग्रहण करते है । जल मे कार्बन डाई आक्साइड गैस आसानी से घुल जाती है । मिट्टी मे उपस्थित कार्बन डाई आक्साइड भी पौधो पर प्रभाव डालती है । मिट्टी मे कार्बन डाई आक्साइड की अधिकता उसके मूल श्वसन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है और यह मूल तन्त्र की उपापचयी क्रियाओं को प्रभावित करता है ।
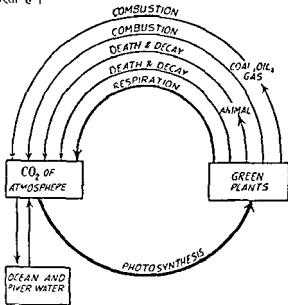
चित्र 27 · प्रकृति में कार्बन चक्र

(ब) आक्सीजन : सभी जीवो (पेड़-पौधे एव जीव-जन्तु) का जीवन आक्सीजन पर निर्भर है । इसीलिये आक्सीजन को प्राण वायु कहा जाता है । जीवन एव सही वृद्धि के लिए वायुमण्डलीय आक्सीजन आवश्यक है । आक्सीजन की मात्रा वायुमण्डल मे लगभग समान बनी रहती है । जो आक्सीजन दहन अथवा श्वसन द्वारा उपयोग मे ली जाती है उसकी पूर्ति पेड़-पौधे अपनी प्रकाश सश्लेषण क्रिया द्वारा वापिस आक्सीजन देकर कर देते है ।

(स) नाइट्रोजन : सामान्यतया वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को पेड़-पौधे स्वय सीधे ग्रहण नही कर सकते । केवल फली वाले पौधे (leguminous plants) ही कुछ जीवाणु की सहायता से वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को स्थिरीकरण करने की क्षमता रखते है । भूमि मे नाइट्रोजन बिजली की चमक वर्षा एव नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणुओं की सहायता से वायुमण्डल से पहुचती है । मृत पौधो एव जन्तुओ मे उपस्थित प्रोटीन के सड़ने-गलने से भी भूमि मे नाइट्रोजन पहुँचती है । नाइट्रोजन का सर्वाधिक भण्डार वायुमण्डल मे है उसके पश्चात् सर्वाधिक नाइट्रोजन मिट्टी या मृदा मे पायी जाती है । नाइट्रीकरण (nitrifying)

जीवाणु की मदद से नाइट्रोजन के यौगिक मिट्टी मे पाये जाते हैं। पौधो मे प्रोटीन या एन्जाइम्स के रूप मे उपस्थित नाइट्रोजन को जन्तु भोजन के रूप मे ग्रहण करते हैं। यही नाइट्रोजन मिट्टी को पुन: मल-मूत्र द्वारा अथवा मृत जन्तु ऊत्तको द्वारा प्राप्त होती है। नाइट्रोजन चक्र को चित्र (2 8) मे दर्शाया गया है।
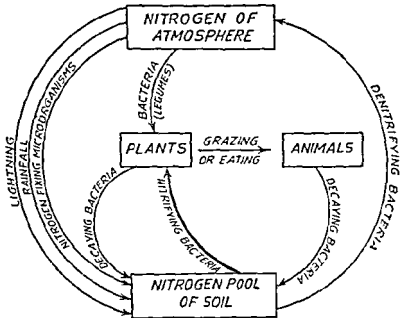
चित्र 2.8 : प्रकृति मे नाइट्रोजन चक्र

(ब) स्थलाकृतिक कारक
(Topographic factors)

स्थलाकृति शब्द का सम्बन्ध पृथ्वी के धरातर की विभिन्नता से है। भू-आकृतिक (Physiographic) विविधता के कारण किसी भी स्थान पर पायी जाने वाली वनस्पति प्रभावित होती है। पृथ्वी का धरातल सभी स्थानो पर एक समान नही है। कही पर गड्ढे तो कही ऊँचे-ऊँचे पहाड है। भू आकृति मे विविधता के फलस्वरूप ही पहाड़, नदियाँ, जलाशय एव समुद्रो का निर्माण होता है।

सामान्यत: स्थलाकृति पौधो की वृद्धि एव वनस्पति वितरण को सीधे प्रभावित नही करती बल्कि ये कारक जलवायवी कारको (जल, प्रकाश एव तापमान) को परिवर्तित कर पौधो एव वनस्पति को परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए सतह मे केवल कुछ मिली मीटर की भिन्नता से मिट्टी की जल उपलब्धता प्रभावित होती है तथा यह बीजो के अंकुरण को सर्वाधिक प्रभावित करती है। किसी खेत अथवा सड़क के किनारे या बजर

भूमि पर थोडा सा गड्ढा भी पादप वृद्धि को अत्यधिक प्रभावित करता है तथा यह अन्तर एक साधारण व्यक्ति भी आसानी से देख सकता है। वर्षा का जल नीचले स्थानो पर इक्ट्ठा हो जाता है तथा वह पानी एक लम्बे समय तक पादप वृद्धि हेतु उपलब्ध रहता है जबकि ऊँचे स्थानो पर या गड्ढे के किनारो का जल अपेक्षाकृत जल्दी सूख जाता है। निचले स्थानो के आसपास के क्षेत्रो पर उपस्थित वृक्ष गड्ढे मे उग रहे शाकीय पादपो को छाया प्रदान करते है जिससे उन्हे प्रकाश एव ताप कम उपलब्ध होता है। ये प्रभाव एक अत्यन्त छोटे क्षेत्र मे देखे जा सकते है और इस प्रकार भू-आकृति मे सूक्ष्म परिवर्तन को माइक्रोटोपोग्राफी या सूक्ष्म-भू-आकृति कहते हैं।

सूक्ष्म-भू-आकृति विभिन्नताओं की तरह ही भू-आकृति मे अधिक भिन्नता का वनस्पति वितरण पर अधिक प्रभाव होता है। समुद्र तल से ऊँचाई (Altitude) मे परिवर्तन, पठार (Plateaus) पहाड (Hills) घाटियाँ (Valleys) एव समुद्रो मे भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। इस प्रकार की भिन्नताओं को निम्न चार भागो मे बाँटा जा सकता है .--

(अ) तुगता अथवा समुद्र तल से ऊँचाई (altitude)

(ब) ढाल (Slope)

(स) भू-अनावरण (exposure)

(द) पर्वत मालाओं की दिशा (direction of mountain chains)

(i) तुंगता अथवा समुद्र तल से ऊँचाई (Altitude) : समुद्र तल से ऊँचाई जलवायु को परिवर्तित कर वहाँ की वनस्पति को अत्यधिक प्रभावित करती है। जैसा की पूर्व मे भी लिखा जा चुका है कि ऊँचाई मे बढने से तापमान मे कमी हो जाती है। इसी प्रकार प्रकाश तीव्रता एव प्रकाश की मात्रा भी ऊँचाई के साथ परिवर्तित होती है। तुगता के बढने पर वायु वेग तथा वायुमण्डलीय आर्द्रता भी बढ जाती है। भूमध्य क्षेत्र मे भी यदि पहाड की ऊँचाई समुद्र तल से 6000 मीटर (20,000 फीट) है तो वह स्थान बर्फ से ढका रहेगा। भूमध्य क्षेत्र से थोडा उत्तर की तरफ का वह स्थलीय क्षेत्र जो समुद्र तल से 4500 मीटर (15000 फीट) से अधिक ऊँचाई पर स्थित है वहाँ भी पूरे वर्ष भर बर्फ जमी रहेगी। ऐसी ऊँचाइयो पर बादल एव कोहरा छाया रहता है। इन सभी कारको का निश्चित प्रभाव वहाँ की वनस्पति पर पडता है। यदि हम मैदानी क्षेत्रों से पहाडो पर जावे तो इस परिवर्तन को आसानी से देख सकते है।

उदाहरण के लिए हिमालय की तलहटी पर यानि गगा के ऊपरी मैदानो मे (upper Gangetic plains) वर्षा पाती वन पाये जाते है। ऐसे स्थानो पर शीशम *(Delbergia Sisoo)*, आम *(Mangifera indica)*, अर्जुन *(Terminalia arjuna)*, बबूल *(Acacia nilotica)* तथा टेमारिक्स डाइयोका *(Tamarix dioica)* जैसे वृक्ष पाये जाते है। थोडी सी उँचाई पर बढने पर हमे साल *(Shorea robusta)*, शीशम *(Dalbergia Sisoo)* एव कचनार *(Bauhinia variegata)* के वृक्ष दिखाई देने लगेगे। लेकिन लगभग 1200 मीटर की ऊँचाई तक पहुँचने पर शकुधारी वृक्ष (प्रमुख रूप स पाइनस या चीड के वृक्ष) सम्मिलित होने लगते है। ऐसे स्थानो पर आवला *(Phyllanthus emblica)* भी नजर आने लगता है। जैसे जैसे हम ऊँचाई की तरफ
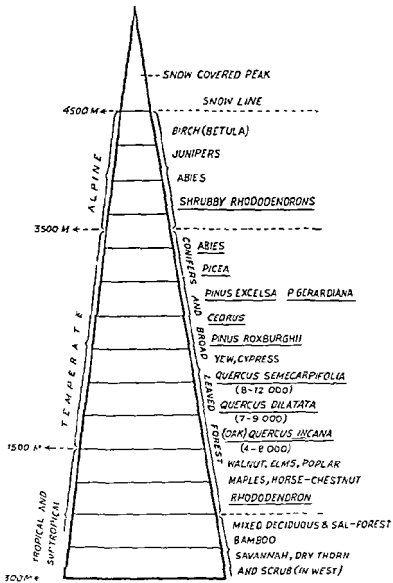
चित्र 2.9 : हिमालय की पहाड़ी पर ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का वितरण

बढ़ते है तो लगभग 1800 मीटर तक (6000 फीट) यानि मसूरी की पहाड़ियो पर हमे शकुधारी वृक्ष दिखाई देने लगते है जिनकी छाया मे साधारणतया फर्न ऊगते हुए पाये जाते है। इससे अधिक ऊँचाई पर बढ़ने पर हम देखेगे कि मैदानी क्षेत्र की वनस्पति की कोई भी जाति वहाँ पर नही पायी जाती तथा कोणधारी वृक्षो के साथ-साथ ओक वृक्षो की सख्या मे भी वृद्धि होने लगती है। और अधिक ऊँचाई पर एबीज तथा क्यूप्रेसस जैसे कोणधारी वृक्ष एव रोडोडेन्ड्रान नजर आने लगते है। लगभग 3600 मीटर (12,000 फीट) की ऊँचाई पर वृक्षो की मात्रा कम होकर समाप्त हो जाती है और केवल कुछ बौनी झाड़ियाँ ही पायी जाती है। इस स्थान से अधिक ऊँचाई पर वृक्ष नही पाये जाते है। इसी कारण इसे वृक्ष कतार (tree line) अथवा काष्ठ कतार (umber line) कहते है। इससे अधिक ऊँचाई पर केवल कुछ झाड़ियाँ पायी जाती है जो शनै· शनै: अल्पाइन शाकीय वनस्पति मे परिवर्तित होती जाती है जहाँ कुछ घास, लाइकेन, मॉस इत्यादि पाये जाते है। लगभग 4550 मीटर (15,000 फीट) की ऊँचाई के पश्चात् किसी भी प्रकार की वनस्पति नही पायी जाती, केवल बर्फ से ढकी भूमि ही पायी जाती है।

(ii) **ढाल (Slope)** : *पहाड़ी स्थानो पर ढलान पाये जाते हैं। वर्षा का जल ढलानो से तेजी से बहकर नीचे की तरफ आ जाता है। अत्यधिक वर्षा के पश्चात् भी ढलानो* की मिट्टी शुष्क ही रहती है क्योकि वर्षा के पानी के बहकर निकल जाने के कारण जल मिट्टी मे न तो अवशोषित हो पाता है और न ही वहाँ ठहर पाता है। ढलान जितना अधिक होगा जल का बहाव उतना ही तेज होगा। तेज जल बहाव वाले अधिक ढाल (steep slope) क्षेत्रो की मिट्टी भी जल के साथ बहकर नीचे आ जाती है। ऐसे स्थानो पर मरुद्भिद वनस्पति पायी जाती है। पहाडी ढलानो पर उगने वाले वृक्षो की जड़े खडी नीचे की ओर न जाकर ढलान के समान्तर बनी रहती है ताकि वह वृक्ष को थामे रख सके तथा कुछ मात्रा मे जल को रोके रख सके। ढलानो पर जल स्तर (water table) भी काफी गहरा होता है जिससे पादपो की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ढाल कम होने पर वर्षा का जल अपेक्षाकृत कम वेग से बहता है और उसका कुछ भाग मिट्टी द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है अत ऐसे ढलानो पर समोद्भिद पादप पाये जाते है। ढलानो की अधिकता का वनस्पति पर प्रभाव चित्र (2 10) मे दर्शाया गया है।
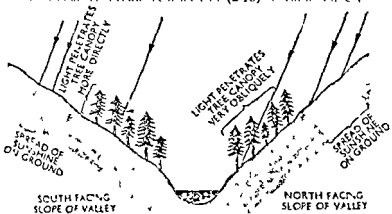
चित्र 2.10 : ढाल की तीव्रता का वनस्पति पर प्रभाव

(iii) भू-अपावरण (Exposure) : समतल भूमि पर सूर्य की किरणे एव वायु वेग का प्रभाव समान होता है। लेकिन किसी पहाडी पर उसके ढेलान की दिशा के कारण सूर्य की किरणे एव वायु वेग का प्रभाव भिन्न हो सकता है। वायु दिशा की तरफ (wind word side) की तुलना म वायु विपरित दिशा की ओर (leeward side) के तापमान मे शीघ्र गिरावट होती है यही कारण है कि नीलगिरी के पहाड़ो पर की वायु विपरित दिशा की तरफ प्रति 100 मीटर की ऊँचाई पर 1° से० तापमान मे गिरावट आती है।

हिमालय के पहाड़ो पर दक्षिण दिशा की तरफ वाले ढलान पर मानसून की वर्षा अच्छी होती है तथा यहाँ ठण्डी हवाये भी कम चलती है अत यहाँ सघन वनस्पति उगती है। उत्तरी ध्रुव या आर्क्टिक से आने वाली ठण्डी हवाओं के कारण ही उत्तरी हिमालय की वनस्पति की सघनता कम होती है। इसी प्रकार पूर्व की तरफ की पर्वत श्रेणियो पर वर्षा अधिक होती है। अत आसाम तथा उत्तरी पश्चिमी बगाल मे वनस्पति वृष्टि वनो के समान पायी जाती है जबकि पश्चिमी हिमालय पर अपेक्षाकृत काफी कम मात्रा मे एव वर्ष के कुछ भाग मे ही वर्षा होने के कारण वहाँ की वनस्पति एकदम भिन्न प्रकार की होती है।
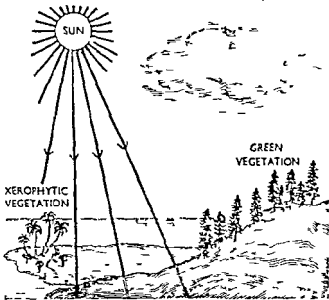
चित्र 2 11 सूर्य की किरणों का वनस्पति पर प्रभाव

(iv) पर्वत मालाओं की दिशा (Direction of mountain chains) : पवत मालाओं की दिशा भी किसी स्थान की वनस्पति को प्रभावित करती है। यदि पर्वत मालाएँ नम हवा की दिशा की तरफ है तो वे वायु को रोक लेती है तथा यह नमी युक्त वायु सघनित होकर वर्षा कर देती है। आसाम के गारो, खासी और जैन्तिया पहाड़ो पर इसी कारण वर्षा अधिक होती है। बगाल की खाड़ी से आने वाली नम हवाये पहाड़ से टकराकर वर्षा करती है विश्व मे सर्वाधिक वर्षा वाले क्षेत्र चेरापूजी मे इसी कारण सबसे अधिक

वर्षा होती है और वहाँ सघन वनस्पति पायी जाती है। यह हवाये आसाम को पार कर पश्चिमी क्षेत्र की तरफ आती है और उत्तरी भारत मे भी अच्छी वर्षा करती है।

अरब सागर से उठने वाली नम या मानसूनी हवाये बिना किसी अवरोध के राजस्थान राज्य के ऊपर से गुजर जाती है और यह क्षेत्र शुष्क ही बना रहता है।

हिमालय का बाहरी भाग (outer himalaya) मे अधिक वर्षा होने के कारण सघन वनस्पति पायी जाती है परन्तु मध्य व केन्द्रीय हिमालय मे कम वर्षा के फलस्वरूप कम वनस्पति दिखाई देती है। यही दृश्य कूल्लू घाटी के दक्षिणी एव उत्तरी पहाड़ी भागो पर देखा जा सकता है। यहाँ दक्षिणी पहाड़ी अधिक हरी भरी तथा उत्तरी पहाड़ी (लाहोल घाटी) कम वनस्पति युक्त है।

(स) मृदीय कारक (Edaphic Factors)

धरती का वह ऊपरी आवरण जो चट्टानो के अपक्षय से बना है और जिसमे कार्बनिक पदार्थ (मृत पौधो एव मृत जन्तुओं के अवशेष), जल, वायु इत्यादि का मिश्रण उपस्थित हो तथा जिसमे वनस्पति मूल प्रवेश कर पौधे को स्थिर कर पौधे के लिए खनिज लवण एव जल का अवशोषण कर सके, उसे मृदा कहते है। मृदा (Soil) को साधारण बोलचाल की भाषा मे मिट्टी भी कहा जाता है। मृदा का अध्ययन पेड़-पौधो के अध्ययन मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मृदा के वैज्ञानिक अध्ययन को मृदा विज्ञान या पीडोलोजी (Pedology) कहते है।

लगभग सभी पादप (कुछ परजीवी एव अधिपादपो को छोड़कर) मृदा मे अपनी मूल द्वारा स्थित रहते है तथा उसी से जल एव खनिज लवण अवशोषित करते है। मृदा का निर्माण चट्टानो के अपक्षय (Weathering) के कारण होता है। चट्टानो के अपक्षय के फलस्वरूप उनके छोटे-छोटे कण (Small partucals) बन जाते है। इन कणो मे पौधो एव जन्तुओं के अपघटित अवशेष मिलकर मिट्टी या मृदा का निर्माण करते है। अतः मृदा निर्माण को हम निम्न दो अवस्थाओ मे बाँट सकते है –

(अ) चट्टानों का अपक्षय (Weathering of rocks)

(ब) मृदा जनन (Pedogenesis)

प्रवृति मे चट्टानो का अपक्षय होना एक निरन्तर चलने वाली प्रकिया है जिससे बड़ी एव कठोर चट्टाने टूटकर अत्यन्त छोटे कणो मे परिवर्तित होती रहती है। अपक्षय की क्रिया मुख्यतया निम्न तीन कारक या शक्तियो द्वारा होती है –

(i) **भौतिक कारक** (Physical factors)

(ii) **रासायनिक कारक** (Chemical factors)

(iii) **जैविक कारक** (Biological factors)

चट्टानो पर मौसम के प्रभाव से चट्टानो के टूटने की क्रिया प्रारभ होती है। चट्टानो मे उपस्थित खनिज पदार्थ गर्मी एव सूर्य की तेज धूप के कारण फैलते है तथा ठण्ड एव रात्रि मे सिकुड़ते है। कभी-कभी अत्यन्त गर्म चट्टानो पर वर्षा का जल भी गिरता है। इससे चट्टानो की ऊपरी परत चटखने लगती है एव उनमे दरारे पड़ जाती है इन दरारो

मे वर्षा का जल इकट्ठा होने लगता है। वायुमण्डल मे उपस्थित कार्बन डाई ऑक्साइड इस जल मे अल्प मात्रा मे घूल कर कार्बनिक अम्ल का निर्माण करती है और यह कार्बनिक अम्ल एक तनु अम्ल होने के कारण चट्टानो मे उपस्थित कुछ खनिज पदार्थ के साथ क्रिया करता है। इससे चट्टानो के कुछ भाग का अपक्षय हो जाता है तथा मिट्टी की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा का निर्माण हो जाता है। लाइकेन, शैवाल या अन्य ऐसे पादप जो इस जल मे अथवा गीली चट्टान पर ऊग सकते हैं वे वहाँ ऊगने लगते हैं। पुन गर्मी के मौसम मे उक्त सारा पदार्थ शुष्क हो जाता है। बरसो तक इस प्रकार की प्रक्रिया के फलस्वरूप चट्टान का भाग टूटकर विलग हो जाता है। वैसे ग्लेशियर के पिघलने एव अन्य अनेक कारणो से भी चट्टान के मोटे-2 टुकड़े टूटते रहते हैं। प्राय: ऊँचे स्थानो से गिरने वाले झरने, वर्षा की बून्दे, औला वृष्टि आदि चट्टानो के मोटे टुकड़ो को लुढ़काकर नदियो की तेज धारा मे बहा देती है। नदियो की तेज धारा मे चट्टानो के टुकड़े एक दूसरे से टकराकर छोटे-2 टुकड़ो मे तथा अन्त मे अत्यन्त बारीक कणो मे परिवर्तित हो जाते हैं। इस सारी क्रिया को चट्टानो का अपक्षय होना कहते हैं।

चट्टानो के अपक्षय से निर्मित बारीक खनिज कणो मे मृत जीव जन्तुओं, पेड़-पौधो के भाग अथवा त्याज्य (Waste) पदार्थ मिल जाते है। इन कार्बनिक पदार्थों का बेक्टीरिया अथवा अन्य सूक्ष्म जीवो द्वारा अपघटन हो जाता है और इस प्रकार सड़ा गला मृत अवशेष बारीक खनिज कणो मे सम्मिलित हो जाता है इस क्रिया को मृदा जनन या Pedogenesis कहते हैं। इस प्रकार से बना मिश्रण मृदा या मिट्टी कहलाता है।

(i) मृदा स्तरीकरण (Soil Profile) –

मिट्टी बनने की प्रक्रिया प्रकृति मे अनवरत चलती रहती है। मिट्टी के सबसे ऊपर की सतह पर मृत पदार्थ एव त्याज्य पदार्थ सर्वाधिक मात्रा मे उपलब्ध होते है और इसी क्षेत्र मे कवको एव जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण मृत पदार्थों को सड़ाने की क्रिया अत्यन्त सक्रियता से होती है अत: ह्यूमस का निर्माण भी ऊपरी सतह पर अधिक एव मृदा की गहराई के साथ उत्तरोत्तर कम होता जाता है। अत: मृदा की ऊपरी परत एव नीचे की परतों के रूप, रग एव बनावट मे अन्तर पाया जाता है। यदि किसी स्थान पर उपस्थित मिट्टी मे एक सीधी खाई खोदी जाय तो मृदा की भिन्न-भिन्न परतो का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। इस प्रकार मृदा की परतो के अध्ययन को मृदा स्तरीकरण या Soil Profile कहते हैं। किसी स्थान पर पाये जाने वाले मृदा स्तरीकरण को चित्र (2 12) मे दर्शाया गया है। मृदा मे पायी जाने वाली भिन्न-2 परतो को A, B, C एव D परत मे विभाजित किया जाता है।

1. ए संस्तर (A horizon) –

मृदा स्तरीकरण की यह सबसे ऊपर की परत है। इसे ऊपर की मिट्टी या उपरिमृदा (Top Soil) कहा जाता है। मिट्टी की इसी परत मे पौधो की जडे इत्यादि पायी जाती है। इसकी मोटाई अलग-अलग प्रकार के आवासो मे भिन्न-भिन्न होती है इसका रग नीचे की परतो की अपेक्षा अधिक गहरा होता है और गठन (Texture) की दृष्टि से यह अपेक्षाकृत हल्की (Light) परत होती है। अधिक सछिद्रता (Porosity) के कारण इस परत मे जल आसानी से प्रवेश कर जाता है इसमे ह्यूमस की अधिकता रहती है। गठन,

क्रिया एव रग के आधार पर इस सस्तर को पुन निम्न सहस्तरो मे विभाजित किया जाता है ।

(अ) Aoo सह स्तर – यह सबसे ऊपर की सहपरत (Sub layer) है जिसका निर्माण पौधो से गिरी पत्तियो, टहनियो, अन्य मृत जीवो, जीव अगो अथवा त्याज्य (Excretory) पदार्थों से होता है । इस परत पर पडे सभी पदार्थों को आसानी से पहचाना जा सकता है ।

(ब) Ao सहस्तर – यह महस्तर Aoo के ठीक नीचे होता है और यहाँ पर मृत जैव पदार्थो का अपघटन प्रारभ हो जाता है । इस सहस्तर मे सूक्ष्म जीवो, कवक एव कीटो आदि की सख्या सर्वाधिक होती है । यहाँ पर उपस्थित जैव अवशेषो का पूर्ण अपघटन नही हो पाता है फिर भी जीवो अथवा उनके भागो पहचाना नही जा सकता । इस परत का रग कुछ गहरा होता है ।

(स) A_1 सहस्तर – यह सहस्तर रग मे गहरा एव सर्वाधिक कार्बनिक पदार्थो की मात्रा से युक्त होता है । ये कार्बनिक पदार्थ शैल कणो के खनिज कणो मे मिश्रित हो ह्यूमस (Humus) का निर्माण करते है । ह्यूमस की उपस्थिति के कारण इसका रग गहरा भूरा या काला होता है । इस सहस्तर मे कार्बनिक पदार्थों के अतिसूक्ष्म कण तथा खनिज लवणो के मिश्रित रहने से इसे ह्यूमिक (Humic) या मेलेनाइज्ड क्षेत्र (Melanized *region*) भी कहते है ।

(द) A_2 सहस्तर – इस सहस्तर मे कार्बनिक पदार्थों की मात्रा कम तथा खनिज लवणो की मात्रा अधिक हो जाती है । अपेक्षाकृत इसका रग भी कम गहरा होता है । अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे इस सहस्तर से खनिज व कार्बनिक पदार्थ निक्षलित (bleach) होकर नीचे की परतो मे चले जाते है इसी कारण से इस सहस्तर को निक्षलित क्षेत्र (Zone of bleaching) भी कहा जाता है ।

2. बी संस्तर (B horizon) –

ए सस्तर के नीचे वाली परत को B सस्तर कहा जाता है इसे अवमृदा या Subsoil भी कहते है । अवमृदा का रग उपरिमृदा की अपेक्षा कम भूरा होता है । यह परत अपक्षयी शैल पदार्थो की बनी होती है जिसमे बहुत से विलयशील खनिज तथा महीन शैल कणिकाएँ मिली होती है और यह विलय शील पदार्थ उपरिमृदा से नीचे की ओर रिसते हुए जल के साथ आ जाती है । यह परत लगभग जैव रहित होती है । वर्षा का रिसता हुआ जल अवमृदा मे एकत्रित हो जाता है । यही जल बाद मे केशिकात्व (Capillarity) द्वारा उपरिमृदा की ओर चढ़ता है ।

रग एव सगठन के आधार पर B सस्तर को भी B_1, B_2, एव B_3 सहस्तरो मे विभाजित किया जाता है ।

3. सी संस्तर (*C Horizon*) –

अपूर्ण अपक्षयित चट्टानो की यह परत बी सस्तर के नीचे पायी जाती है । बड़े एव विशाल वृक्षो की जडे अनेको बार इस सस्तर मे पहुँच जाती है । इस क्षेत्र मे जैविक सक्रियता न्यूनतम होती है ।

4. डी संस्तर (D Horizon) –

यह सस्तर मातृ चट्टानो (Parent rocks) का बना होता है। इन चट्टानो के ऊपर जल एकत्रित होता है।

मृदा स्तरीकरण का स्वरूप भिन्न-भिन्न स्थानो पर भिन्न होता है। मृदा स्तरीकरण का स्वरूप किसी भी स्थान की जलवायु तथा वहाँ उपस्थित वनस्पति पर अधिक तथा मातृ चट्टानो (Parent rocks) पर कम निर्भर करता है। घास स्थलो की अपेक्षा वन क्षेत्रो मे उपरिमृदा का स्तर प्राय: मोटा होता है। ऐसे स्थानो पर जहाँ वनस्पति नही पायी जाती वहाँ उपरिमृदा का निर्माण नही हो पाता है। ऐसे क्षेत्रो मे अवमृदा भूपृष्ठ तक पहुँच जाती है और मृदा स्तरीकरण केवल एक ही सस्तर का बना होता है।

(ii) मृदा संगठन (Composition of Soil) –

किसी भी स्थान की मृदा मे खनिज कण, कार्बनिक पदार्थ, जल एव वायु पाये जाते है। अलग-अलग स्थानो की मृदा मे इनकी प्रतिशत मात्रा मे भिन्नता सभव है लेकिन किसी बगीचे की मानक मृदा मे इनकी मात्रा निम्न प्रकार की होती है –

1 खनिज कण (Mineral matter) लगभग 40%
2 कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) लगभग 10%
3 मृदा जल (Soil water) लगभग 25%
4 मृदा वायु (Soil air) लगभग 25%

मृदा मे उपस्थित खनिज कण शैल चट्टानो के अपक्षय के फलस्वरूप प्राप्त होते है और इनके कणो का आकार भिन्न-भिन्न होता है। कणो के आकार के आधार पर इन्हे निम्न भागो मे विभाजित किया गया है।

कणों के नाम	कणों का आकार (व्यास)
ककड (Gravel)	2 00 मि० मी० से अधिक
मोटी बालु (Coarse sand)	2 00 से 0 2 मि० मी० तक
बारीक बालु (Fine sand)	0 2 से 0 02 मि० मी० तक
गाद (Silt)	0 02 से 0 002 मि० मी० तक
चिकनी मिट्टी (Clay)	0 002 मि० मी० से कम

(iii) मृदा गठन (Soil texture) –

मृदा मे उपस्थित खनिज कणो का आकार तथा उनकी मात्रा मृदा गठन का निर्माण करता है। खनिज कणो की अधिकता अथवा न्यूनता ही मृदा गठन को नियत्रित करता है। मृदा गठन के आधार पर मृदा को निम्न सात श्रेणियो मे विभाजित किया जाता है–

क्र० स०	मृदा गठन प्रकार	मृदा कणों की मात्रा
1	बलुई मृदा (Sandy soil)	बालु कण अधिक मात्रा मे
2	चिकनी मृदा (Clayey soil)	चिकनी मिट्टी अधिक मात्रा मे
3	दुमट मृदा (Loam soil)	बालू, गाद व चिकनी मिट्टी लगभग समान मात्रा मे
4	बलुई दुमट मृदा (Sandy loam soil)	दुमट मिट्टी मे बालू की मात्रा अधिक
5	गाद दुमट मृदा (Silt loam soil)	दुमट मिट्टी मे गाद की मात्रा अधिक
6	बलुई चिकनी मृदा (Sandy loam soil)	दुमट मिट्टी मे चिकनी मिट्टी की अधिकता
7	बलुई चिकनी मृदा (Sandy clay soil)	बालू व चिकनी मिट्टी समान मात्रा मे

मृदा गठन का पौधों पर प्रभाव –

1. मृदा मे अधिक गाद एव चिकनी मिट्टी की उपस्थिति से मूल वृद्धि तथा पार्श्व मूलो के सवर्धन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।
2. मोटे गठन (Coarse-textured) मृदा पर वर्षा का जल गिरने पर तुरन्त अवशोषित हो जाता है जबकि बारीक गठन (Fine textured) मृदा मे जल अवशोषण अपेक्षाकृत धीरे होता है।
3. मृदा का बारीक गठन जल की गति (Movement of water) को कम कर देता है।
4. बारीक गठन मृदा के प्रति इकाई आयतन मे अधिक जल धारण क्षमता (Water holding capacity) होती है। हालाकि बारीक गठन मृदा मे जल धारण क्षमता अधिक पायी जाता है फिर भी (i) यह जल मृदा की ऊपरी परत मे ही सग्रहित होता है और जल्द ही सूख जाता है। (ii) जल को अपने भीतर प्रवेश आसानी से नही होने देता जिससे अधिकतर वर्षा जल बहकर निकल जाता है (iii) मूल प्रवेश का प्रतिरोध करने से मूल गहरे जल क्षेत्रो तक नही पहुँच पाती (iv) मृदा वायु की कमी के कारण मूल विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।
5. बारीक गठन के मृदा कणो मे उपस्थित कोलायड कणो से पोषक तत्व चिपके (Adsorbed) रहते है जिसके फलस्वरूप बारीक गठन मृदा मे अधिक उपजाऊ क्षमता पायी जाती है।
6. बारीक गठन वाली कोलायडी चिकनी मिट्टी मे agreegation क्षमता अधिक होती है जिससे उसकी जल एव पोषक तत्वो को समोजित करने की क्षमता बढ़ जाती है। ऐसी aggregated मृदा पादप विकास हेतु उपयुक्त

होती है और इसके कण जल एव वायु द्वारा आसानी से अपरदित (Erosion) नही हो पाते।

7. (i) बलुई मिट्टी मे अन्तर कणीय स्थान अधिक होने के कारण अधिक वायु उपलब्ध होती है जिससे ह्यूमस का आक्सीकरण हो जाता है और यह पौधो के पूर्ण विकास के लिए उपयुक्त नही होती । (ii) जिस मृदा मे सभी प्रकार के कण लगभग समान मात्रा मे पाये जाते है तथा कणो का aggregation अच्छा होता है ऐसी मिट्टी के अन्तरकणीय स्थानो मे जल व वायु की उपलब्धता अच्छी रहती है । ऐसी मृदा वनस्पति के विकास एव वृद्धि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है । (iii) अधिक भारी मिट्टी मे aggregation कम पाया जाता है । इसमे आक्सीजन की कमी हो जाती है तथा कार्बन डाईआक्साइड की अधिकता के कारण पौधो की मूल को हानि पहुँचने की सभावना रहती है ।

(iv) कार्बनिक पदार्थ (Organic matter) –

जैसा कि पूर्व मे बताया जा चुका है कि पौधो एव जन्तुओं के मृत भागो तथा त्याज्य पदार्थों के अपघटन से मृदा मे कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होता है । अपघटन का यह कार्य प्रमुख रूप से सूक्ष्म जीवो (कवक एव बेक्टीरिया) द्वारा सम्पन्न होता है । प्राकृतिक वनो, चारागाहो आदि स्थानो पर प्रतिवर्ष पत्तियाँ, टहनियाँ, फल, फूल एव अन्य जन्तुओं का मल इत्यादि जमा होता रहता है । भूमि पर सूखे पत्ते, टहनियो आदि की तह बन जाती है । जिसे लीटर (Litter) कहते हैं । इस लीटर का सूक्ष्म जीवो एव अन्य जीवो द्वारा अपघटन होता है । अपघटित पदार्थ एक कार्बनिक पदार्थ होता है जो रग मे काला अथवा गहरा भूरा, भार मे हल्का तथा चूर्ण के रूप मे पाया जाता है । अपघटन की क्रिया मे कार्बन डाई आक्साइड, अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसे निकलकर वायुमण्डल मे विलीन हो जाती है । अपघटन के पश्चात् बचे ठोस पदार्थ मे पोषण की दृष्टि से दो मुख्य रासायनिक पदार्थ होते है ।

(i) कार्बनिक पदार्थ तथा (ii) अनेक प्रकार के घुलनशील अकार्बनिक लवण । मृदा कार्बनिक पदार्थ अधिकाशत· भूमि की ऊपरी परतो मे पाया जाता है तथा सूक्ष्म जीवो की प्रक्रिया के फलस्वरूप बारीक कणो मे टूटकर मृदा मे मिश्रित हो जाते है । इससे पौधो को खनिज पदार्थों की पूर्ति होती रहती है । मृत जैव भागो के अपघटित होकर ह्यूमस मे परिवर्तित होने की क्रिया को ह्यूमिफिकेशन (Humification) कहते है । ह्यूमस का खनिज लवणो मे परिवर्तित होने की क्रिया खनिजीकरण (Mineralisation) कहलाता है ।

मृदा मे ह्यूमस की उपस्थिति पादप वृद्धि के लिए अत्यन्त आवश्यक है । कार्बनिक पदार्थ की मृदा मे उपस्थिति का निम्नांकित महत्व है –

(i) ह्यूमस की उपस्थिति से मृदा की रन्ध्रता (Porosity) बढ़ जाती है । रन्ध्रता अधिक होने पर मृदा मे जल एव वायु का प्रवेश सुगम हो जाता है जिससे मृदा की जलशोषण क्षमता बढ़ जाती है ।

(ii) ह्यूमस की प्रकृति कोलाइडी होती है। इसकी उपस्थिति से मृदा की जल धारण क्षमता (Water holding capacity) बढ़ जाती है।

(iii) ह्यूमस की उपस्थिति से मिट्टी की जुडाव (Binding) क्षमता अधिक हो जाती है अत बालू मिट्टी मे ह्यूमस की उपस्थिति से खनिज कण आपस मे चिपके रहते है जिससे वनस्पति का उचित विकास एव वृद्धि होती है।

(iv) ह्यूमस की प्रकृति अम्लीय होती है। यह मृदा मे उपस्थित क्षार लवणो से सयुक्त हो जाता है और इस प्रकार मृदा के क्षार लवणो के ह्रास को रोकता है।

(v) ह्यूमस युक्त मृदा मे मृदा जीव (*Soil organism*) जैसे – केचुआ, जीवाणु कवक इत्यादि की अधिकता पाई जाती है। ये जीव मिट्टी के उपजाऊपन को बढ़ाते हैं।

(vi) ह्यूमस मे उपस्थित विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व (N, P, K, Ca Mg) पौधो के विकास हेतु आसानी से उपलब्ध हो जाते है।

(v) मृदा जीव (Soil Organism) --

मृदा मे अनेक प्रकार के जीव (गुरु एव सूक्ष्म जीव) पाये जाते है। मिट्टी मे जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, केचुआ आदि अनेक प्रकार के जीव पाये जाते है। मृदा जीवो की उपस्थिति पेड़-पौधो के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सुविधा की दृष्टि से मृदा जीवो को दो श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है।

(अ) मृदा वनस्पति जात (Soil flora) – इसमे शैवाल, नील हरित शैवाल, जीवाणु, कवक, माइकोराइजा, पौधो के भूमिगत भाग इत्यादि सम्मिलित किये जाते है।

(ब) मृदा प्राणिजात (Soil fauna) – इसमे केचुएँ, आर्थोपोडस, रोडेन्टस, प्रोटोजोआ, नीमेटोड, कीट, दीमक इत्यादि सम्मिलित किये जाते है।

मृदा जीवो की उपस्थिति पौधो के विकास मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कुछ कार्य निम्न प्रकार है –

(i) मृदा मे उपस्थित मृत जीवो एवं त्याज्य पदार्थों को सूक्ष्म जीव अपघटित कर साधारण कार्बनिक पदार्थों मे बदल देते हैं। इससे मृदा मे पोषक तत्वो की मात्रा बढ़ जाती है। इस प्रकार खनिज लवणो का चक्र लगातार चलता रहता है।

(ii) मृदा मे उपस्थित सूक्ष्मजीव प्राकृतिक अपमार्जनको का कार्य भी करते है। इस प्रकार मिट्टी की सफाई लगातार होती रहती है और वहाँ कचरा जमा नही हो पाता।

(iii) अनेक मृदा सूक्ष्मजीव जैसे– वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु (उदाहरण – ऐजेटोबेक्टर, क्लोस्ट्रीडियम आदि) अथवा लिग्यूमिनोसी कुल की ग्रंथिल मूल मे उपस्थित जीवाणु (उदाहरण – राइज़ोबीयम) वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर मृदा की उर्वरकता बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

(iv) अनेक मृदा जीव मूल की बाहरी सतह पर वृद्धि प्रेरक पदार्थों का निर्माण करते है। इन रसायनो मे इन्डोल ऐसेटिक अम्ल एव जिबरलिक अम्ल प्रमुख है। कुछ जीवाणु अथवा कवक मूल के आसपास के क्षेत्र जिसे मूल मण्डल (Rhizosphere) कहते है वहाँ अपनी विशिष्ट क्रियाओं द्वारा इस प्रकार के रसायनो का उत्पादन करते है।

(v) मृदा की उर्वरकता बढ़ाने मे केंचुओं का महत्वपूर्ण योगदान है। केंचुएँ मिट्टी को खाकर इसे पुरीख (Casting) के रूप मे बाहर निकालते है। ये मिट्टी को उलट-पलट कर उसका अच्छा मिश्रण तैयार करते है। मिट्टी के कणो को बारीक पीसने का कार्य भी केंचुएँ के गिजार्ड (Gizzard) मे होता है। मिट्टी के बारीक कण एव अपाच्य भोजन केंचुएँ के शरीर से छोटी-छोटी गोलियो के रूप मे बाहर निकल आता है। इस प्रकार मिट्टी नरम, बारीक एव वायु मिश्रित हो जाती हैं।

(vi) अनेक उच्च श्रेणी पादपो (बीजीय पादपो) मे पौधो की जड़ो के चारो तरफ एक कवक लिपटी रहती है जिसे माइकोराइजा (Mycorrhiza) कहते हैं। इस प्रकार के पौधे अकुरण के पश्चात् कवक विहिन मृदा मे वृद्धि नही कर पाते। कवक की उपस्थिति मूल के जल अवशोषण एव खनिज पोषण मे सहायक होती है। मूल एव माइकोराइजा का यह सम्बन्ध सहजीविता का एक उदाहरण है। ऐसे पौधो की मूल मे मूल रोमो का अभाव होता है जिसकी पूर्ति कवक द्वारा होती हैं।

(vi) मृदा जल (Soil Water) –

मृदा मे जल की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। वैसे तो प्रकृति मे मृदा जल का मुख्य स्रोत वर्षा का जल है लेकिन बाग-बागीचो तथा खेतो मे सिंचाई द्वारा भी मृदा को जल प्राप्त होता है। भारी वर्षा का पानी अधिकतर ढालो मे बहकर निकल जाता है। इसे वाह जल (Run away water) कहते हैं। यह जल तलाबो, नदियो से बहकर समुद्रो मे चला जाता है। कुछ जल गुरुत्व (Gravity) के प्रभाव से मृदा-कणो के बीच से होता हुआ भूमि मे रिस कर नीचली परतो मे चला जाता है तथा अन्त मे भौम – जल स्तर (Water table) तक पहुँच जाता है। यह जल पौधो को उपलब्ध नही होता तथा प्राय: इसका भूमि के ऊपरी सस्तर से निष्कासन एक या दो दिन मे हो जाता है। किन्हीं कारणो से यदि यह जल मृदा मे अधिक समय तक रह जाये तो आक्सीजन के अभाव तथा कार्बन डाई आक्साइड की अधिकता से पादप मूल क्षतिग्रस्त हो जाती है और पौधो को भारी क्षति पहुँचती हैं।

वर्षा जल का कुछ भाग मृदा कणो द्वारा गुरुत्वीय बल के विरुद्ध रोक लिया जाता है और यह जल मृदा को आर्द्र (Wet) बनाता है। कुछ जल मृदा कोलाइडों द्वारा बलपूर्वक बद्ध (Tightly held) रखा जाता है और कोलाइड इसे अपने मे अवशोषित कर लेते हैं। इस प्रकार मृदा कोलाइडो का जल धारको के रूप मे बहुत महत्व है। जब भूमि शुष्क हो जाती है तो ये कोलाइड वायुमण्डल से कुछ नमी को अपने अन्दर अवशोषित करने

की क्षमता रखते हैं। इस प्रकार मृदा कोलाइडो द्वारा अवशोषित जल को आर्द्रता जल (Hygroscopic water) कहते हैं। जल की वह मात्रा, जिसे मृदा की एक मिलीमीटर मोटी परत लगभग सतृप्त वायुमण्डल से किसी स्थायी ताप पर, ग्रहण कर सकती है और इस मात्रा को मिट्टी के शुष्क भार के प्रतिशत के रूप मे व्यक्त किया जाए तो उसे उस मिट्टी का आर्द्रता ग्राही गुणाक (Hygroscopic coefficient) कहते है। वायु शुष्क मृदा (Air dry soil) मे भी आर्द्रता जल पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध रहता है। हालाकि आर्द्रता जल मृदा मे कुछ मात्रा मे साधारणतया हमेशा उपलब्ध रहता है फिर भी यह जल पौधो के अवशोषण हेतु अनुपलब्ध होता है।

मृदा के खनिज अणुओं मे अल्प मात्रा मे जल रासायनिक बन्धो द्वारा बद्ध रहता है इसे रासायनिक सयुक्त जल (Chemically combined water) कहते है। पौधो की मूल इस जल का अवशोषण करने मे अक्षम होती है अत यह जल भी पौधो को अवशोषण हेतु उपलब्ध नही होता।

मृदा की अकोलायडी कणिकाओं के बीच के स्थानो मे भी जल जमा हो जाता है अथवा जल की कुछ मात्रा इस कणो के चारो तरफ एक पतली परत के रूप मे विद्यमान होती है। इस जल को केशिकात्व या केपिलरी जल (Capillary water) कहते हैं। यह जल सहजता से पादप मूलो द्वारा अवशोषित किया जा सकता है अत पौधो के लिए इस जल का अत्यन्त महत्व है। इसके अतिरिक्त मृदा कणो के मध्य स्थानो मे कुछ जल वायु मे वाष्प के रूप मे भी उपस्थित होता है पौधे जड़ो द्वारा जल वाष्प का उपयोग नही कर सकते।

आर्द्रता जल एव केशिका जल के योग को मृदा की उच्चतम जल धारण क्षमता (Maximum water holding capacity) कहते हैं। वास्तव मे यह जल सतृप्त मृदा मे उपस्थित जल की मात्रा है। इसे ज्ञात करने के लिए शुष्क मृदा के इकाई आयतन को 24 से 48 घन्टे तक जल मे डुबोया जाता है। जल मे डुबोने से पूर्व एव पश्चात् इसका भार लिया जाता है तथा इसके अन्तर को उक्त मृदा की उच्चतम जल धारण क्षमता प्रति इकाई आयतन के रूप मे लिखा जाता है। मृदा मे कोलायडी पदार्थों की अधिकता उसकी जल धारण क्षमता को बढ़ा देती है। उदाहरण के लिए मोटी बालू अपने शुष्क भार के केवल 10% जल को ही धारण कर सकती है जबकि दोमट मिट्टी (Loam soil) मे यह मात्रा 35% अथवा इससे अधिक होती है तथा चिकनी मिट्टी मे जल धारण क्षमता की मात्रा इससे भी अधिक होती है।

वर्षा के पश्चात् गुरुत्व बल के फलस्वरूप जल मिट्टी के नीचे की परतो मे से होता हुआ भौम जल सस्तर सतह (Soil water table) मे पहुँच जाता है। मृदा की प्रकृति के अनुसार जल एक से पाँच दिन के अन्दर भौम जल सस्तर तक पहुँचता है। जल की वह मात्रा जो गुरुत्व जल की निकासी के पश्चात् भी मृदा मे उपस्थित रहती है, उसकी क्षेत्र क्षमता (Field capacity) कहलाती है। किसी भी मृदा की क्षेत्र क्षमता अनेक कारणो पर निर्भर करती है जिसमे मृदा गठन, मृदा कणो के आकार, कणो की व्यवस्था एव

सघनता तथा मृदा कोलायडो की मात्रा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। क्षेत्र क्षमता को निम्न समीकरण से प्रदर्शित कर सकते है –

Field capacity = Capillary water + Hygroscopic water + Chemically combined water + water vapour

मृदा मे उपस्थित जल की वह मात्रा जो मिट्टी मे, उसे 30 मिनट तक गुरुत्व से 1000 गुणा अपकेन्द्र बल (Centrifugal force) से प्रभावित करने के बाद भी शेष रह जाती है, उसका आर्द्रता तुल्याक (Moisture equivalent) कहलाता है। पारिस्थितिकी अध्ययनो मे आर्द्रता तुल्याक का अत्यन्त महत्व है।

भूमि मे उपस्थित समस्त जल पौधो को अवशोषण हेतु उपलब्ध नही होता। जिस जल को पौधे अवशोषित कर सकते है उसे प्राप्य जल (*Available water*) कहते हैं। सामान्यत: यह केशिका जल होता है जिसका मान क्षेत्र क्षमता तथा म्लानि गुणाक (Wilting coefficent) के अन्तर के बराबर होता है। म्लानि गुणाक आर्द्रता की वह प्रतिशतता है जो मिट्टी मे उस समय होती है जब पौधे मे पहली बार स्थायी म्लानि (Permanent wilting) उत्पन्न होती है। मुख्यत. यह मृदा की प्रकृति पर निर्भर करता है और इसका मान आर्द्रता ग्राही गुणाक से कुछ अधिक होता है। इन दोनो मे परस्पर सम्बन्ध को निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया जाता है –

$$\text{म्लानि गुणाक} = \frac{\text{आर्द्रता ग्राही गुणाक}}{0.68}$$

म्लानि गुणाक का आर्द्रता तुल्याक (Moisture Equivalent) से भी सम्बन्ध है जो निम्न प्रकार है –

$$\text{म्लानि गुणाक} = \frac{\text{आर्द्रता गुणाक}}{1.84 \pm 0.013} = \frac{\text{जल धारण क्षमता}}{2.90}$$

एक अन्य परिभाषा के अनुसार भूमि मे जल की कुल मात्रा को समस्त जल या होलार्ड (Holard) कहते है। इस मात्रा मे से उस जल अश को, जो पौधो द्वारा अवशोषित हो सकता है अथवा जो प्राप्य मृदा जल (Available water) है उसे क्रेसार्ड (Chresard) कहते है तथा उस जल को जो पौधो द्वारा अवशोषित नही हो सकता उसे अप्राप्य जल या इकार्ड (Echard) कहते हैं। इसे निम्न समीकरण द्वारा भी लिखा जा सकता है –

Holard = Chresard + Echard
Chresard = Holard – Echard
Echard = Holard – chresard

पौधो का व्यवहार क्रेसार्ड द्वारा निर्धारित होता है। होलार्ड, क्रेसार्ड तथा इकार्ड का मान विभिन्न मृदाओ के लिए भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणत: मृतिका दुमट (Clay loam) मे, जिसकी जल धारण क्षमता 35% होती है वहाँ इकार्ड का मान 10% के लगभग हो

सकता है ज्बकि बलुई दुमट म जिसकी जल धारिता 12% हो, इकाई का मान केवल 1% ही हो सकता है। प्राय यह देखने म आता है कि पौधे बलुई मिट्टी (Sandy soil) म भली भाँति रह सकते है। इसका कारण यह है कि ऐसी मृदाओं के जल की अधिकांश मात्रा पौधो द्वारा अवशोषित हो सकती है। क्रेसार्ड तथा इकार्ड का निर्धारण विभिन्न पादप जातियो क मूल तन्त्र के प्रकार तथा वितरण पर भी निर्भर करता है। किसी मृदा विशेष म कुछ पौधे अन्य मृदा की अपेक्षा अधिक जल अवशोषित कर सकते है। इस कारण जाति विशेष के लिए इकार्ड का मान महत्वपूर्ण है।

(vii) मृदा वायु (Soil Air) --

मृदा कणो के अन्तर कणिय स्थानो मे वायु अथवा जल उपस्थित होते है। जल क्रान्त (Water logged) मिट्टी मे वायु नही होती। पादप-मूल द्वारा जल अवशोषण मृदा वायु की उपस्थिति म ही सभव है। वायु म उपस्थित आक्सीजन का उपयोग न केवल पादप मूल द्वारा बल्कि अन्य मृदा-जीवो द्वारा भी स्वसन हेतु किया जाता है जिसके फलस्वरूप सामान्यत मृदा वायु म वायुमण्डलीय वायु की अपेक्षा अधिक कार्बन डाई आक्साइड एव कम आक्सीजन पायी जाती है। पादप मूल श्वसन द्वारा आक्सीजन ग्रहण करती है। *श्वसन से मूल कोशिकाओं मे ऊर्जा उत्पन्न होती है और यह ऊर्जा जल एव खनिज लवणो* के सक्रिय अवशोषण (Active absorption) के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मृदा मे आक्सीजन की कमी से नयी मूल रोमो की वृद्धि एव विकास नही हो पाता इससे मूल की उपापचयी क्रियाय प्रभावित होती है और जल तथा खनिज लवणो के अवशोषण मे व्यवधान उपस्थित हो जाता है जल मग्न भूमि म मूल अत्यन्त छोटी एव भूमि के ऊपर के भाग म ही उपस्थित होती है जबकि एक सुवातित मृदा (Well aerated soil) मे मूल का सामान्य विकास होता है।

सुवातित मृदा म मूल एव अन्य मृदा जीवो (Soil organisms) के श्वसन के फलस्वरूप *निकली कार्बन डाई आक्साइड वायुमण्डलीय वायु से विनिमय कर मृदा वायु को विषैली (Toxic)* नही हान देती। अवातित मृदा (Poorly aerated soil) मे कार्बन डाई आक्साइड मृदा मे ही इकट्ठी हो जाती है इसमे भूमि मे अम्लता एव विषैलापन बढ़ जाता है।

मृदा वायु मे उपस्थित आक्सीजन मृदा की ऊर्वरा शक्ति बढ़ाने मे महत्वपूर्ण योगदान देती है। *यह अविलेय खनिजो को विलेय लवणो मे विघटित करने तथा ह्यूमस निर्माण* की क्रिया म आवश्यक भूमिका निभाती है। आक्सीजन की उपस्थिति से ह्यूमस निर्माण के फलस्वरूप जीव अवशेषो मे बद्ध (Locked up) पोषक पदार्थ विलेय यौगिको मे परिवर्तित हो जाते है। बीजो के अकुरण, मूल वृद्धि, मूल रोमो के परिवर्धन एव अन्य अनेक क्रियाओं मे आक्सीजन की आवश्यकता होती है।

जब मृदा मे जल की अधिकता हो जाती है तो मृदा वायु कम हो जाती है। अच्छी वर्षा अथवा अधिक सिंचाई के फलस्वरूप इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी मिट्टी को यात्रिक विधि से (खुरपी करना, आदि) पलट कर वायु की समुचित मात्रा का समावेश कराया जाता है।

(viii) मृदा तापमान (Soil Temperature) --

मृदा तापमान का पौधो पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभाव ठण्डे प्रदेशों मे विशेष रूप से देखा जा सकता है। जब तापमान किसी विशेष अनुकूलतम तापमान से कम हो जाता है तो मूल की कार्य क्षमता मे कमी आ जाती है। जब तापमान किसी विशेष न्यूनतम तापमान से कम हो जाता है तो जल अवशोषण बन्द हो जाता है। ऐसी ठण्डी मृदा को क्रियात्मक शुष्क (Physiologically dry) मृदा कहते हैं। पौधे की मूल की निम्न ताप सहन करने की क्षमता वायवीय भागो की अपेक्षा कम होती है। मृदा का निम्न तापमान पौधो मे बौनेपन (*Nanism dwarft size*) को प्रेरित करता है। ठण्डी मृदा श्यान (Prostrate) प्ररोह तत्र तथा रोजेट सदृश्य (Rosette like) वृद्धि को प्रेरित करती है जबकि गरम मृदा मे उगने वाले पौधे पतले तथा ऊँचे होते हैं।

मृदा का तापमान सूक्ष्म जीवो की सक्रियता को भी प्रभावित करता है। मिट्टी मे ह्यूमस का निर्माण, नाइट्रीकरण, जल का निस्तारण आदि अनेक क्रिया कलाप मृदा तापमान से प्रभावित होते हैं। मृदा के ऊपर की परत बाह्य तापमान के परिवर्तन से प्रभावित होती है जबकि गहरी परते आसानी से प्रभावित नही होती। साधारणतया मिट्टी की गहरी परतो मे तापमान का परिवर्तन नही पाया जाता।

मृदा ताप उसके रग, गठन, सरचना, जल मात्रा, ह्यूमस की मात्रा, तथा वनस्पति आच्छादन (vegetation cover) से प्रभावित होता है। बालुई मृदा दिन मे जल्दी गर्म हो जाती है और रात्रि मे अपेक्षाकृत जल्दी ठण्डी हो जाती है जबकि दुमट या चिकनी मिट्टी मे तापमान परिवर्तन धीरे होता है।

(ix) मृदा अभिक्रिया (pH मान) (Soil Reaction or pH Value) --

ऐसा विलयन जिसमे H^+ तथा OH^- आयन एक दूसरे के समान हो उसे उदासीन विलयन कहते है। यदि H^+ की सान्द्रता OH^- की सान्द्रता से अधिक होती है तो विलयन अम्लीय हो जाता है और यदि इसका विपरीत होने पर क्षारीय कहलाता है। pH का मान 7 0 होने पर विलयन उदासीन होता है इससे कम मान होने पर यह अम्लीय एव इससे अधिक होने पर क्षारीय गुण दर्शाता है।

(अ) अम्लीय मृदा – मृदा उदासीन, अम्लीय या क्षारीय हो सकती है। यह गुण मृदा मे उपस्थित अम्लीय एवम क्षारीय लवणो एव खनिजो की मात्रा पर निर्भर करता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रो मे घुलनशील क्षारीय लवण जैसे कैल्सियम कार्बोनेट आदि जल के साथ रिस कर(Percolate) निक्षेलित (Leach) हो जाते है और इससे मृदा अम्लीय हो जाती है। पौधो द्वारा चूने या अन्य क्षारक तत्वो के सतत् अवशोषण तथा कुछ उर्वरको (विशेषत' अमोनिया सल्फेट) के अम्ल आयनो के सचयन से भी मृदा अम्लीय हो जाती है।

उदासीन अथवा हल्की अम्लीय भूमि पौधो की वृद्धि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। कुछ फसले (जैसे – धान, राई, मक्का, कपास आदि) अम्लीय भूमि मे अच्छी

वृद्धि करते है जबकि अधिकतर लिग्यूमिनोसी कुल के पौधो की वृद्धि पर अम्लीय मृदा का प्रतिकूल प्रभाव पडता है। अम्लता नाइट्रीकारक तथा नाईट्रोजन यौगिकीकारी जीवाणुओं की सक्रियता का प्रतिरोध करती है। अम्लीयता केचुओं के लिए भी हानिकारक है। अम्लीय मृदा मे ह्यूमस का सामान्य अपघटन रूक जाता है। ऐसी मृदा मे कार्बन डाई आक्साइड तथा अन्य विषैले (toxic) पदार्थ सचित हो जाते है। अम्लता के कारण फॉस्फेट जैसे लवणो और मैग्नीशियम, केल्सियम, लोह तथा मैगनीज जैसे खनिजो की विलेयता पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है और इनकी सुलभता (Availability) कम हो जाती है। इससे भूमि का भूरभूरा गठन नष्ट हो जाता है जिससे भूमि के वातन एव जलाश मे भी कमी आ जाती है।

ऐसी अम्लीय मृदा, जिसमे वनस्पति नही उगती अथवा खेती नही की जा सकती, का सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है। अम्लीय भूमि मे चूना मिलाकर उसकी अम्लता कम की जाती है। इसके लिए चूना पत्थर (केल्सियम कार्बोनेट) अथवा बुझे हुए चूने का उपयोग किया जाता है। कुछ रासायनिक खादो (केल्सियम नाइट्रेट, बेसिक स्लेग तथा केल्सियम साइनामाइड) के उपयोग से भूमि मे चूना शेष रह जाता है और भूमि की अम्लता कम हो जाती है।

अम्लीय मृदा मे पायी जाने वाली वनस्पति को सारणी के रूप मे नीचे दर्शाया गया है –

सारणी : अम्लीय मृदा में उगने वाली वनस्पति

अम्लीयता (Acidity)	pH	वनस्पति (Vegetation)
अत्यधिक अम्लीय	3 7 से कम	लाइकेन एव छोटी झाड़िया
अधिक अम्लीय	3 7 से 4.5	कालास्थ्रूस, हेमलॉक, बीर्च आदि
अम्लीय	4 5 से 5.5	शकुधारी वृक्ष, ऊत्तरी पर्ण पाती वन
मामूली अम्लीय	5 5 से 6 9	पर्णपाती वन
उदासीन अथवा क्षारीय	7 0 से 8 0	घास के मैदान

(ब) लवणीय तथा क्षारीय मृदा – ऐसी मृदा जिसके विलयन का pH 7 से अधिक हो, क्षारीय मृदा कहलाती है। शुष्क, मरुस्थलीय, कम वर्षा वाले प्रदेशो मे जहाँ जल निकासी (Drainage) ठीक न हो तथा उच्च ताप के कारण वाष्पीकरण शीघ्रता से होता हो वहाँ विलेय लवण आसानी से मृदा की ऊपरी सस्तरण मे एकत्रित हो जाते है। समुद्र के तटो अथवा खारे जल की झीलो के किनारे वाले क्षेत्रो मे भी जल वाष्पन के पश्चात् लवण सग्रहित हो जाते है। ऐसी मृदा जिसमे लवणो का सान्द्रण अधिक होता है उसे क्षारीय मृदा (Alkaline soil) कहते है।

क्षारीय मृदा मे उपस्थित सोडियम एव पोटशियम के बाईकार्बोनेट लवण अपने क्षारीय गुणो के कारण ही मिट्टी की अभिक्रिया (Reaction) को क्षारीय बना देते हैं। इन

लवणो ने उपस्थित कार्बनिक पदार्थ मृदा जल मे मिलकर एक विलयन बनाते है । यह विलयन भूमि मे फैल (Disperse) जाता है । इसके फलस्वरूप मिट्टी का रग गहरा भूरा या काला हो जाता है । ऐसी भूमि को काली क्षारीय मृदा (Black alkaline soil) कहते है ।

क्षारीय मृदा मे यदि सोडियम, पोटेशियम तथा मैग्नीशियम के क्लोराइड, सल्फेट तथा नाइट्रेट लवण उपस्थित हो तो मिट्टी की अभिक्रिया उदासीन होती है । इस प्रकार के लवणो की अधिक मात्रा भूमि को लवणीय बना देती है । ऐसी भूमि को लवणीय मृदा (Saline soil) कहते है । अनेको बार ऐसे लवग मृदा जल मे घुलकर भूमि के ऊपरी सतह पर श्वेत पपडी बना देते है ऐसी मृदा को श्वेत क्षारीय मृदा (White alkaline soil) कहते है ।

अनेक स्थानो पर मृदा के नीचले सस्तरो मे लवणो का सचयन (Accumulation) पाया जाता है । ऐसी भूमि को जब सीचित किया जाता है तो केशिका जल के साथ घुलनशील लवग ऊपरी परतो मे आ जाते है । जब जल का वाष्पीकरण होता है तो भूमि पर लवणो का अधिक सान्द्रण रह जाता है और धरातल पर क्षार मृदाओं के खण्ड (Patches) प्राप्त होते है । पजाब, उत्तर प्रदेश एव राजस्थान मे इस प्रकार के लवणीय भूमि सामान्यतया देखने को मिलती है ।

लवणीय एव क्षारीय मृदा मे वनस्पति की वृद्धि नही हो पाती । लवणो की अधिक मात्रा के कारण पौधे जल का अवशोषण नही कर सकते । अधिक लवण सान्द्र घोल बाह्य परासरण प्रेरित कर कोशिका जल को बाहर निकाल देता है इससे पौधे मुरझा जाते है । इसलिए क्षारीय एव लवणीय मृदा को क्रियात्मक दृष्टि मे शुष्क मृदा माना जाता है । तीव्र क्षारीय भूमि मे क्षारीय अभिक्रिया के फलस्वरूप जस्ता, ताम्बा एव मेगनीज जैसे खनिजो का अवक्षेपण (Precipitation) हो जाता है जिससे ये पौधे के लिए अप्राप्य हो जाता है । इसके कारण मृदा मे पोषक तत्वों का अभाव हो जाता है और उनमे वनस्पति को पनपाने की योग्यता समाप्त हो जाती है ।

कुछ पादप जैसे स्वेडा फ्रूटीकोसा (Sweda furticosa), सेल्सोला फोइटिडा (Salsola faetida) तथा सेलिकोर्निया (Salicornia) आदि लवणीय भूमि मे उगने वाले पादप है इन्हे लवण मृदोद्भिद (Halophytes) कहते है ।

लवणो के सचयन मे मिट्टी अनउपजाऊ (Unproductive) हो जाती है और कृषि योग्य नही रहती ऐसी भूमि को उपचारित कर पुन: उद्धार (Reclaim) किया जाता है । इसके लिए निम्न तीन विधियाँ अपनायी जाती है ।

(i) यान्त्रिक विधियाँ (Mechanical Methods) – भौम जल सस्तर (Water table) को 5 या 6 फीट नीचा करने के लिए भूमि मे ढाल के समकोण (Right angle) गहरी खाइयो का जाल खोदा जाता है । इसके बाद भूमि को अच्छे पानी से सींचा जाता है । इसमे भूमि मे लवणो की मात्रा निक्षालन द्वारा भूमि के मूल प्रदेश (Root zone) से नीचे चली जाती है । समस्त क्षतिकारक लवणो को भूमि से निकालने के लिए दो या तीन निक्षालन क्रियाये पर्याप्त होती है । भूमि मे लवणो के निक्षालन करने के बाद भी प्रारम्भ

में लवण सह (Salt tolerent) फसलें (धान, जौ, गन्ना आदि) उगाई जाती हैं। ऐसी भूमि जिस पर क्षार पपड़ी के रूप में जम जाता है वहाँ से पपड़ी को खुरच कर हटाया जाता है और पानी का तेज धार से क्षार के टुकड़ों को बहा दिया जाता है।

(ii) **रासायनिक विधियाँ** (Chemical Methods) – इस विधि में क्षारीय भूमि में जिप्सम (कैल्सियम सल्फेट) मिलाया जाता है। जिप्सम सोडियम तथा पोटेशियम के कार्बोनेटों से अभिक्रिया कर कैल्सियम कार्बोनेट (अविलेय) और सोडियम व पोटेशियम सल्फेट बनाता है। कैल्सियम कार्बोनेट को समाप्त करने के लिए गोबर एवं पत्ती का खाद (Farm manure) मिलाया जाता है। विलयशील सल्फेटों को निकालने के लिए अच्छी सिंचाई की जाती है। क्षारता के प्रभाव को कम करने के लिए गंधक चूर्ण भी मिलाया जाता है।

(iii) **लवण सह पौधों की खेती** – लवण सह पौधों की खेती से भी भू-सुधार किया जा सकता है। इसके लिए चुकन्दर, धान, रजका, पटसन, जंगली नील व बबूल आदि बोये जाते हैं।

(द) जैविक कारक

(Biotic Factors)

जैसा कि पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि पेड़-पौधे और जीव जन्तु एक दूसरे पर निर्भर रहते हुए एक दूसरे को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। कोई भी जाव अपने आप में अकेला नहीं रह सकता। जीवों द्वारा (पौधे जीव-जन्तु और मनुष्य) दूसरे जीवों के होने वाले प्रभाव को जैविक कारक कहते हैं। उदाहरण के लिए प्रकाश संश्लेषण क्रिया में पौधों द्वारा उपयोग में ली जाने वाली कार्बनडाइ आक्साइड प्राणियों द्वारा श्वसन क्रिया के फलस्वरूप प्रदान की जाती है। उच्च पादप मिट्टी से जो नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं उसका स्थिरीकरण बैक्टीरिया या नील-हरित शैवाल द्वारा किया जाता है। एक ही स्थान पर उगने वाले पौधे जल, वायु एवं प्रकाश के लिए एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करते हैं। सहजीविता, परजीविता (Parasitism) अधिपादप (Epiphytes) कठलताएँ (Lianas) पोषण हेतु जीवों पर निर्भरता परागण इत्यादि अनेक प्रकार हैं जो जीवों के परस्पर निर्भरता एवं सम्बन्धों को दर्शाते हैं। हम इनमें से कुछ सम्बन्धों का वर्णन करेंगे।

ओडम (1971) ने जीवों के पारस्परिक सम्बन्धों को धनात्मक एवं ऋणात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया।

(अ) धनात्मक सम्बन्ध --

जीवों के ऐसे आपसी सम्बन्ध जो एक दूसरे को लाभ पहुँचाते हैं धनात्मक सम्बन्ध कहलाते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धों को पुनः विभाजित किया जा सकता है –

1 **सहभोजिता** (Commensalism) – जब दो भिन्न जातियों के जीवों में से एक जाति के जीव को लाभ मिलता हो और दोनों में से किसी को भी हानि नहीं होती हो तो सहभोजिता सम्बन्ध कहलाते हैं। ऐसे सम्बन्धों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं –

(i) **अधिपादप** (Epiphytes) — ये स्वय पोषी पादप दूसरे वृक्षो की शाखाओं या तने पर उत्पन्न होते है । ये वायुमण्डल से वायु, प्रकाश व आर्द्रता ग्रहण करते है । इनकी जडे आर्द्रताग्राही होती है और ये पौधे नम जलवायु मे पाये जाते है । उदाहरण आर्किड इत्यादि ।

(ii) **कठलताएं** (Lianas) — ये काष्ठीय प्रतान (Woody Climbers) है जो स्वय पोषी होते है । इनकी जडे भूमि मे पायी जाती है लेकिन इनका काष्ठीय कमजोर स्तम वृक्षो के स्तम्भो की सहायता से ऊपर बढ़कर पत्तियो एव अन्य भागो (पुष्प, फल आदि) को पूर्ण वायु एव अधिक प्रकाश वाले क्षेत्र मे पहुँचा देते है । उदाहरण टिनोस्पोरा बाहुनिया आदि ।

सहभोजिता के उदाहरण मे हम उन सभी पशु पक्षियो (गिलहरी, बन्दर, सर्प, चिडियाँ) को सम्मिलित कर सकते है जो वृक्षो को बिना हानि पहुँचाए केवल आश्रय हेतु उनका उपयोग करते है ।

अनेक सूक्ष्म जीव (जैसे जीवाणु, कवक तथा प्रोटोजोआ) प्राणियो व पादपो के ऊतको मे अधिपादप के रूप मे रहते है । लेकिन उन्हे कोई हानि नही पहुँचाते है । उदाहरण – ऐश्चेरिचिया कोलाई नामक जीवाणु मानव आत मे तथा ट्रीपोनिया मेक्रोडेनटियम नामक जीवाणु मुँह मे निवास करते है लेकिन ये मनुष्य को कोई भी हानि नही पहुँचाते ।

सहभोजिता को हम पुन दो भागो मे विभाजित कर सकते है –

(क) बाह्य सहभोजिता (Ecto-commensalism) — इसमे एक जीव दूसरे जीव से स्थिरता व सुरक्षा के लिए सम्बन्ध बनाये रखते है ।

(ख) अन्त: सहभोजिता (Endo-commensalism) — इसमे एक जाति के जीव दूसरी जाति के जीव के शरीर के अन्दर निवास करते है ।

2 **प्राकसहयोगिता** (Proto Cooperation) — इस प्रकार के सम्बन्धो मे दोनो ही जाति के जीवो को एक दूसरे से लाभ प्राप्त होता है, लेकिन जीवित रहने हेतु यह सम्बन्ध बने रहना आवश्यक नहीं है । प्राकसहयोगिता का एक उदाहरण समुद्री एनीमोन तथा हर्मिट क्रेब का है । समुद्री एनीमोन हर्मिट के खोल पर चिपक जाता है । क्रेब एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते समय अपनी खोल पर उपस्थित समुद्री एनीमोन को भी ले जाता है । समुद्री एनीमोन अपनी दश कोशिकाओं द्वारा क्रेब को बाहरी हमले से सुरक्षा प्रदान करता है । क्रेब के भोजन मे से कुछ भोजन समुद्री ऐनीमोन को भी प्राप्त हो जाता है ।

3 **सहोपकारिता** (Mutualism) — जब भिन्न प्रकार की जातियो मे परस्पर सम्बन्ध एक दूसरे को लाभ पहुँचाते है तथा उन जीवो के जीवित रहने के लिए ऐसे सम्बन्ध आवश्यक हो तो इसे सहोपकारिता कहते है । इन सम्बन्धो को अवैकल्पिक सहजीवन सम्बन्ध (Obligatory symbiosis) भी कहते है । सहोपकारिता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है ।

अनेक कीट, मधुमक्खियो, पक्षी आदि पुष्पो मे उपस्थित मकरन्द ग्रंथियो से भोजन प्राप्त करते हैं । ये कीट अपने साथ परागकणो को एक पुष्प से दूसरे पुष्प तक ले जाकर

है। कभी-कभी परजीवी का प्रभाव अधिक होने पर परपोषी की मृत्यु तक हो जाती है। ऐसे परजीवी जो परपोषी के शरीर के बाहरी अंगो पर निवास करते है, उन्हे बाह्य परजीवी (Ectoparasite) कहा जाता है। ऐसे परजीवी जो परपोषी के ऊतकों मे निवास करते है उन्हे अन्त परजीवी कहते है।

कुछ परजीवी विशेष प्रकार के परपोषी पर ही अपना जीवन यापन करते है। इस प्रकार के परजीवी *अविकल्पी (Obligate)* कहलाते है। ये अविकल्पी परजीवी परपोषी को रोगित कर देते है जीवाणु, विषाणु तथा कवक द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ परजीवी के उदाहरण है।

कवक तथा सूक्ष्म जीवो के अतिरिक्त कुछ पुष्पीय पादप भी परजीवी के रूप मे रहते है। ओरोबेन्की, रेफलीसिया, अमरबेल आदि इसके उदाहरण है।

(ख) परभक्षिता (Predatism) – ऐसी जातियाँ जो अपने भोजन की आवश्यकता *की पूर्ति के लिए अन्य जाति के जीवो को पकडकर अथवा मारकर खा जाती है, उन्हे* परभक्षी जाति कहते है। साधारणतया परभक्षी जन्तु ही होते है। वैसे तो मनुष्य भी एक प्रकार का परभक्षी ही है। कुछ परभक्षी पादप भी पाये जाते है जैसे – युट्रिकुलेरिया, घटपादप, वेनस फ्लाई ट्रेप, डायोनिया आदि।

2. प्रतिजीविता (Antibiosis) – कुछ जीव अपनी सामान्य वृद्धि के दौरान कुछ ऐसे रासायनो को स्रावित करते है कि ये रसायन अन्य जीवो की वृद्धि पर प्रतिकूल असर डालते है। कभी-कभी इन रसायनो की उपस्थिति के कारण न केवल दूसरे जीव की वृद्धि

है। कभी-कभी परजीवी का प्रभाव अधिक होने पर परपोषी की मृत्यु तक हो जाती है। ऐसे परजीवी जो परपोषी के शरीर के बाहरी अगो पर निवास करते है, उन्हे बाह्य परजीवी (Ectoparasite) कहा जाता है। ऐसे परजीवी जो परपोषी के ऊतको मे निवास करते है उन्हे अन्त परजीवी कहते है।

कुछ परजीवी विशेष प्रकार के परपोषी पर ही अपना जीवन यापन करते है। इस प्रकार के परजीवी *अविकल्पी (Obligate)* कहलाते है। ये अविकल्पी परजीवी परपोषी को रोगित कर देते है जीवाणु, विषाणु तथा कवक द्वारा फैलने वाली बीमारियाँ परजीवी के उदाहरण है।

कवक तथा सूक्ष्म जीवो के अतिरिक्त कुछ पुष्पीय पादप भी परजीवी के रूप मे रहते है। ओरोबेन्की, रेफलीसिया, अमरबेल आदि इसके उदाहरण है।

(ख) परभक्षिता (Predatism) – ऐसी जातियाँ जो अपने भोजन की आवश्यकता *की पूर्ति के लिए अन्य जाति के जीवो को पकडकर अथवा मारकर खा जाती है,* उन्हे परभक्षी जाति कहते है। साधारणतया परभक्षी जन्तु ही होते है। वैसे तो मनुष्य भी एक प्रकार का परभक्षी ही है। कुछ परभक्षी पादप भी पाये जाते है जैसे – युट्रिकुलेरिया, घटपादप, वेनस फ्लाई ट्रेप, डायोनिया आदि।

2. प्रतिजीविता (Antibiosis) – कुछ जीव अपनी सामान्य वृद्धि के दौरान कुछ ऐसे रासायनो को स्रावित करते है कि ये रसायन अन्य जीवो की वृद्धि पर प्रतिकूल असर डालते है। कभी-कभी इन रसायनो की उपस्थिति के कारण न केवल दूसरे जीव की वृद्धि

2. **स्तरण (Stratification)** – विभिन्न जातियो के पौधो मे उनकी मागे समान न होने के कारण परस्पर स्पर्धा इतनी अधिक नही होती है। शीघ्र वर्धक ऊँची जातियो के पौधे अपेक्षाकृत छोटी जाति के पौधो से जल्दी ऊँचे बढ़ जाते है। इनकी छाया मे अपेक्षाकृत कम प्रकाश की आवश्यकता वाले पौधे आसानी से उग जाते है। इस प्रकार वनस्पति मे स्तरण उत्पन्न हो जाता है। भिन्न-भिन्न ऊँचाई वाले पौधे इस प्रकार एक ही स्थान पर उत्पन्न हो जाते है। निम्न स्तरो के पौधो ने ऊँची जातियो द्वारा प्रदत्त आर्द्रता व छाया के लिए अनुकूलन पाया जाता है। अत. प्रकृति मे विभिन्न अनुकूलन के पादप एक दूसरे के सहयोग से भिन्न-भिन्न स्तर पर आसानी से रहते है।

3. **परनिर्भरता (Dependencies)** – पादप समुदाय के कुछ पौधो की उत्तरजीविता (Survival) दूसरो पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए घने वृक्षो की छाया मे ब्रायोफाइटा या फर्न उगते हैं। यदि उन वृक्षो को काट दिया जाए तो उनकी छाया मे उगने वाले निम्न पादप भी मर जायेगे। उष्ण कटिबन्धीय तथा उपोष्ण कटिबन्धीय वनो मे उगने वाले अधिपादपो की भी यही स्थिति होगी। वन मृदा मे परजीवी तथा मृतजीवी दोनो प्रकार की कवक प्रचुर मात्रा मे पायी जाती है। कुछ कवक सवहनी पौधो की जड़ो से सम्बन्ध स्थापित कर उसकी अवशोषण क्षमता को बढ़ाती है। अत· माइकोराईजा कवक एव विशाल वृक्ष एक दूसरे पर निर्भर (Dependent) रहते है।

पादप समुदाय का विकास (*Evolution of Plant Communities*)

किसी स्थान को यदि वनस्पति विहीन कर दिया जाए और उसे मानव तथा मानव द्वारा पाले जाने वाले पशुओं की क्रियाओं से विलग कर दिया जाए तो शनै शनै लेकिन एक निश्चित क्रम मे उस स्थान पर वनस्पति उगनी प्रारम्भ होगी। एक लम्बे समय पश्चात् एक स्थिति ऐसी जायेगी जब वहाँ पर स्थायी समुदाय (Stable community) अपना राज्य जमा लेगा। किसी नग्न स्थान पर शने शनै· पादप समुदाय के जमाव को पादप अनुक्रमण (Plant succession) कहते है।

अनुक्रमण के कारण –

समुदायो मे होने वाले अनुक्रमण सामान्य रूप से जलवायवी, भू आकृतिक अथवा जैविक कारणो से हो सकते है। जलवायवीय कारको मे सूखा एव अकाल, अतिवृष्टि, आँधी, हिमपात, पाला पडना आदि सम्मिलित है। मृदा अपरदन अथवा मृदा का जमाव आदि भू आकृतिक कारण है जिनके कारण नग्न क्षेत्र बन जाते है। मानव द्वारा वनो की सफाई व कटाई अथवा पशुओं द्वारा चराई के कारण भी किसी भी स्थान की वनस्पति समूल नष्ट हो जाती है और वहाँ पर अनुक्रमण की स्थिति बन जाती है।

अनुक्रमण के प्रकार –

(अ) प्राथमिक अनुक्रमण (Primary succession) – वनस्पति रहित स्थलो पर होने वाला अनुक्रमण प्राथमिक अनुक्रमण कहलाता है। नग्न चट्टानो, रेतीले टीलो, ज्वालानुखी से निकली राख वाले क्षेत्रो को इसी श्रेणी मे रखा जाता है।

(ब) द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary succession) – ऐसे क्षेत्र जहाँ पूर्व मे वनस्पति उपस्थित थी लेकिन किन्ही कारणो से वहाँ की वनस्पति नष्ट हो गई हो तथा नई

चित्र 2 12 मृदा परिच्छेदिका

जीवाश्म ईंधन के जलने तथा अन्य औद्योगिक क्रियाओं के कारण पूर्वी यूरोप के देशो के अच्छे वन अम्लीय वर्षा के कारण नष्ट हो गये है। मानव ने बडे बाँध सडक निर्माण रेल मार्गों का विस्तार भी किया है जिससे प्राकृतिक वनस्पति का ह्रास हुआ है। ह्रास होने की यह क्रिया उत्तरोत्तर तेज होती जा रही है इससे जल वायु मिट्टी प्रदूषित हुई है और वन्य जीवो पर प्रतिकूल असर पड़ा है किसी भी स्थान की जैव विविधता (Bio diversity) भी इन सबसे प्रभावित हुई है।

मनुष्य द्वारा अनजाने लगी आग से वन अशत अथवा पूर्णत नष्ट हो जाते है इसके परिणाम स्वरूप वनस्पति के स्वरूप मे अस्थायी अथवा स्थायी परिवर्तन आ जाते है। उथली जडो वाले पौधो का तो पूर्णत विनाश हो जाता है। गहरी जडो वाले तथा भूमिगत स्तभ वाले पौधे आग द्वारा अस्थायी रूप से प्रभावित होते हैं। कुछ पौधे आग शान्त हो जाने पर पहली वर्षा के पश्चात् पुन फूट निकलते है। ऐसी वनस्पति उस स्थान की मुख्य वनस्पति बन जाती है। असम के कुछ आदिवासी भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए वनो को आग लगा देते है इसे झूमिग खेती (Jhuming cultivation) कहा जाता है इस कारण भी प्राकृतिक जैव सम्पदा नष्ट होती जा रही है। हमे इसे बचाने का प्रयास करना चाहिये।

(4) स्थायित्व और चरम वनस्पति -- उपरोक्त वर्णित प्रक्रमो, पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप धीरे-धीरे पादप समुदाय का एक निश्चित क्रम मे और निश्चित दिशा मे लेकिन धीरे-धीरे विकास होने लगता है। पारस्परिक क्रियाओं के कारण वहाँ के पारिस्थितिक कारको मे परिवर्तन होता है और अन्त मे वातावरण स्थायी हो जाता है क्योंकि इसमे अनिश्चित काल तक परिवर्तन नही हो सकते। इस अवस्था मे वनस्पति जीवन का अन्तिम प्रारूप – शाकीय, क्षुपीय या वृक्षीय – जलवायु द्वारा निर्धारित होता है। वनस्पति का अन्तिम प्रारूप लगभग स्थायी तथा जलवायु के साम्य होता है। यह प्रारूप आवास की विशिष्ट जलवायु के अनुसार उच्चतम होता है तथा इसे चरम वनस्पति (Climax vegetation) कहते हैं। किसी चरम समुदाय की प्रमुख जातियाँ वातावरण के लगभग पूर्णत· अनुकूल होती है। इससे समुदाय स्थायी हो जाता है और उसमे तब तक परिवर्तन नही आते जब तक उसे कोई बाह्य कारक प्रभावित न करे। इसके अतिरिक्त प्रकाश, स्थान, आर्द्रता, पोषक तत्वो का चक्रीकरण इत्यादि सभी पर्यावरणीय कारक पूर्णत: पादप समुदाय के नियन्त्रण मे होते है। इसके कारण नई जातियो के प्रवेश की सभावना बहुत कम रह जाती है।

अनुक्रमण के प्रकार (Types of Succession) –

किसी भी नग्न (वनस्पति विहीन स्थान) स्थान पर आकर सर्वप्रथम बसने वाली जातियो या पादप समुदाय को परोगामी (Pioneer) जातियाँ या समुदाय कहते हैं। अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं से धीरे-धीरे गति करता हुआ पादप समुदाय अपने चरम बिन्दु पर पहुँचता है उसे चरम समुदाय (Climax communities) कहते हैं। पादप अनुक्रमण के प्रारम्भ से लेकर अन्त के चरम समुदाय के मध्य मे आने वाली अवस्थाओं को क्रमकी समुदाय (Seral communities) अथवा क्रमकी अवस्था (Seral stage) कहते हैं तथा अनुक्रमण की समस्त क्रमकी अवस्थाओं के लिए सम्मिलित शब्द क्रमक (Sere) का प्रयोग किया जाता है।

इसीलिए जलीय आवासो मे होने वाले अनुक्रमण को जलारम्भी (Hydrach) तथा इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जलक्रमक (Hydrosere) कहते हैं। शुष्क आवासो मे होने वाले अनुक्रमण को शुष्कतारम्भी (Xerarch) तथा अनुक्रमण के विभिन्न चरणो को सयुक्त रूप से मरूक्रमक (Xerosere) कहते हैं।

इसी क्रम मे नग्न चट्टानो पर अनुक्रमण को शैल क्रमक (Lithosere), लवणीय जल भूमि पर होने वाले अनुक्रमण को लवण क्रमक (Halosere), रेतीले टीलो पर होने वाले अनुक्रमक को बालुकीय क्रमक (Psammosere) कहते हैं।

इस अध्याय मे हम एक शैल चट्टान पर होने वाले शुष्क अनुक्रमण तथा एक जलीय आवास मे होने वाले अनुक्रमण का अध्ययन करेंगे।

मरूक्रमक (Xerosere)

एक प्रारूपिक मरूक्रमक के अध्ययन हेतु हम नग्न चट्टानो पर होने वाले अनुक्रमक का अध्ययन करेंगे। एक नग्न शैल चट्टान पर होने वाले अनुक्रमक मे निम्न चरण होते हैं।

2. स्तरण (Stratification) — विभिन्न जातियो के पौधो मे उनकी मागे समान न होने के कारण परस्पर स्पर्धा इतनी अधिक नही होती है। शीघ्र वर्धक ऊँची जातियो के पौधे अपेक्षाकृत छोटी जाति के पौधो से जल्दी ऊँचे बढ़ जाते है। इनकी छाया मे अपेक्षाकृत कम प्रकाश की आवश्यकता वाले पौधे आसानी से उग जाते है। इस प्रकार वनस्पति मे स्तरण उत्पन्न हो जाता है। भिन्न-भिन्न ऊँचाई वाले पौधे इस प्रकार एक ही स्थान पर उत्पन्न हो जाते है। निम्न स्तरो के पौधो ने ऊँची जातियो द्वारा प्रदत्त आर्द्रता व छाया के लिए अनुकूलन पाया जाता है। अत. प्रकृति मे विभिन्न अनुकूलन के पादप एक दूसरे के सहयोग से भिन्न-भिन्न स्तर पर आसानी से रहते है।

3. परनिर्भरता (Dependencies) — पादप समुदाय के कुछ पौधो की उत्तरजीविता (Survival) दूसरो पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए घने वृक्षो की छाया मे ब्रायोफाइटा या फर्न उगते हैं। यदि उन वृक्षो को काट दिया जाए तो उनकी छाया मे उगने वाले निम्न पादप भी मर जायेगे। उष्ण कटिबन्धीय तथा उपोष्ण कटिबन्धीय वनो मे उगने वाले अधिपादपो की भी यही स्थिति होगी। वन मृदा मे परजीवी तथा मृतजीवी दोनो प्रकार की कवक प्रचुर मात्रा मे पायी जाती है। कुछ कवक सवहनी पौधो की जड़ो से सम्बन्ध स्थापित कर उसकी अवशोषण क्षमता को बढ़ाती है। अत· माइकोराईजा कवक एव विशाल वृक्ष एक दूसरे पर निर्भर (Dependent) रहते है।

पादप समुदाय का विकास (Evolution of Plant Communities)

किसी स्थान को यदि वनस्पति विहीन कर दिया जाए और उसे मानव तथा मानव द्वारा पाले जाने वाले पशुओं की क्रियाओं से विलग कर दिया जाए तो शनै शनै लेकिन एक निश्चित क्रम मे उस स्थान पर वनस्पति उगनी प्रारम्भ होगी। एक लम्बे समय पश्चात् एक स्थिति ऐसी जायेगी जब वहाँ पर स्थायी समुदाय (Stable community) अपना राज्य जमा लेगा। किसी नग्न स्थान पर शने शनै· पादप समुदाय के जमाव को पादप अनुक्रमण (Plant succession) कहते है।

अनुक्रमण के कारण —

समुदायो मे होने वाले अनुक्रमण सामान्य रूप से जलवायवी, भू आकृतिक अथवा जैविक कारणो से हो सकते है। जलवायवीय कारको मे सूखा एव अकाल, अतिवृष्टि, आँधी, हिमपात, पाला पडना आदि सम्मिलित है। मृदा अपरदन अथवा मृदा का जमाव आदि भू आकृतिक कारण है जिनके कारण नग्न क्षेत्र बन जाते है। मानव द्वारा वनो की सफाई व कटाई अथवा पशुओं द्वारा चराई के कारण भी किसी भी स्थान की वनस्पति समूल नष्ट हो जाती है और वहाँ पर अनुक्रमण की स्थिति बन जाती है।

अनुक्रमण के प्रकार —

(अ) प्राथमिक अनुक्रमण (Primary succession) — वनस्पति रहित स्थलो पर होने वाला अनुक्रमण प्राथमिक अनुक्रमण कहलाता है। नग्न चट्टानो, रेतीले टीलो, ज्वालामुखी से निकली राख वाले क्षेत्रो को इसी श्रेणी मे रखा जाता है।

(ब) द्वितीयक अनुक्रमण (Secondary succession) — ऐसे क्षेत्र जहाँ पूर्व मे वनस्पति उपस्थित थी लेकिन किन्ही कारणो से वहाँ की वनस्पति नष्ट हो गई हो तथा नई

प्रकार की वनस्पति पुन स्थापित होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो तो उसे द्वितीयक अनुक्रमण कहते है । बाढ, अग्नि अथवा कटाई से नष्ट वनस्पति क्षेत्रो को इस श्रेणी मे रखा जाता है ।

अनुक्रमण की समान्य क्रिया (General Process of Succession)

किसी भी स्थल पर होने वाले अनुक्रमण प्रक्रिया मे निम्नालिखित अवस्थाए पायी जाती है –

(1) अनाच्छादन (Nudation) – प्राकृतिक या मानवीय क्रियाओं के फलस्वरूप किसी भी स्थान का वनस्पति रहित या नग्न होना अनाच्छादन कहलाता है । अनाच्छादन के पश्चात् ही वास्तविक अनुक्रमण की क्रियाये प्रारम्भ होती है ।

(2) आक्रमण (Invasion) – अनाच्छादित क्षेत्रो मे आस-पास के क्षेत्रो से बीज, बीजाणु अथवा अन्य पादप जनन श्रम भाग आकर बसने लगते है । सर्वप्रथम आकर बसने वाले पादप को पुरोगामी (Pioneer) कहते है । आक्रमण मे निम्न पद सम्मिलित है –

(अ) प्रवास (Migration) – पादप समुदाय का उद्‌भव उस समय शुरू होता है जब पौधो के प्रवर्धक अग (जेम्यूल), उदाहरण – बीज, बीजाणु आदि अनावृत क्षेत्र पर आक्रमण करते है । ये जेम्यूल अन्य पुराने पादप समुदाय से वायु जल या जन्तुओं के माध्यम से प्रवास करते है । प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण इनमे से अधिकाश नष्ट हो जाते है । जिनके लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होती है, वे नये क्षेत्र मे अकुरित हो वहाँ प्रवास करने लगते है ।

(ब) आस्थापन (Ecesis) – प्रवास के पश्चात् प्रवासी जातियो के नए क्षेत्र मे स्थापन प्रक्रम को आस्थापन कहते है । एक जाति के पौधे जब तक अपना जीवन चक्र पूरा नही कर लेते वे अस्थापित नही कहे जा सकते । ये जातियाँ अब वहाँ पर उपनिवेशन आरम्भ करती है ।

(स) समूहन (Aggregation) – उपनिवेशन के पश्चात् प्रवर्धन के कारण पुरोगामी जातियो का समूहन होने लगता है । इसके परिणामस्वरूप पोषको, प्रकाश तथा स्थान के लिए स्पर्धा (Competition) प्रारम्भ हो जाती है । स्पर्धा के फलस्वरूप केवल सबल पौधे ही जीवित रह पाते है ।

(3) स्पर्धा एव प्रतिक्रिया (Competition & Reaction) – पौधो मे प्रकाश तथा स्थान के लिए अन्तराजातीय (Interspecific) तथा आन्तरजातीय (Intraspecific) स्पर्धा प्रारम्भ हो जाती है । सबल पौधे जीवित रह कर जनन करने लगते है । पौधे आवास स पारस्परिक क्रिया करते है इससे पर्यावरण मे परिवर्तन होता है । इस प्रक्रम को प्रतिक्रिया (Reaction) कहते है । पौधो के भागो के सडने गलने से अधिक ह्यूमस का सचय होने लगता है । पौधो की छाया के कारण कुछ सुक्ष्म जलवायवी (Micro climatic) परिवर्तन होने लगते है । परिवर्तित परिस्थितियाँ प्रारम्भिक पुरोगामियो के लिए कम अनुकूल तथा नए आक्रमको के लिए अधिक अनुकूल बन जाती है । इस प्रकार पुरोगामी जातियो का स्थान नई जातियाँ ले लेती है । इस कारण शाकीय पौधो का स्थान क्षुप तथा क्षुपो का स्थान वृक्ष लेने लगते है ।

(4) स्थायित्व और चरम वनस्पति -- उपरोक्त वर्णित प्रक्रमो, पारस्परिक क्रियाओं के फलस्वरूप धीरे-धीरे पादप समुदाय का एक निश्चित क्रम मे और निश्चित दिशा मे लेकिन धीरे-धीरे विकास होने लगता है। पारस्परिक क्रियाओं के कारण वहाँ के पारिस्थितिक कारको मे परिवर्तन होता है और अन्त मे वातावरण स्थायी हो जाता है क्योंकि इसमे अनिश्चित काल तक परिवर्तन नही हो सकते। इस अवस्था मे वनस्पति जीवन का अन्तिम प्रारूप – शाकीय, क्षुपीय या वृक्षीय – जलवायु द्वारा निर्धारित होता है। वनस्पति का अन्तिम प्रारूप लगभग स्थायी तथा जलवायु के साम्य होता है। यह प्रारुप आवास की विशिष्ट जलवायु के अनुसार उच्चतम होता है तथा इसे चरम वनस्पति (Climax vegetation) कहते हैं। किसी चरम समुदाय की प्रमुख जातियाँ वातावरण के लगभग पूर्णत: अनुकूल होती है। इससे समुदाय स्थायी हो जाता है और उसमे तब तक परिवर्तन नही आते जब तक उसे कोई बाह्य कारक प्रभावित न करे। इसके अतिरिक्त प्रकाश, स्थान, आर्द्रता, पोषक तत्वो का चक्रीकरण इत्यादि सभी पर्यावरणीय कारक पूर्णत: पादप समुदाय के नियन्त्रण मे होते है। इसके कारण नई जातियो के प्रवेश की सभावना बहुत कम रह जाती है।

अनुक्रमण के प्रकार (Types of Succession) –

किसी भी नग्न (वनस्पति विहीन स्थान) स्थान पर आकर सर्वप्रथम बसने वाली जातियो या पादप समुदाय को पुरोगामी (Pioneer) जातियाँ या समुदाय कहते हैं। अनुक्रमण की विभिन्न अवस्थाओं से धीरे-धीरे गति करता हुआ पादप समुदाय अपने चरम बिन्दु पर पहुँचता है उसे चरम समुदाय (Climax communities) कहते हैं। पादप अनुक्रमण के प्रारम्भ से लेकर अन्त के चरम समुदाय के मध्य मे आने वाली अवस्थाओं को क्रमकी समुदाय (Seral communities) अथवा क्रमकी अवस्था (Seral stage) कहते हैं तथा अनुक्रमण की समस्त क्रमकी अवस्थाओं के लिए सम्मिलित शब्द क्रमक (Sere) का प्रयोग किया जाता है।

इसीलिए जलीय आवासो मे होने वाले अनुक्रमण को जलारम्भी (Hydrach) तथा इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जलक्रमक (Hydrosere) कहते हैं। शुष्क आवासो मे होने वाले अनुक्रमण को शुष्कतारम्भी (Xerarch) तथा अनुक्रमण के विभिन्न चरणो को सयुक्त रूप से मरुक्रमक (Xerosere) कहते हैं।

इसी क्रम मे नग्न चट्टानो पर अनुक्रमण को शैल क्रमक (Lithosere), लवणीय जल भूमि पर होने वाले अनुक्रमण को लवण क्रमक (Halosere), रेतीले टीलो पर होने वाले अनुक्रमक को बालुकीय क्रमक (Psammosere) कहते हैं।

इस अध्याय मे हम एक शैल चट्टान पर होने वाले शुष्क अनुक्रमण तथा एक जलीय आवास मे होने वाले अनुक्रमण का अध्ययन करेंगे।

मरुक्रमक (Xerosere)

एक प्रारूपिक मरुक्रमक के अध्ययन हेतु हम नग्न चट्टानो पर होने वाले अनुक्रमक का अध्ययन करेंगे। एक नग्न शैल चट्टान पर होने वाले अनुक्रमक मे निम्न चरण होते हैं।

(1) पर्पटी लाइकेन अवस्था (Crustose lichen stage) — शैल आवास पर जल एव मृदा की मात्रा न होने से पोषक तत्व नही होते तथा पौधो के आवास हेतु परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती है । यहाँ सूर्य की सीधी रोशनी, उच्च ताप, अधिक वायुवेग एव रात्रि मे ठण्डक पायी जाती है । ऐसी जगहो पर पुरोगामी पौधे पर्पटी (Crustose) लाइकेन होते है । ऐसी लाइकेन वर्षा के जल को स्पज की तरह अवशोषित कर लेते है, इनकी वृद्धि अत्यन्त मन्द होती है और इनमे अत्यधिक शुष्कन को सहन करने की क्षमता पायी जाती है । ऐसे लाइकेन सर्वप्रथम लाइकेन खण्डो अथवा बीजाणुओं द्वारा प्रवास करते है । लाइकेन द्वारा स्रावित अम्ल धीरे धीरे शैलो को सक्षरण (Corrode) कर अपघटित करते है जिससे शैल की ऊपरी सतह खुरदरी हो जाती है । लाइकेन के कारण कुछ कार्बनिक पदार्थ भी बनने लगते है । पर्पटी लाइकेन के उदाहरण – ग्रेफिस, लिसीडिया लेकोनोरा आदि ।

(2) पर्णिल लाइकेन अवस्था (Foliose lichen stage) — पर्पटी लाइकेनो द्वारा शैलो के खुरदरे बन जाने के कारण इन पर पर्णिल लाइकेन (उदाहरण – पारसेलिया, फाइसिया आदि) उगना प्रारभ होते है । इनके चौडे थैलस पर्पटी लाइकेनो पर छाया करते है और धीरे धीरे इनका स्थान ले लेते है । अन्त मे पर्पटी लाइकेन मर जाते है और उनके क्षय के कुछ कार्बनिक पदार्थ बन जाता है । पर्णिल लाइकेनो के इर्द गिर्द कुछ जल व ह्यूमस एकत्रित हो जाता है तथा स्रावित अम्ल से शैल कणिकाए बनती है । इनके मिश्रण से मृदा की एक अत्यन्त पतली परत का निर्माण हो जाता है ।

(3) मॉस अवस्था (Moss stage) — शैल के तरेडो मे पतली मृदा परत व ह्यूमस उत्पन्न होने से कुछ मॉस (उदाहरण – पॉलीट्राइकम, ग्रिभीआ) उत्पन्न होने लगते है । मॉस के मूलाभास लाइकेनो से स्पर्धा करते है तथा लाइकेन पर छाया डालते है । इनके साथ ही साथ कुछ क्षुपिल लाइकेन भी उत्पन्न होते है । असनिया एव कलैडोनिया कुछ क्षुपिल लाइकेन के उदाहरण है । मॉस व क्षुपिल लाइकेन की उपस्थिति के कारण पर्णिल लाइकेन विलुप्त होने लगते है । इनकी मृत्यु एव वर्षा ऋतु मे पुन बनने के कारण मृदा की परत बनने लगती है ।

(4) शाक अवस्था (Herbaceous stage) — मॉसो के उगने के कारण मृदा की मात्रा बढ़ जाती है । मृदा की जल धारण क्षमता अधिक होने लगती है और शैल सतह पर मॉस की चटाई सी बन जाती है । मिट्टी की मात्रा बढ़ जाने से सर्व प्रथम एक वर्षीय तत्पश्चात् द्विवर्षीय तथा अन्त मे बहुवर्षीय शाकीय पादप तथा कुछ मरुद्भिद घासे अपना स्थान ग्रहण करने लगती है । इन सभी पौधो की जडे शैल सक्षारण की क्रिया को और अधिक तीव्रता प्रदान करती है । मिट्टी की मात्रा, पौधो की मृत्यु से ह्यूमस एव जल धारण क्षमता उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है तथा पौधो की छाया के कारण वाष्पन कम व आर्द्रता अधिक होने लगती है ।

(5) क्षुप अवस्था (Shrub stage) — कुछ मिट्टी की परत बन जाने पर मरुद्भिदी क्षुप प्रकट होने लगते है । क्षुपो के अधिक उगने से शाकीय पादपो की सख्या घटने लगती है । क्षुपो की जडे शैलो को और अधिक अपघटित करती है और शैल चट्टान पर पूर्णतया. मृदा की मोटी परत बन जाती है । गिरे हुए पत्तो एव टहनियो के कारण अधिक ह्यूमस

बनता है जिससे मृदा की ऊर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। अब परिस्थितियाँ वृक्षों के उगने के अनुकूल होने लगती है
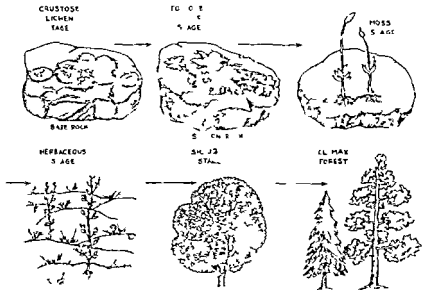
चित्र 3.1 मरुक्रमक की विभिन्न अवस्थाएं

(6) चरम वन (Climax Forest) — सर्वप्रथम मन्द वृद्धि वाले मरुद्भिदी काष्ठीय वृक्षों की जातियाँ प्रकट होती है। प्रारंभ मे वृक्ष अत्यन्त दूर-दूर होते है। इनकी वृद्धि के साथ ही साथ और अधिक मृदा एव ह्यूमस का निर्माण होता रहता है धीरे धीरे भूमि मे नमी और वायु की आर्द्रता बढ़ जाती है अब अपेक्षाकृत ऊँचे व सघन वृक्ष उत्पन्न होने लगते है इनकी छाया मे अब छाया प्रिय क्षुप एव शाक पनपने लगते है तथा धीरे धीरे मध्यरुद्भिदी वृक्षों की जातियाँ उग जाती है इस वनस्थल की घनी छाया मे आर्द्र वायु तथा नम व उर्वर मृदा के अधिक अनुकूलित नये शाक व क्षुपीय प्रकार के पेड़-पौधे उग जाते है

जलक्रमक (Hydrosere)

जल क्रमक की विभिन्न अवस्थाओं को समझने के लिए कोई झील या सरोवर एक आदर्श स्थान हो सकता है जहां जल मध्य में तो गहरा होता है तथा किनारों की तरफ क्रमश छिछला होता चला जाता है। ऐसी परिस्थिति मे जिन विभिन्न अवस्थाओं से चरम पादप समुदाय का विकास होता है। वे निम्न है —

(1) प्लावक अवस्था (Plankton stage) – जल की गहराई मे पुरोगामी के रूप मे पादप प्लावक (*Phytoplankton*) उत्पन्न होते है। ये एक कोशिकीय और समूह मे रहने वाले हरे शैवाल है जो जल की ऊपरी सतह पर तैरते रहते है। जल की गहराई मे पादप जीवन अनुपस्थित होता है।

(2) निमग्न अवस्था (Submerged Stage) – 10 फीट या इससे कम गहरे पानी वाले झील क्षेत्र मे पूर्णत निमग्न पौधे तथा मुक्त प्लावी पौधे पाये जाते है। इनकी जडे नीचे कीचड मे जमी नही होती। इन पौधो के उदाहरण है पोटेमोजेटोन (*Potamogeton*) हाइड्रिला (*Hydrilla*) वेलिसनेरिया (*Vallisneria*) युट्रीक्युलेरिया (*Utricularia*) आदि। इन पौधो के साथ शैवाल गुच्छ चिपके रहते है। किनारो से अपरदित मिट्टी के कण जो गदले पानी मे तैरते होते है इन पौधो द्वारा रोक लिए जाते है। इन पौधो की मृत्यु पर इनके अवशेष ह्यूमस मे परिवर्तित होकर तल मे बैठ जाते है। इस प्रकार झील के तल मे लगातार मिट्टी कीचड व ह्यूमस के जमा होते रहने से प्रतिवर्ष झील उत्तरोत्तर कम गहरी होती चली जाती है। गहराई कम होने के कारण अब यह स्थान निमग्न पादपो के लिए कम अनुकूल तथा नए आक्रामको के लिए अधिक अनुकूल हो जाता है।

(3) प्लावी अवस्था (Floating stage) – उपरोक्त वर्णित कारणो से जल कम गहरा हो जाता है तथा 5 से 10 फीट गहरे पानी मे प्लावी जातियाँ उगने लगती है। इन पौधो की जडे तल मे जमी रहती है परन्तु स्तम्भ अथवा पर्णवृन्त लगभग पानी के ऊपर पहुँच जाते है तथा इनकी पत्तियाँ जल सतह पर तैरती रहती है। इनमे निम्फिया नेलम्बियम व रेननकुलस ऐक्वाटिलिस प्रमुख है इनके साथ ही कुछ मुक्त प्लावी जातियाँ जैसे लेम्ना वोल्फिया पिस्टीया सिरटोफीलम इत्यादि जातियो तक प्रकाश को नही पहुँचने देते जिसके फलस्वरूप निमग्न जातियाँ समाप्त हो जाती है।
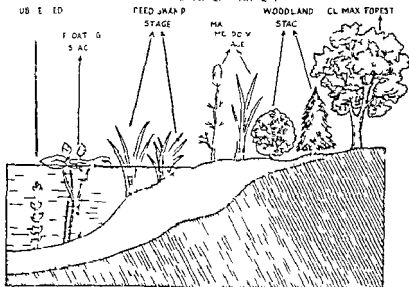
चित्र 3.2 जलक्रमक की विभिन्न अवस्थाए

(4) नद अनूप अवस्था (Reed Swamp stage) -- जब जल की गहराई 2 से 3 फीट रह जाती है तो रीड स्वाम्प जैसे पादप उगने लगते है। यहाँ पर टाईफा, फ्रेग्माइटीज, कैरिक्स, जकस जैसे पादपो के साथ ही अत्यन्त कम जल मे रूमेक्स, एक्लिप्टा और सैनिटेरिया जैसे पादप उगने लगते है। ये पौधे तल मे जडो द्वारा जमे रहते है। इनके कुछ भाग पानी मे डूबे होते है। यहाँ पर दलदल बनने लगता है तथा धीरे-धीरे मिट्टी के जमाव के कारण यह स्थान कच्छ (Marshy) भूमि मे परिवर्तित होने लगता है।
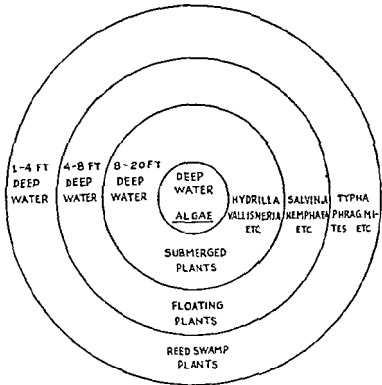
चित्र 3.3 : एक तालाब में जलक्रमक की अवस्थाएं

(5) कच्छ शाद्वल अवस्था (Marsh Meadow stage) -- मिट्टी के जमाव के कारण यह क्षेत्र कच्छ भूमि (जहाँ केवल कुछ इच पानी ही हो) मे परिवर्तित हो चुका होता है। इस भूमि पर पॉलीगोनम, पोदीना कुल के पौधे, ऊँची घास की जातियाँ आदि आकर जमने लगती है यह एक घास मैदान (Meadow) बन जाता है। ये पौधे भूमि जल का अत्यधिक अवशोषण करते है और इसे वाष्पोत्सर्जन द्वारा उड़ा देते है। इनके मृत अवशेषो के सचयन से और जल वाहित तथा वातोढ़ मिट्टी के रोककर भूमि का निर्माण करते है। ऐसी भूमि जलीय पौधो के पनपने के लिए अनुकूल नही होती अत अब यहाँ पर क्षुप तथा वृक्षो के पनपने की परिस्थिति बनने लगती है।

(6) काष्ठीय वनस्पति अवस्था (Woodland stage) — आर्द्र जलवायु में इस अनुक्रमण का अगला चरण क्षुप तथा वृक्षों की जातियों का पनपना है। इस अवस्था में एसे पौधे पुरोगामी होते हैं जो अपनी जड़ें के आस-पास आंशिक जलाक्रान्त परिस्थितियों को सहन कर सकें। ये काष्ठीय पौधे आवास को अपने पूर्ववर्ती पौधों के समान ही छाया डालकर तथा तीव्र वाष्पोत्सर्जन द्वारा प्रभावित करते हैं। ये काष्ठीय पादप वातोढ़ मिट्टी को रोककर तथा पादप अवशेषों के संचयन द्वारा मिट्टी को शुष्क बनाते हैं।

(7) चरम वन (Climax Forest) — जैसे जैसे ह्यूमस का संचयन होता है जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव भूमि में बढ़ने लगते हैं और भूमि अधिक उर्वर होती चली जाती है। इस भूमि पर नये समादभिद वृक्ष प्रकट होने लगते हैं। ये वृक्ष भूमि को प्रभावित करते हैं इनकी छाया (Tree conopy) के नीचे वायु आर्द्र रहती है और इनकी छाया के नीचे छायासह (Shade tolerant) क्षुप व शाक पनपने लगते हैं।

इस प्रकार एक क्षेत्र जो पानी से ढका था अन्त में वन में परिवर्तित हो गया। यहाँ पर यह याद रखना आवश्यक है कि चरम समुदाय की प्रकृति वहाँ उपस्थित जलवायु पर निर्भर करती है। वन समुदाय का विकास तभी होगा जब जलवायु आर्द्र होगी। शुष्क जलवायु में चरम समुदाय घास स्थल अथवा कोई अन्य शुष्कस्थली समुदाय हो सकता है।

पादप समुदाय (Plant Community)

प्रकृति में भिन्न भिन्न जातियाँ एक दूसरे के सहयोग से उगती हैं। किसी एक स्थान पर एक ही जाति के उगने वाले समूह को जनसंख्या (Population) कहते हैं। प्रकृति में अनेक जातियाँ एक दूसरे के साथ मिलजुल कर एक ही स्थान पर मिलती हैं इस समूह को पादप समुदाय (Plant community) कहते हैं।

पादप समुदाय का अध्ययन —

किसी भी स्थान पर उपस्थित विभिन्न प्रकार के पादपों की जानकारी एवं समुदाय का मूल्यांकन उसके विस्तृत अध्ययन से ही सम्भव है। समुदाय के अध्ययन हेतु कुछ गुणों (Character) का आकलन करना आवश्यक हो जाता है। इस आकलन को हम दो विधियों से कर सकते हैं।

(अ) पादप समुदाय का गुणात्मक स्वरूप ज्ञात करना — गुणात्मक स्वरूप

(ब) पादप समुदाय के बारे में संख्यात्मक आंकड़े ज्ञात करना संख्यात्मक आंकड़े

(अ) गुणात्मक स्वरूप (Qualitative characters) — किसी भी स्थान की वनस्पति एवं पादप समुदाय के गुणात्मक अध्ययन हेतु निम्न गुणों (Characters) का अध्ययन किया जाता है

(i) पौधों की जातियों का उल्लेख — किसी भी स्थान पर पाये जाने वाली समस्त जातियों की सूची वहाँ के पर्यावरणीय गुणों के बारे में सूचना देती है। अतः गुणात्मक स्वरूप जानने के लिए वहाँ उपस्थित पादप जातियों की किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त भाषा में सूची बनाई जाती है।

(ii) उदग्र स्तर विन्यास (Stratification) – पृथ्वी के ऊपर अथवा अन्दर एव जल मे पाये जाने वाले पौधे प्रकाश एव खाद्य प्राप्ति के लिए अनुकूलता द्वारा अपने अगो को एव समस्त शरीर के इस प्रकार विकसित करते हैं या उन स्थानो को घेरते है, जहाँ से पौधे को वातावरण का पूर्ण लाभ मिल सके। ऐसी क्रियायो के फलस्वरूप कहीं कहीं पौधे कई स्तर से एक दूसरे के ऊपर फैले हुए भी पाये जाते है। इस प्रकार के वितरण से थोडे ही स्थान मे अधिक सख्या मे पौधे रह सकते है और अन्तर जातीय प्रतियोगिता के प्रभाव को भी बहुत हद तक कम कर देते है।

जगलो मे ऊँचे वृक्षो की छाया मे अनेक प्रकार के शाकीय/क्षुप/ प्रतान आदि उगते रहते है। विषुवत रेखीय नम वनो मे तो पाँच स्तर मे पौधे एक दूसरे की छाया मे एव एक दूसरे के कारण उगते हैं। इन स्थानों पर जल व ताप पौधो को उचित मात्रा मे मिलता रहता है। ऐसे स्थानो पर पाये जाने वाले पादपो की पत्तियाँ इस प्रकार व्यवस्थित होती है कि उन्हे अधिक सौर ऊर्जा प्राप्त हो सके। अत: स्तर विन्यास का अध्ययन भी आवश्यक गुण है।

(iii) फिनोलोजी (Phenology) – फिनोलोजी मे किसी भी स्थान पर पाये जाने वाले पादप समुदाय की सभी जातियो के पादपों की विभिन्न क्रियाओं (अकुरण, वृद्धि दर, पुष्पन काल, फल एव बीजो का परिवर्धन, बीजो का वितरण, पत्तियो का झडना आदि) का अध्ययन किया जाता है। किसी भी स्थान की वनस्पति एव उनकी क्रियाऐं वहाँ के ताप, वायु, जल उपलब्धता एव सूर्य के प्रकाश से प्रभावित होती है। इन सभी क्रियाओं का प्रभाव वहाँ के जन्तु समुदाय पर भी पड़ता है। अत. फिनोलोजी का अध्ययन आवश्यक है।

(iv) पौधों की जीवन शक्ति (Vitality) – एक जाति तथा एक अवस्था के सभी पौधे एक ही समान नहीं उगते। इनमे से कुछ मज्बूत एव स्वस्थ एव कुछ पौधे कमजोर होते हैं। जिन बीजाकुरो को प्रारम्भिक अवस्था मे उचित वातावरण प्राप्त नही होता वे कमजोर हो जाते है और उनसे कम सख्या मे तथा कमजोर बीज पैदा होते है। प्रारभ से ही अनुकूल वातावरण प्राप्त करने वाले पौधे स्वस्थ एव मजबूत होते हैं। ऐसे मजबूत पौधे पाला, सूखा, रोगो आदि का मुकाबला कर सकते है तथा ये स्वस्थ बीज उत्पन्न करते हैं।

पौधो की जीवन शक्ति का अध्ययन हम पौधे की ऊँचाई, जडो की लम्बाई, पत्तियो का क्षेत्रफल, पत्तियो की सख्या, पत्तियो मे उपस्थित वर्णक, फूल, फल, बीजो की सख्या एव भार, पौधे का शुष्क भार आदि गुणो के आधार पर करते हैं।

(v) जीव स्वरूप (Life forms) – राउकेर ने सन् 1934 मे पौधो को उनके जीव स्वरूप के आधार पर वर्गीकृत किया। राउकेर के अनुसार पौधो के वश को चलाने मे उन पर उपस्थित जननक्षम अगो (Perrenating bodies) की प्रमुख भूमिका है अत: पौधो पर जननक्षम अगो के स्थान को उन्होने प्रमुख आधार मानकर जीव स्वरूपो का वर्गीकरण किया। इस प्रकार के वर्गीकरण से हमे यदि पौधो के लेटिन नामो का ज्ञान न भी हो तो कोई हानि नही होगी। राउकेर के अनुसार पौधो के निम्न पाँच वर्ग है

फेनेरोफाइट	Phenerophyte
केमीफाइट	*Chemophyte*
हेमीक्रिप्टोफाइट	Hemicryptophyte
क्रिप्टोफाइट	*Cryptophyte*
थेरोफाइट	Therophyte

पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से इस प्रकार के वर्गीकरण का बहुत महत्व है क्योंकि पौधो का जीव स्वरूप उस स्थान के वातावरण का द्योतक है। किसी भी स्थान की वनस्पति मे इस पाँच वर्गो मे से कोई एक वर्ग के पौधे अवश्य अधिक मात्रा मे होते हैं और उसी वर्ग के आधार पर वहाँ की वनस्पति एव वातावरण का ज्ञान हो जाता है।

(vi) सामाजिकता (Sociability) — कुछ जाति के पौधे बहुत पास पास खूब अच्छी तरह उगते हैं और एक घनी आबादी बना देते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी पौधे हैं जो पास-पास उगने पर या तो कमजोर हो जाते हैं अथवा स्पर्धा के फलस्वरूप मर जाते हैं, अत वे घनी आबादी नही बना पाते। ब्रान-ब्लैफे (1951) के अनुसार अधिक सामाजिकता केवल उन्ही जातियो मे पाई जाती है जिनके पौधे (अ) अधिक मात्रा मे बीज उत्पन्न करते है (ब) बीज एव फल भली प्रकार से वितरित होते है (स) बीजो का अकुरण अधिक मात्रा मे होता है (द) उनके पौधो मे स्पर्धा क्षमता अधिक होती है और (च) पौधो पर सक्रामक रोगो का न्यूनतम प्रभाव पडता हो।

(ब) संख्यात्मक आँकड़े — *समुदाय के अध्ययन हेतु सख्यात्मक आँकडे ज्ञात करना* आवश्यक होता है क्योंकि स्पर्धा एव सप्रदायकता दोनो ही पौधो की सख्या पर आधारित है। *कुछ सख्यात्मक गुण (Quantitative characters) निम्न है* —

(i) बारम्बारता (Frequency) — किसी भी स्थान पर सभी जाति के पौधो का वितरण एक समान नही होता, कुछ तो छिटक कर फैले हुए चारो तरफ पाए जाते है पर कोई-कोई जाति के पौधे छोटे-छोटे समुदाय मे वितरित होते है। पौधो का वितरण उनके *प्रजनन, बीज की बनावट एव वातावरण की अनुकूलता का प्रतीक है। बारम्बारता हमेशा* प्रतिशत मे प्रदर्शित की जाती है।

$$\text{बारम्बारता} = \frac{\text{कवाड्रेटो की कुल सख्या जिनमे वह स्पीशीज पाई जाती है} \times 100}{\text{कुल कवाड्रेटो की सख्या}}$$

राउकेर ने पौधो को बारम्बरता के आधार पर पाँच वर्गों मे बाँटा है —

वर्ग ए	जिन पौधो की बारम्बारता	1 से 20% हो
वर्ग बी	जिन पौधो की बारम्बारता	21 से 40% हो
वर्ग सी	जिन पौधो की बारम्बारता	41 - 60% हो
वर्ग डी	जिन पौधो की बारम्बारता	61 - 80% हो
वर्ग ई	जिन पौधो की बारम्बारता	81 - 100% हो

ससार के अनेक देशो मे पाई जाने वाली वनस्पति समुदाय मे स्पीशीज का वितरण उपरोक्त वर्गों मे विश्लेषित्रा करने के पश्चात राउकेर ने विश्व के लिए एक आदर्श बारम्बारता क्रम बनाया जो निम्न प्रकार है –

$$A > B > C \lesseqgtr D < E$$

इस प्रकार के अध्ययन से हमे जो आँकड़े मिलते हैं उनके द्वारा हम किन्ही दो वनस्पति समुदाय का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते है तथा वातावरण का प्रभाव किसी जाति के पौधो पर क्या है इसकी प्रकृति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

(ii) घनत्व (Density) – किसी स्थान मे इकाई क्षेत्रफल मे उपस्थित पौधो की सख्या उसके घनत्व को दर्शाती है। पौधो के घनत्व का प्रभाव उनके आपसी प्रतियोगिता का द्योतक है। यदि पौधे पास-पास उगते हैं तो उनमे *अधिक प्रतियोगिता पाई जायेगी।* अधिक प्रजनन शक्ति वाले पौधो का घनत्व अनुकूल वातावरण मे अधिक होता है।

$$\text{घनत्व} = \frac{\text{सभी क्वाड्रेटो उस स्पीशीज के पौधो की कुल सख्या}}{\text{कुल क्वाड्रेटो की सख्या}}$$

घनत्व हमेशा प्रति इकाई मे व्यक्त किया जाता है।

(iii) आवरण क्षेत्र (Cover)– आवरण क्षेत्र हमे यह दर्शाता है कि भूमि का कितना भाग केवल तने ने और कितना क्षेत्र उसके पर्णिल आवरण (Foliose cover) ने घेर रखा है। केवल तने द्वारा घिरे क्षेत्र को उसका आधार आवरण क्षेत्र (Basal cover) तथा पर्णिल आवरण द्वारा ढ़के क्षेत्र को पर्णिल आवरण क्षेत्र (Canopy cover) कहते हैं।

आधार एव पर्णिल आवरण क्षेत्र का आकलन तने की परिधि तथा दोपहर को पौधे द्वारा की गई छाया की परिधि को नाप कर किया जाता है।

(iv) प्रचुरता (Abundance) – किसी स्थान विशेष पर किसी जाति के पौधो का समूहन (aggregation) उसकी प्रचुरता को प्रदर्शित करता है। प्रचुरता के लिए निम्न सूत्र काम मे लेते है।

$$\text{प्रचुरता} = \frac{\text{सभी क्वाड्रेटो मे उस स्पीशीज के पौधो की सख्या}}{\text{उन क्वाड्रेटो की सख्या जिनमे वह स्पीशीज पाई गई}}$$

इस प्रकार हम किसी भी स्थान पर पाई जाने वाली वनस्पति का अध्ययन कर सकते है। अध्ययन हेतु पादप समुदाय के सभी पेड-पौधो को नापना और गिनना व्यावहारिक रूप से सभव नही है, इसलिए समुदाय का प्रतिचयन (Sampling) इस प्रकार से किया जाता है कि कम समय और कम परिश्रम से पादप समुदाय का यथार्थ स्वरूप ज्ञात हो सके।

प्रतिचयन विधियाँ (Sampling methods)

(अ) क्वाड्रेट विधि – समान भुजा वाले वर्ग क्षेत्र को क्वाड्रेट कहते है, इनका आकार पादप समुदाय के प्रकार और सगठन पर निर्भर करता है। किसी समुदाय विशेष मे प्रतिचयन के लिए किस आकार का क्वाड्रेट उपयुक्त होगा इसके लिए सबसे छोटे क्वाड्रेट से प्रतिचयन आरम्भ करके आकार को क्रमश बढ़ाते जाते है। इस प्रकार प्राप्त सूचना के आधार पर स्पेसीज की सख्या और क्वाड्रेट के क्षेत्रफल के बीच वक्र खीचा जाता है जिसे स्पेशीज-क्षेत्रफल वक्र (Species area curve) कहते है। इस वक्र मे रेखा के मोड के आधार पर लम्ब डालकर क्वाड्रेट का उपयुक्त आकार तय किया जाता है।

दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि क्वाड्रेट एक प्रतिचयन की इकाई है जिससे वनस्पति विश्लेषण हेतु आँकडे एकत्रित किये जाते है। किसी भी स्थान के आकार के आधार पर क्वाड्रेटो की सख्या तय की जाती है। प्रत्येक क्वाड्रेट मे आने वाले पौधो/वृक्षो के नाम, सख्या, ऊँचाई, मोटाई (परिधि) इत्यादि को रिकार्ड किया जाता है। इस प्रकार सग्रहित आकडो से पादप समुदाय के गुणो की गणना की जाती है।

(ब) ट्रांसेक्ट विधि – अध्ययन क्षेत्र के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक सीधी डोरी अथवा रेखा खीच ली जाती है, इस पर स्थित पौधो की स्पेसीज, आवृति और कुल सख्या ज्ञात कर ली जाती है। इस विधि द्वारा प्रतिचयन करने के लिए बराबर बराबर दुरी पर लगभग 10 से 15 समानान्तर ट्रान्सेक्टस डाले जाते है। ट्रासैक्ट विधि द्वारा किसी सगठन की परिधि से केन्द्र तक पौधो की रचनाकृति और सगठन मे परिवर्तित को भी ज्ञात किया जा सकता है

क्वाड्रेट एव ट्रासेक्ट के विभिन्न प्रकार तथा अन्य विस्तृत जानकारी आप उच्च कक्षाओं मे पढ़ेगे

अध्याय : 4

पारिस्थितिक तंत्र ✓

(Ecosystem)

संरचना एवं कार्य

यह देखने मे आता है कि किसी भी भूभाग पर पौधे अकेले नही उगते, वे अन्य पौधो और जन्तुओं के साथ एक निश्रित समुदाय मे उगते है जिसे सगठन कहते है। प्रत्येक सगठन की एक विशेष रचना होती है जो उस जगह के पर्यावरण पर निर्भर रहती है। सगठन के अवयव (पादप और प्राणी) एक दूसरे को तथा वहाँ के पर्यावरण को प्रभावित करते रहते है। आपने पढ़ा है कि हम पारिस्थितिकी (Ecology) के अध्ययन को एक पौधे के सदर्भ मे कर सकते है अथवा एक पादप समुदाय (Plant Community) के सदर्भ मे। पादप समुदाय का अध्ययन करते समय उसको प्रभावित करने वाले सभी जीवीय तथा अजीवीय कारको का भी अध्ययन करना होता है। इन जीवीय तथा अजीवीय कारको की सम्पूर्ण सरचना एक तत्र (System) की तरह कार्य करती है। इस तत्र को पारिस्थितिक तत्र (Ecosystem) कहते है। यह तत्र पारिस्थितिकी की वह मूल क्रियात्मक इकाई है जिसमे जैव-समुदाय (Biological Community) अपने अजैव (Abiotic) पर्यावरण से परस्पर सम्बन्धित होता है। ये दोनो ही एक दूसरे की विशेषताओं को प्रभावित करते है तथा जीवन के अनुरक्षण के लिए दोनो ही अति आवश्यक है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ठ होता है कि एक के बिना दूसरे का कोई महत्व नही होता।

सर्व प्रथम पारिस्थितिक-तत्र शब्द का प्रयोग टेन्सले (Tansley, 1935) ने किया। वृहद्रूप मे सम्पूर्ण जैव-मडल (Biosphere) जिसमे पृथ्वी के जीवीय तथा अजीवीय अश तथा भौतिक, रसायनिक एव भू-गर्भीय लक्षण सम्मिलित कर लिये जाये तो यह एक पारिस्थितिक-तत्र कहलायेगा। पारिस्थितिक तत्र पर्यावरण के जैविक व अजैविक भागो या कारको से निर्मित एक क्रियात्मक इकाई है। इसमे जैविक व अजैविक भाग अन्तर्क्रिया द्वारा एक स्थाई तत्र बनाते है तथा इन दोनो की सरचना तथा कार्यों का सम्बन्ध निश्चित नियमो के अनुसार गतिज सतुलन मे रहता है।

ओडम (Odum, 1963) के अनुसार पारिस्थितिक तत्र वह आधार भूत इकाई है जिसमे जैविक व अजैविक वातावरण एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हुए पारस्परिक अनुक्रिया से ऊर्जा और रसायनिक पदार्थों के निरन्तर प्रवाह से तत्र की कार्यात्मिक गतिशीलता बनाये रखते है। इस तत्र मे ऊर्जा का एकमात्र स्रोत सूर्य है।

पारिस्थितिक तत्र की कोई निश्चित सीमा नही हो सकती। यह छोटा से छोटा जैसे तश्तरी या बर्तन भरा जल, गमले म भरी मृदा अथवा महासागर व वन जितना विशाल, यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथ्वी एक पारिस्थितिक-तत्र मानी जा सकती है।

पारिस्थितिक – तत्र के लिए आवश्यक है –

1 अजीवीय पदार्थो की पर्याप्त उपस्थिति
2 जीव।
3 ऊर्जा स्रोत।

4 विभिन्न विधियाँ जिनसे पदार्थों व ऊर्जा का प्रवाह चल सके।

पारिस्थितिक तंत्र की संरचना --

उपरोक्त परिभाषा के अनुसार पारिस्थितिक तत्र दो प्रकार के घटको (Components) से मिल कर बनता है –

1 जीवीय घटक (Biotic Components)।
2 अजीवीय घटक (Abiotic Components)।

ओडम (Odum, 1971) के अनुसार पारिस्थितिक-तत्र के छ घटक होते है जिन्हे निम्न दो भागो मे सयोजित किया जा सकता है –

(अ) जीवीय घटक –

1 उत्पादक।
2 उपभोक्ता।
3 सूक्ष्म उपभोक्ता या अपघटक (विघटक)।

(ब) अजीवीय घटक –

4 अकार्बनिक पदार्थ।
5 कार्बनिक पदार्थ।
6 जलवायु।
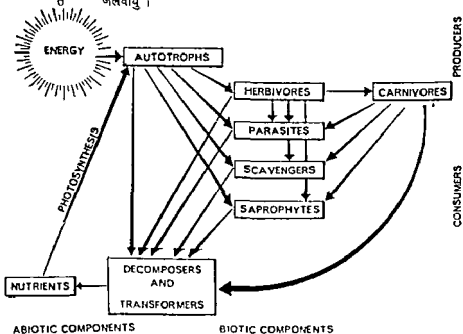
चित्र 4 1 एक सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र के प्रमुख पद व घटक तथा सम्बन्ध

क्लार्क (Clarke) ने पारिस्थितिक तंत्र मे एक अन्य प्रकार के घटक का उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत परिवर्तक (Transformers) रखे गये है जो विघटित पदार्थों पर प्रतिक्रिया करके उनको विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक एव कार्बनिक पदार्थों मे परिवर्तित कर देते है।

जीवीय घटक (Biotic Component)

पारिस्थितिक तंत्र मे इनका प्रमुख स्थान होता है। इस घटक मे विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ एव प्राणी आते हैं। भोजन प्राप्त करने की विधि के अनुसार इस घटक को दो प्रमुख भागो मे विभक्त किया जाता है –

(अ) स्वपोषित अथवा उत्पादक (Autotrophs or producers) –

ये वे हरे सजीव पादप सदस्य हैं जो साधारण अकार्बनिक (inorganic) पदार्थों को प्राप्त कर प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा जटिल पदार्थ भोजन के रूप मे निर्माण करने मे सक्षम होते हैं स्व:पोषित कहलाते है। ये जीव प्रमुख रूप मे सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त करते हैं जिसके लिए इनमे पर्णहरित (Chlorophyll) नामक पदार्थ होता है। इस प्रकार के घटक उत्पादक कहलाते हैं क्योंकि ये उत्पादित खाद्य-पदार्थों का विभिन्न प्रकार से सचय भी करते हैं। यही सचित खाद्य-पदार्थ सभी प्रकार के जीवो के लिये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे भोजन का स्रोत होता है।

(ब) परपोषित घटक (Heterotrophic Components) --

इस घटकके सदस्यो मे पर्णहरित केअभाव केकारण भोजन बनाने की क्षमता नही होती है अत: ये अपने भोजन के लिए उत्पादको पर निर्भर रहते है, इसलिये इन्हे उपभोक्ता (Consumer) भी कहते है। ये उपभोक्ता, उत्पादको द्वारा उत्पादित या सचित भोजन का उपयोग करते हैं। उपभोक्ता तीन श्रेणियो मे विभाजित किये जा सकते है –

(i) उपभोक्ता प्रथम श्रेणी (Consumers of first order or Primary consumers) – ये जीव अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष रूप से हरे पौधो अर्थात् उत्पादको पर निर्भर रहते है अत: ये मुख्य रूप से शाकाहारी (Herbivores) होते है जैसे चूहा, कीट, बकरी, गाय, खरगोश, हिरण आदि।

(ii) उपभोक्ता द्वितीयक श्रेणी (Secondary Consumers) -- वे जीव जो अपना भोजन शाकाहारी जन्तुओं से प्राप्त करते हैं द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते है। ये मासाहारी होते हैं तथा इनका भोजन शाकाहारी जन्तु होते है जैसे मेढक, कौआ, सर्प, बिल्ली, लोमड़ी आदि।

(iii) उपभोक्ता तृतीय श्रेणी (Tertiary Consumers) – वे जीव जो मासभक्षी प्राणियो अर्थात् द्वितीयक श्रेणी (उपभोक्ताओं) का भक्षण करे वे तृतीय श्रेणी उपभोक्ता कहलाते है। ये सर्वाहारी व शाकाहारी का भी भक्षण कर लेते है। ये वे जीव है जो अन्य जीवो का तो भक्षण कर लेते हैं किन्तु इन्हे कोई भी प्राणी नही खा सकता अत: इन्हे उच्च उपभोक्ता (Top Consumers) भी कहते हैं उदाहरणार्थ: – चीता, शेर, बाज (Hawk), गिद्ध (Vulture) आदि।
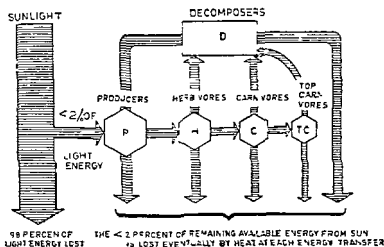
चित्र 4.2 : पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा प्रवाह

(स) अपघटक –

अपघटक वे मृतपोषी कवक व जीवाणु है जो भूपृष्ठ पर या इससे कुछ नीचे रहते हैं और सभी प्रकार के जीवो के मरने पर उनके मृत शरीरो या शरीर के अवशेषो को अपघटित (Decompose) करके उनके अवयवो को फिर से कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि खनिज तत्वो मे परिवर्तित कर देते है। इस प्रकार भोजन को जिसे प्राथमिक रूप मे उत्पादको ने सचित किया था तथा अन्य उपभोक्ताओं ने प्रयोग किया उसे वातावरण मे वापस लौटाने का कार्य अपघटक ही करते है, अत: पारिस्थितिक तत्र के सतुलित सचालन के लिए अपघटको की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि उत्पादको की या उपभोक्ताओं की। अपघटन प्रक्रिया के समय अति सक्षिप्त मात्रा मे कुछ कार्बनिक पदार्थों को ये सूक्ष्म जीव अपने भोजन के रूप मे भी ग्रहण कर लेते है। यदि अपघटक न हो तो मृत जीवो के भूमि व जल मे ढेर लग जायेगे और मृदा मे आवश्यक खनिज वापस नही पहुँच पायेगे, फलस्वरूप भूमि मे आवश्यक खनिजो का अभाव हो जावेगा तथा वह अनुपजाऊ हो जावेगी। सक्षिप्त मे हम यह कह सकते है कि अपघटक पारिस्थितिक-तत्र मे खनिज-लवण व अन्य कच्ची सामग्री (Raw metanals) के पुन: चक्रण (Re-cycling) का महत्वपूर्ण कार्य करते है।

अजीवीय घटक (Abiotic Components)

सरचना के दृष्टिकोण से अजीवीय घटको को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है –

1. भौतिक (Physical) – वातावरण के भौतिक भाग मे जलवायवी कारक जैसे – जल, ताप, प्रकाश, आर्द्रता, ऊर्जा आदि मुख्य रूप से उल्लेखनीय है।

2. अकार्बनिक पदार्थ – इस भाग मे जीवन के लिए परम आवश्यक खनिज जैसे कैल्सियम, पोटेशियम, मैग्नेशियम, लवण जैसे फॉस्फोरस, नाट्रोजन, सल्फर, तथा गैसे जैसे ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन (O_2, CO_2, N_2) आदि शामिल हैं। ये सब स्वपोषित तथा उत्पादक घटक जैसे हरे पौधो के पोषक तत्व अथवा कच्ची सामग्री है।

3. कार्बनिक पदार्थ – इन पदार्थों को तीन श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है।

प्रथम श्रेणी मे कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन्स, लिपिड्स जैसे कार्बनिक यौगिक, एव इसके अपघटन (Decomposition) से उत्पन्न पदार्थ जैसे यूरिया तथा ह्यूमस जो वातावरण मे अकार्बनिक पदार्थों की भाँति मुक्त रूप मे मिलते हैं, सम्मिलित हैं।

दूसरी श्रेणी मे वह कार्बनिक पदार्थ है जो केवल जीवित कोशिकाओं मे पाये जाते हैं जैसे एडिनोसीन-ट्राई-फॉस्फेट (ATP)।

तीसरी श्रेणी मे वह पदार्थ आते है जिनको उपरोक्त दोनो के बीच की कड़ी माना जा सकता है जैसे पर्णहरित (Chlorophyll) एव डी-ऑक्सीराइबोन्यूक्लिक-एसिड (DNA) *जो जीवित कोशिकाओ के अन्दर तथा बाहर दोनो ही रूप मे मिलते है, अत. इस श्रेणी* के पदार्थ जैविक एव अजैविक पदार्थों को जोड़ने वाली कड़ी का काम करते हैं।

कार्यात्मक दृष्टिकोण से अजैविक घटको को दो भागो मे बाँटा जा सकता है –

(अ) पदार्थ (Materials) – जैसे मृदा, वायु-मडलीय गैसे, खनिज-लवण आदि।

(ब) ऊर्जा *(Energy)– जैसे सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा, रसायनिक, ताप ऊर्जा आदि।*

पारिस्थितिक तंत्र का कार्यात्मक पहलू –

वैसे तो अजैविक तथा जैविक घटक अलग-अलग दिखाई देते है परन्तु इन दोनो घटको मे सतुलित तथा जटिल कार्यात्मक सम्बन्ध रहता है, इसी पर इस तत्र का जीवन चक्र सभव है। *पारिस्थितिक तत्र का कार्यात्मक स्वरूप निम्न पहलुओं से स्पष्ट किया जा* सकता है –

1 द्रव्यो का चक्रण या भू-रासायनिक चक्र।

2 ऊर्जा - प्रवाह चक्र।

3 भोजन चक्र एव पोषण स्तर।

द्रव्यों का चक्रण –

पारिस्थितिक तत्र मे आवश्यक खनिज द्रव्य पोषक पदार्थों की पूर्ति के लिए अनेक *चक्र चलते रहते है जिनके माध्यम से O_2, Cl, N, S, (ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन,* सल्फर) आदि अनेक तत्व वायुमडल और भूमडल के भडार से जीव धारियो मे प्रविष्ट कर विभिन्न जैविक क्रियाये सम्पादित करते हैं और अन्त मे वापस मूल भडार मे लौट आते है। इन चक्रो *का विस्तारपूर्ण विवरण अध्याय 2 मे किया गया है। इन सबको खनिज* प्रवाह (Mineral circulation) भी कहते है। इस प्रकार के चक्रो मे क्योकि जीवीय एव अजीवीय दोनो ही प्रकार के घटक निरन्तर क्रियाशील रहते है अत इसे भू-जीवीय रासायनिक चक्र (Bio-geo-chemical cycle) भी कहते हैं।

ऊर्जा प्रवाह –

पृथ्वी पर जीवो का अस्तित्व ऊर्जा पर निर्भर है। प्रकृति मे इस ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य का प्रकाश है। सूर्य के प्रकाश का लगभग पचास प्रतिशत (50%) ऊष्मा के रूप मे धरातल पर अवशोषित हो जाता है तथा तीस प्रतिशत (30%) भाग को बादल तथा धूल के कण परावर्तित कर देते है अत इस विकिरण का केवल बीस प्रतिशत (20%) भाग ही वायुमडल द्वारा अवशोषित होता है। वास्तव मे सूर्य के प्रकाश का मात्र 0 2 प्रतिशत भाग ही प्रकाश सश्लेषण के उपयोग मे आता है।

पारिस्थितिक तत्र के प्रत्येक जीव को जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। जैसा कि हम पढ़ चुके है कि इस तत्र मे दो जैविक घटक होते है – (i) स्वपोषी (ii) परपोषी। पारिस्थितिक तत्र मे स्वपोषी घटक द्वारा अजीवीय पदार्थों से भोज्य पदार्थों के सश्लेषण के समय सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है। सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा के प्रयोग करने की क्षमता केवल हरे पादपो, जिनमे पर्ण हरित होता है, मे ही होती है। एक जीव से दूसरे जीव मे (उत्पादक से उपभोक्ता में) यह ऊर्जा भोज्य पदार्थ के रूप मे स्थानान्तरित होती है। हर स्थानान्तर के समय कुछ न कुछ सचित ऊर्जा का ह्रास होता रहता है अत कुछ ऊर्जा व्यर्थ मे चली जाती है। इसके अतिरिक्त श्वसन आदि क्रियाओं मे भी ऊर्जा के कुछ भाग का ह्रास होता रहता है। इससे ज्ञात होता है कि ऊर्जा एक दिशीय प्रवाह (Unidirectional flow) मे ही प्रवाहित होती है जबकि द्रव्यो एव खनिजो का चक्रण (Circulation) होता रहता है।

विशेष ध्यान मे रखने योग्य बात ऊर्जा के सम्बन्ध मे यह है कि पारिस्थितिक तत्र मे ऊर्जा का केवल एक प्रतिशत भाग ही हरे पादप भोजन बनाने (प्रकाश सश्लेषण – Photosynthesis) मे उपयोग मे ले सकते है। यही सूक्ष्म सौर ऊर्जा पारिस्थितिक तत्र को चलाती रहती है। शाकाहारी जन्तु पौधो से जो ऊर्जा प्राप्त करते है उसका मात्र दस प्रतिशत (10%) भाग ही अन्य जन्तुओं अथवा द्वितीयक उपभोक्ता को दे पाते है। हर स्तर अर्थात् हर ट्रॉफिक स्तर पर यह सचित ऊर्जा इसी प्रकार कम होती रहती है।

पारिस्थितिक-तत्र मे ऊर्जा का प्रवेश, रूपान्तरण तथा वितरण उष्मा गतिक नियमो के अनुसार होता है –

1. प्रथम नियम – प्रथम नियम के अनुसार ऊर्जा का न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही इसे नष्ट किया जा सकता है। जैसे – हरे पादप प्रकाश ऊर्जा को रसायनिक ऊर्जा मे परिवर्तित करते हैं; यही रसायनिक ऊर्जा श्वसन क्रिया के कारण ऊष्मा ऊर्जा मे परिवर्तित हो जाती है।

2. द्वितीय नियम – द्वितीय नियम के अनुसार जब ऊर्जा स्थानान्तरित होती है अर्थात् जब वह एक रूप से दूसरे रूप मे परिवर्तित होती है तब ऊर्जा के कुछ भाग का ह्रास होता है। यह ह्रास हुई ऊर्जा वायुमडल मे विसरित हो जाती है।

पारिस्थितिक-तंत्र के प्रकार –

जैव मडल मे निम्नलिखित तीन प्रकार के प्रमुख पारिस्थितिक तत्र हैं –

(1) अलवणीय जल पारिस्थितिक-तंत्र (*Fresh water ecosystem*) – इसके अन्तर्गत झीले, तालाब, नहरें, नदियाँ, झरने आदि आते है ।

(2) लवणीय जल पारिस्थितिक-तंत्र (**Marine ecosystem**) – इसके अन्तर्गत समुद्र, महासागर तथा लवणीय झीलें आती है । यह विश्व के सबसे बड़े समरूपी पारिस्थितिक तत्र है ।

(3) स्थलीय पारिस्थितिक-तंत्र (**Terrestrial ecosystem**) – इस तत्र के अन्तर्गत अनेको छोटे बड़े पारिस्थितिक तंत्र पाये जाते हैं जिनका नामकरण उनके आवास तथा प्रभावी जीवधारियो पर आधारित होता है, जैसे – वन पारस्थितिक-तत्र (Forest ecosystem), मरूस्थल पारिस्थितिक तत्र (Desert ecosystem), घास स्थल तंत्र (Grass land ecosystem), फसल पारिस्थितिक-तत्र (Crop ecosystem) आदि ।
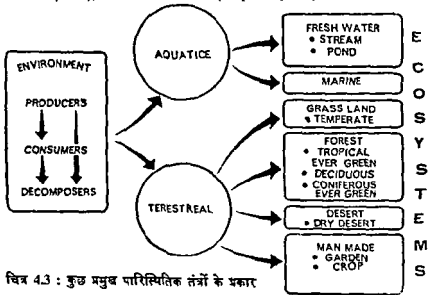
चित्र 4.3 : कुछ प्रमुख पारिस्थितिक तंत्रों के प्रकार

झील एक पारस्थितिक तंत्र (Lake ecosystem) –

झील मे पारस्थितिक-तत्र की मौलिक इकाईया (चित्र 4 4) अच्छी तरह से निरूपित होती हैं। जल, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, ऑक्सीजन, केल्सियम, मेग्नेशियम, सोडियम, पोटेशियम, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, प्रकाश आदि झील के भौतिक कारक माने गये हैं । पोषक तत्वो का कुछ भाग जल मे घुला रहता है । इस पारिस्थितिक तत्र के सजीव घटक मे पानी की सतह पर या उससे थोड़ा नीचे रहने वाले डायटम, शैवाल, उत्पादक है । इनके अतिरिक्त तैरने वाले अथवा जल मे निमग्न पुष्पी पादप भी उत्पादक के रूप मे पाये जाते हैं । हाइड्रिला वर्टिसिलेटा, वेलिसनेरिया स्पाइरेलिस, नजाज माइनर, ट्रापा वाइस्पाइनोसा, आइकोर्निया क्रिसपस, कमल आदि पुष्पी-पादप मुख्यतया झीलो मे पाये जाते है । प्राथमिक उपभोक्ता के रूप मे छोटे छोटे प्राणी-प्लवक, जल पिस्सू, मच्छर के लार्वे तथा कुछ अन्य

अकशेरूकीय जन्तु होते है। द्वितीय उपभोक्ता के रूप मे छोटी मछलियाँ तथा मेढक होते है। सर्वोच्च मांसाहारी के रूप मे बडी मछलियाँ पक्षी जैसे बगुला, बतख, लकलक आदि पाये जाते है।
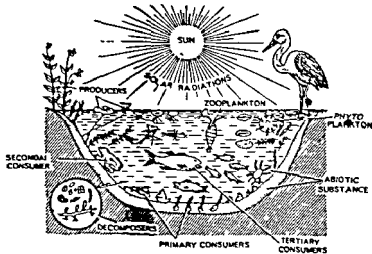
चित्र 4.4 : एक झील का जल पारिस्थितिक तंत्र

इस पारिस्थितिक-तंत्र मे अपघटको के रूप मे मृतपोषी-कवक, जीवाणु, तथा अपरद (detritus) पर निर्वाह करने वाले प्राणी जैसे प्रोटोजोआ व अन्य अकशेरूकीय जन्तु पाये जाते है जो झील के तले पर कीचड़ मे रहते है।

वन पारिस्थितिक-तंत्र (Forest ecosystem)

झील पारिस्थितिक तंत्र की भाँति वन पारिस्थितिक-तंत्र मे भी जीवीय तथा अजीवीय घटक होते है। इस तंत्र मे उत्पादक तथा उपभोक्ता सभी अपने उच्चतम विकास की स्थिति मे पाये जाते है, जो निम्न प्रकार है –

(1) **अजीवीय - घटक** – जलवायु के आधार पर वायुमण्डल मे उपस्थित ऑक्सीजन, कार्बन-डाई-ऑक्साइड, सूर्य का प्रकाश तथा अन्य गैसे एवं मृदा मे पाये जाने वाले विभिन्न पोषक तत्व मुख्य है। इस तंत्र मे जलीय पारिस्थितिक-तंत्र की अपेक्षा तापमान मे परिवर्तन जीवीय घटको पर अधिक प्रभाव डालता है। इसके अतिरिक्त मृदा मे उपस्थित जल भी एक प्रमुख कारक है।

चित्र 4.5 : वन पारिस्थितिक तंत्र

(2) जीवीय घटक –

(अ) उत्पादक – विभिन्न हरे पौधे, शाक, क्षुप एवं वृक्ष के रूप में होते है जो उत्पादक का कार्य करते है ।

जलवायु, ताप एवं मृदा के आधार पर वन पारिस्थितिक-तंत्र कई प्रकार के होते है जैसे ऊष्ण कटिबन्ध (Tropical), समशीतोष्ण (temporate) आदि ।

इस पारिस्थितिक तंत्र मे सागवान *(Tectona grandis)*, साल *(Shorea robusta)*, शीशम *(Dalbergia sisoo)*, चीड *(Pine sps)*, देवदार *(Cedrus deodara)* आदि मुख्य वृक्ष हैं ।

(ब) उपभोक्ता – वन पारिस्थितिक तंत्र मे प्राथमिक उपभोक्ता मे अनेक शाकाहारी जन्तु जैसे खरगोश, हिरण, चूहा, गिलहरी, गाय, हाथी, बन्दर, आदि होते है । द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ताओं मे पाये जाने वाले मुख्य जन्तु भेडिया, तेन्दुआ, सर्प, बाज, चील, गिद्ध आदि है । सर्वोच्च मांसाहारी अर्थात् तृतीय श्रेणी के उपभोक्ताओं मे जन्तुओं की संख्या कम होती है । इनमे से मुख्य है – शेर, चीता, अजगर, गिद्ध आदि ।

खाद्य-श्रृंखला

पारिस्थितिक-तंत्र के अध्ययन से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि पारिस्थितिक तंत्र वातावरण के जैविक व अजैविक भागो या कारको से निर्मित एक कार्यात्मक इकाई है जहाँ जैविक व अजैविक भाग अन्तर्क्रिया द्वारा एक स्थायी तंत्र बनाते हैं जिसमे दोनो
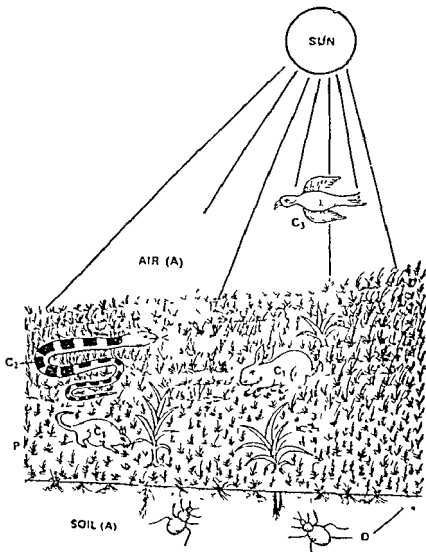
चित्र 4.6 : घासस्थल पारिस्थितिक तंत्र

भागो के बीच पदार्थों का विनियम एक वृत्ताकार पथ मे होता है। पारिस्थितिक-तत्र के हर सजीव को जैविक क्रियाओं के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। पारिस्थितिक-तत्र

मे स्वपोषी उत्पादको द्वारा रासायनिक पदार्थों के रूप मे ऊर्जा सग्रह की जाती है। प्रत्येक जीवधारी के आधार भूत तत्व है C, H, N, O, तथा इनसे बने पदार्थ जैविक व अजैविक भागो से गुजरते रहते है। जीव द्वारा ग्रहण की गई ऊर्जा धीरे-धीरे ऊष्मा मे परिवर्तित हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊर्जा समाप्त नही होती वरन् एक से दूसरे रूप मे रूपान्तरित हो जाती है। प्रत्येक जीव के द्वारा ग्रहण किया हुआ भोजन का शरीर मे श्वसन से प्राप्त ऑक्सीजन द्वारा ऊर्जा मुक्त होती है जो जैविक क्रियाओ के प्रयोग मे आ जाती है।

ओडम के मतानुसार ऊर्जा का एक दिशा मे प्रवाह व पदार्थ का चक्रण पारिस्थितिकी के दो महत्वपूर्ण नियम हैं। ये दोनो नियम समस्त वातावरण व जीवो पर समानरूप से प्रभावी है।
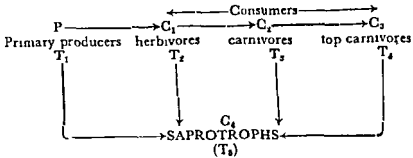
चित्र 47 · एक प्राकृतिक खाद्य-शृखला का चित्रण

ऊर्जा का प्राथमिक स्रोत है सूर्य, जिससे ऊर्जा का स्थानान्तरण होता है हरे पौधो मे और हरे पौधो से अन्य जीवो मे। हरे पौधो मे सचित सौर ऊर्जा जैविक रूप मे उपयोगी होती है इसलिये ये पौधे और इनमे भोजन के लिए सम्बन्धित जन्तु भोजन श्रृखला का आधार बनते है। आपने पारिस्थितिक-तत्र मे स्वपोषी व परपोषित घटको के बारे मे पढा होगा। स्वपोषी घटक द्वारा सूर्य की प्रकाश ऊर्जा का सग्रहण कर सरल अकार्बनिक पदार्थों से जटिल कार्बनिक भोज्य पदार्थों का निर्माण होता है। परपोषी घटक स्वपोषियो द्वारा सश्लेषित जटिल भोज्य पदार्थों का न केवल उपयोग करते हैं वरन् पुनर्विन्यास एव विघटन भी करते है। ये स्वपोषी घटक है– पौधे, जो खाद्य श्रृखला मे उत्पादक जीव धारियो (Producers) के रूप मे जाने जाते हैं तथा परपोषी घटक जीव भोजक या उपभोक्ता (Consumers) कहलाते है। जन्तु समुदाय मे शाकाहारी जन्तु ही प्राथमिक भोजक होते हैं तथा ये प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता कहलाते हैं। जो इन प्राथमिक श्रेणी के शाकाहारी जीवो से भोजन प्राप्त करते हैं ये द्वितीय श्रेणी के जन्तु मासाहारी कहलाते है। मासाहारी मे यह क्रम एक के बाद दूसरे जन्तुओं मे चलता रहता है। दूसरे जन्तु का भक्षण करने वाला जन्तु शिकारी (Predater) व इसका भक्ष्य शिकार (Prey) कहलाता है। स्वय की प्रजाति का भक्षण करने वाला केनिब्लेस्टिक (Canıblastıc), मृत जन्तुओं को खाने वाला स्केवेन्जर (Scavanger) तथा दूसरों पर आश्रित परजीवी (Parasite) कहलाता है।

इस प्रकार परिस्थितिकी तत्र मे एक जीव से दूसरे जीव मे खाद्य-पदार्थ तथा ऊर्जा के प्रवाह को खाद्य-श्रृखला कहते है । एक पारिस्थितिक-तत्र मे कई खाद्य-श्रृखलाऐं हो सकती है जो आपस मे सम्बन्धित होती है ।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि पारिस्थितिक-तत्र मे विभिन्न जीव – पौधे एव प्राणी अपनी पोषण से सम्बन्धित आवश्यकताओं के लिये एक दूसरे पर आश्रित रहते है तथा परस्पर सम्बन्धित जीव एक खाद्य श्रृखला बनाते है । अन्य शब्दो मे हम कह सकते है कि खाद्य-श्रृखला जीवो का वह समूह है जिसमे जीव भोज्य एव भोजक के रूप मे परस्पर सम्बन्धित रहते है तथा इसमे खाद्य-ऊर्जा भोज्य से भोजक मे स्थानान्तरित होती रहती है, अर्थात् प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं मे विद्यमान भोजन को द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता भोजन के रूप मे उपयोग कर लेते है और इस प्रकार पारिस्थितिक-तत्र मे उत्पादक, उपभोक्ता, एक क्रम मे व्यवस्थित रहते है । इस श्रृखला मे प्रत्येक स्तर को पोष-स्तर (Trophic level) कहते है । एल्टन (Alton, 1927) के अनुसार, प्रकृति मे प्राय: *भोजन श्रृखला मे चार या पाँच से अधिक कड़ियाँ नही होती क्योंकि खाद्य पदार्थ (ऊर्जा)* एक पोष-स्तर से दूसरे पोष स्तर मे जाती है तो उसमे से लगभग 90% ऊर्जा ऊष्मा के रूप मे व्यय होकर वातावरण मे लुप्त हो जाती है तथा शेष 10% ऊर्जा ही उस स्तर को प्राप्त होती है । खाद्य-श्रृखला जितनी लम्बी होगी, सर्वोच्च उपभोक्ताओं के जीवो को ऊर्जा उतनी ही कम मिलेगी ।

खाद्य-श्रृंखला के प्रकार –

खाद्य-श्रृखला तीन प्रकार की होती है –

1 परभक्षी (Predator) *या शाकवर्ती* (Grazing)
2 परजीवी (Parasitic)
3 मृत-जीवी (Saprophytic)

परभक्षी खाद्य-श्रृखला –

इस प्रकार की खाद्य-श्रृखला हरे पौधे (उत्पादकों) से प्रारम्भ होकर शाकाहारी (प्राथमिक उपभोक्ताओ) जन्तुओं के माध्यम से मासाहारी (द्वितीयक तथा तृतीयक उपभोक्ता) मे समाप्त होती है । यह खाद्य-श्रृखला प्रत्यक्षरूप से सौर-ऊर्जा पर आधारित होती है । प्रकृति मे अधिकाशत इसी प्रकार की भोजन श्रृखला पाई जाती है । इस खाद्य श्रृखला मे प्रत्येक स्तर के साथ परभक्षी के शरीर के आकार मे वृद्धि होती जाती है । प्रथम चरण के परभक्षी (प्राथमिक उपभोक्ता), द्वितीय चरण के परभक्षी (द्वितीयक उपभोक्ता) से छोटे होते है; अर्थात् इस प्रकार की खाद्य श्रृखला हरे पादपो से प्रारभ होकर छोटे जन्तुओं से होती हुई बड़े जन्तुओं मे जाती है । उदाहणार्थ –

तालाब मे (जलीय) पादपप्लवक ⟶ प्राणी प्लवक
(उत्पादक) (प्राथमिक उपभोक्ता)
⟶ बड़ी मछली
(द्वितीयक उपभोक्ता)
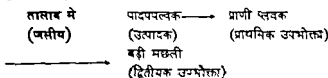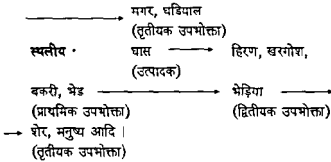
परजीवी खाद्य-श्रृंखला –

यह श्रृंखला भी शाकाहारी प्राणियो से प्रारम्भ होती हैं किन्तु इसमे भोजन-ऊर्जा का क्रम बडे आकार के प्राणियो से छोटे आकार वाले प्राणियो की ओर होता है, अत बड़े आकार के प्राणी अतिथेय या परपोषी (Host) कहलता है तथा छोटे आकार के प्राणी परजीवी (Parasite) कहलाते है ।

मृतजीवी खाद्य-श्रृंखला –

यह खाद्य-श्रृंखला मृत गले-सडे (पादप व जन्तु) कार्बनिक पदार्थों से आरम्भ होकर सूक्ष्म जीवो (कवक व जीवाणु) के माध्यम से अपरद (Detritus) जीवो को खाने वाले (Detrivores) तथा उनका भक्षण करने वाले (Predators) जीवो की ओर बढ़ती है । मृत-पादप पदार्थ (अपरद) एव उसमे उपस्थित जीवाणुओं का भक्षण करने वाले जन्तुओं को डेट्रीवोर्स (Detrivores) कहते है । अत यह खाद्य-श्रृंखला अपरद खाद्य-श्रृंखला भी कहलाती है; उदाहणार्थ –

(i) मृत कार्बनिक पदार्थ (अपरद)– केचुआ → मेढक → सर्प → चिडिया।
(ii) अपरद– घोंघा → झाऊ चूहा → उल्लू ।

वैसे तो सभी प्रकार की खाद्य श्रृंखलाऐं निरन्तर चलती रहती है किन्तु अपरदी खाद्य-श्रृंखला वनो तथा घास स्थलीय पारिस्थितिक-तत्रो मे अधिक महत्वपूर्ण है । जलीय या समुद्री परिस्थितिकी तत्रो मे शाकवर्ती खाद्य-श्रृंखला का अधिक योगदान होता है ।

खाद्य-जाल –

किसी भी पारिस्थितिक तत्र मे वास्तविक रूप से सरल भोजन श्रृखलाऐं उपरोक्त उदाहरणो के अनुसार नही पाई जाती है । वास्तव मे किसी भी पारिस्थितिक तत्र या प्राकृतिकवास मे उपस्थित पौधो व प्राणियो मे भोजन के दृष्टिकोण से जटिल सम्बन्ध होते है, अर्थात् पारिस्थितिक तत्र मे एक से अधिक खाद्य-श्रृखलाऐं आपस मे किसी न किसी भोजन क्रम मे जुडकर एक जटिल जाल सा बना लेती हैं; जिसे खाद्य-जाल (Food web) कहते हैं । यह खाद्य-जाल एक समुदाय (Community) के सभी जीवो मे सम्बन्ध स्थापित करता है । इस प्रकार खाद्य-जाल मे ऊर्जा का प्रवाह (Energy flow) एक दिशिय (Uni directional) होते हुए भी कई पथो से होकर होता है । किसी भी पारिस्थितिक-तत्र मे खाद्य-जाल जितना जटिल होगा उतना ही वह तत्र अधिक स्थायी होगा क्योंकि जटिल

खाद्य जाल मे किसी भी उपभोक्ता के लिए अधिक तरह के जीव उपभोग के लिए होगे। अत: एक तरह के जीव के किसी कारण से कम हो जाने या नष्ट हो जाने से खाद्य-जाल की स्थिरता पर अधिक प्रभाव नही पडेगा क्योकि, उसकी पूर्ति उसी स्तर के कोई भी जीव कर देंगे। उदाहरणार्थ – घास स्थलीय पारिस्थितिक तत्र मे यदि खरगोशो की सख्या कम होने लगे तो चूहे अधिक सखया मे उत्पन्न होकर खाद्य जाल की अस्थिरता को कम कर सकते है। यही कारण है कि अधिक सख्या मे वैकल्पिक पथ (Alternauve path ways) होने पर खाद्य जाल अधिक स्थिर और सतुलित पारिस्थितिक तत्र बनाता है।

चित्र 4.8 : एक घासस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र मे खाद्यजाल

पारिस्थितिक स्तूप या पिरामिड –

जैसा कि आप पढ चुके है कि पारिस्थितिक तत्र मे विभिन्न पोषण स्तर (Trophic levels) होते है। इस तत्र मे पादप प्रथम स्तर बनाते है, शाकाहारी द्वितीय तथा प्राथमिक *मासाहारी तृतीय पोषण स्तर बनाते है। पारिस्थितिक* तत्र के इन विभिन्न जीवीय घटको के पोषण स्तरो के सम्बन्धो को त्रिभुजाकार पिरामिड द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जिन्हे पारिस्थितिक पिरामिड कहते है। ब्रिटेन के वैज्ञानिक चार्ल्स एल्टन (Charles Elton, 1927) ने सर्व प्रथम पारिस्थितिक पिरामिड पर प्रकाश डाला। पारिस्थितिक पिरामिड मे प्रथम पोषण स्तर (पादप) पिरामिड का आधार बनाते है और अन्य स्तर क्रमिक रूप से एक दूसरे के ऊपर स्थित होकर पिरामिड का शीर्ष बनाते है। प्रत्येक पारिस्थितिक तत्र के पिरामिड मे जैसे जैसे अग्रसर होते है वैसे-वैसे जीवो की सख्या कम होती जाती है तथा *अत मे उच्चतम उपभोक्ता (Top consumers) सख्या मे* कुछ ही रह जाते है जैसे शेर, बाज या मगर। ये पारिस्थितिक पिरामिड तीन प्रकार के होते है –

1 जीव सख्या का पिरामिड (Pyramid of numbers)
2 जीव भार का पिरामिड (Pyramid of biomass)
3 ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of energy)
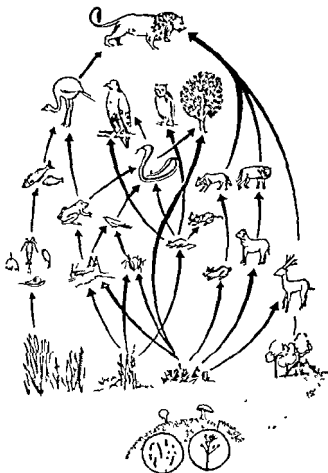
चित्र 4.9 : खाद्यजाल का चित्रण

1. जीव संख्या का पिरामिड –

यह पिरामिड भोजन श्रृखला मे विभिन्न पोषण स्तरो मे सख्यात्मक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है । इस प्रकार के पारिस्थितिक पिरामिड से ज्ञात होता है कि उत्पादक (शैवाल, हरे पादप) सर्वाधिक सख्या मे होते है तथा जैसे जैसे उत्पादक से उपभोक्ताओं की तरफ बढ़ते है वैसे वैसे जीवो की सख्या कम होती जाती है अर्थात् इस पिरामिड मे उत्पादको

की सख्या सर्वाधिक एव उच्चतम उपभोक्ताओं की सख्या सबसे कम होती है, अत. यह पिरामिड प्राय सीधा (Upright) होता है जैसे घास-स्थल या झील के पारिस्थितिक तत्र मे। ऐसे पिरामिड कभी-कभी सीधे न होकर उल्टे भी हो सकते है । जैसे –
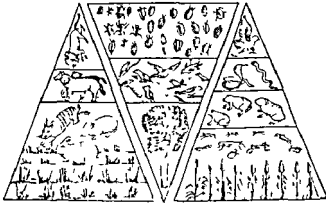
चित्र 4 10 : जीव-संख्या के पिरामिड – बायाँ–घास स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में जीव–संख्या के आधार पर सीधा पिरामिड; मध्य-एक बड़े वृक्ष के पारिस्थितिक तंत्र में जीव–संख्या केआधार पर उल्टा पिरामिड तथा दायाँ–फसल पारिस्थितिक तंत्र में संख्या के आधार पर सीधा पिरामिड

(अ) परजीवी खाद्य-श्रृखला वाले तत्र मे पिरामिड सदैव उल्टा होता है क्योंकि एक पौधा अनेक परजीवियो की वृद्धि के लिये पर्याप्त होता है तथा ये परजीवी अनेक परातपर जीवो (Hyperparasite) को पोषण प्रदान करने मे सक्षम होते है । अत उत्पादक से उपभोक्ताओं की सख्या बढ़ती जाती है और पारिस्थितिक पिरामिड उल्टा बनता है ।

(ब) यदि एक विशाल वृक्ष के पारिस्थितिक तत्र का अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होगा कि सख्या के आधार पर इसका पिरामिड भी उल्टा बनेगा क्योंकि एक वृक्ष पर रहने वाली चिड़ियो (Birds) की सख्या अधिक एव इससे भी अधिक सख्या चिड़ियो पर मिलने वाले परजीवियो की होती है ।

2. जीवभार का पिरामिड –

पारिस्थितिक तत्र मे जीवो का इकाई क्षेत्र (Unit area) मे सम्पूर्ण शुष्क भार (Dry weight) जीव-भार (Biomass) कहलाता है । किसी भी पारिस्थितिक तत्र के भोजन श्रृखला मे प्रत्येक भोजन स्तर के जीवो के पारिस्थितिक सम्बन्ध जीव भार पिरामिड द्वारा

भी दर्शाये जा सकते है । प्रत्येक पोषण स्तर (Trophic level) पर उपस्थित जीवो के जीव भार की यदि गणना की जाये तो प्राय: स्थलीय पारिस्थितिक तत्र के उत्पादक स्तर का जीव भार सबसे अधिक होता है और उच्चतम उपभोक्ता तक प्रत्येक स्तर पर क्रमश यह कम होता जाता है अत: यह पिरामिड सीधे होते है । एक वृक्ष पारिस्थितिक तत्र का पिरामिड जीव-सख्या के आधार पर उल्टा बनता है वह जीव-भार के आधार सीधा होता है किन्तु जलीय पारिस्थितिक तत्र मे जीव भार पिरामिड प्राय. उल्टा बनता है । इसका कारण है कि इस पारिस्थितिक तत्र मे उत्पादको जैसे शैवाल, पादप-प्लवक आदि की सख्या तो बहुत अधिक होती है परन्तु जीव भार बहुत कम होता है । इस पारिस्थितिक तत्र मे जीव भार प्रथम, द्वितीय, तृतीय अथवा उच्चतम उपभोक्ताओं तक क्रमश: बढ़ता है ।
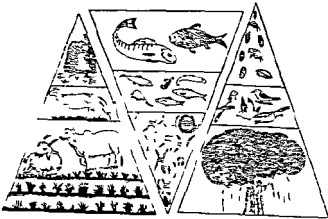
चित्र 4.11 : जीवभार के पिरामिड – बायाँ–घास स्थलीय तंत्र में सीधा पिरामिड, मध्य–जलीय पारिस्थितिक तंत्र में उल्टा पिरामिड तथा दायाँ–वृक्ष पारिस्थितिक तंत्र में सीधा पिरामिड

3. ऊर्जा पिरामिड –

इस प्रकार के पिरामिड से भोजन श्रृखला के प्रत्येक पोषण स्तर मे कुल उपलब्ध ऊर्जा का ज्ञान होता है । इसी अध्याय मे हम पढ़ चुके है कि ऊर्जा एक पोषण स्तर या ऊर्जा स्तर से दूसरे मे जाने पर कम होती जाती है क्योंकि वृद्धि एव स्वांगीकरण की क्रियाऐं शत-प्रतिशत दक्ष नही होती । किसी एक ऊर्जा स्तर पर सचित ऊर्जा का लगभग दस प्रतिशत ही दूसरे स्तर मे जीव भार के रूप मे रूपान्तरित होता है । अत उत्पादको

से ऊर्जा क्रमश कम होकर उच्चतम उपभोक्ताओं मे सबसे कम हो जाती है। फलस्वरूप ऊर्जा के आधार पर चित्रण किये जाने पर पिरामिड सदैव सीधे बनते है। इस प्रकार के पिरामिड बनाने मे समय तथा क्षेत्र अधिक महत्वपूर्ण है। एक इकाई समय क्षेत्र (प्राय प्रति वर्ग मीटर प्रति वर्ष) के आधार पर ही इस प्रकार का पिरामिड बनाया जाता है।

चित्र 4 12 ऊर्जा का पिरामिड

अध्याय : 5
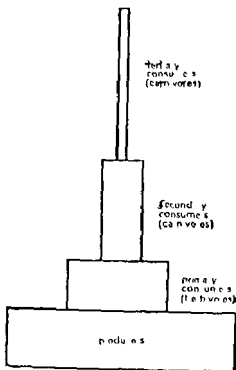
पर्यावरणीय प्रदूषण

(Environmental Pollution)

मानव अपनी दैनिक गतिविधियो द्वारा वातावरण को कई आयामो से रूपान्तरित करता रहा है। वातावरण मे किये गये परिवर्तन उसकी आवश्यकताओं, ज्ञान और मूल्य के परिणाम है। औद्योगिक क्रान्ति, बढ़ती जनसख्या, अविवेकपूर्ण आर्थिक नीतियाँ, नगरीकरण आदि इन परिवर्तनो की गति को और बढ़ावा दे रहे है। स्वाभाविक ही है कि आधुनिक भोग सस्कृति बनाम प्रौद्योगिक सस्कृति (Techno culture) हमारे विनाश का मार्ग प्रशस्त कर रही है। हमारा जैव मण्डल (Biosphere) अब मात्र प्रौद्यिगिक मण्डल (Technosphere) रह गया है।

पर्यावरणीय प्रदूषण की विस्तृत विवेचना करने से पूर्व हमे पारिस्थितिकी के एक सामान्य सिद्धान्त को अन्तरतम से आत्मसात करना चाहिए। पर्यावरण की सकल्पना वास्तव मे सम्पूर्णता की सकल्पना है अर्थात् पर्यावरण अपने आप मे एक इकाई है जो किसी भी घटक के प्रभावित होने पर अप्रभावित नही रह सकती। इसे ही पर्यावरण की सकलता (Holistic concept of environment) का सिद्धान्त कहा जाता है। वस्तुत पारिस्थितिकी तत्र मे सभी घटक तथा कारक अन्योन्याश्रित रहते हुए एक निश्चित सतुलन प्रक्रिया मे बधे होते है। इसमे न्युनतम विक्षोम होने की दिशा मे पर्यावरण समास्थिति (Homeostasis) द्वारा नई सन्तुलन अवस्था कायम कर तत्र को एक सीमा तक बचा लिया जाता है। इसी तरह पर्यावरण अर्थात् प्रकृति की विभिन्न सामान्य प्रक्रियाऐं मानव की प्रतिक्रियाओं की एक निश्चित सीमा को ही सहन कर सकती है। इसे पर्यावरण की धारण क्षमता (carrying capacity) कहा जाता है। वास्तव मे प्रदूषण की वर्तमान विकराल समस्या मुख्य रूप से इन दोनो ही अहम सिद्धान्तो की अवमानना का अहितकारी परिणाम है। प्रदूषण तत्वो की एक निश्चित सीमा मे उपस्थिति प्रकृति की सामान्य क्रिया प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अग है जिससे तत्वो का जैव भौम परिसचरण (Bio-geo-chemical cycle) सभव होता है। कार्बन डाई आक्साइड गैस को प्रदूषक भी कहा जा सकता है परन्तु प्रकाश सश्लेषण की क्रिया के लिये यह एक आवश्यक घटक है तथा श्वसन के दौरान उत्पन्न होती है। इसकी अधिकता मनुष्य सहित सभी जीवो के लिये हानिकारक होती है। इस तरह एक तरफ इसका नियत्रित परिसचरण पारिस्थितिक तत्र को स्थायीत्व प्रदान करता है तो अनियत्रित होने पर यह विध्वसकारी भी हो सकती है अत प्रदूषक तत्व प्रकृति मे सदैव ही उपस्थित रहे है जो प्रकृति मे स्वजनित अन्तर्कियाओं द्वारा आत्मसात कर लिये जाते है परन्तु मानव जनित प्रदूषको ने पर्यावरण की प्रकृति को ही परिवर्तित करने की कोशिश मे प्रदूषण की समस्या उत्पन्न की है। पर्यावरण विनाश का कारण तीव्र औद्यौगिकरण, नगरीकरण, ऊर्जा और कच्चे माल के पारम्परिक साधनो की कमी, जनसख्या मे अनवरत वृद्धि, प्राकृतिक सतुलनो (*जैवमण्डल की स्वनियमन की आन्तरिक क्रिया विधि*) के विघटन, विभिन्न प्राणियो व पेड़ पौधो के पोषण साधनो का विनाश और आद्यौगिक तथा अन्य प्रदूषको के उन नकारात्मक परिणामो को बताया जा सकता है जिनमे मनुष्य के आनुवशिक अपविकास का खतरा भी सम्मिलित है।

प्रदूषण की परिभाषा :--

वैसे तो प्रदूषण की कोई सर्वमान्य परिभाषा सभव नही है क्योंकि एक स्थान का प्रदूषक (प्रदूषण का कारक) अन्य स्थान पर प्रदूषक तत्व नही भी हो सकता है। अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (1960) के अनुसार प्रदूषण वायु, जल तथा भूमि के भौतिक (Physical), रासायनिक (Chemical), जैविक (Biological) गुणो मे होने वाला अनावश्यक परिवर्तन है जिनके कारण मानव तथा अन्य जीवो, औद्योगिक विकास प्रक्रियाओ, सास्कृतिक मूल्यो, जीवन की बेहतर दशाओं तथा प्राकृतिक ससाधनो पर हानिकारक प्रभाव पड़ रहा हो या पड़ने की सभावना हो। अन्य परिभाषाओं के अनुसार प्रदूषण मनुष्य की आवश्यक गतिविधियो का अनावश्यक परिणाम है। दूसरे शब्दो मे प्रदूषक वे सभी पदार्थ और ऊर्जा है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मनुष्य के स्वास्थ्य और प्राकृतिक ससाधनो पर हानिकारक प्रभाव डालते है। अत प्रदूषक वह कोई भी पदार्थ है जो अनुचित स्थान पर, अनुचित समय पर, अनुचित मात्रा मे पाया जाता है। उक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि प्रदूषको की उत्पत्ति मनुष्य की क्रियाओं से होती है। मानव की वाछित गतिविधियो के फलस्वरूप निर्मित वस्तुओं का उपयोग के बाद अपशिष्ट पदार्थों के रूप मे त्याग देने या फैक देने की प्रवृति इस समस्या के मूल मे है।

प्रदूषकों का वर्गीकरण :--

प्रदूषण उत्पन्न करने वाले कारक पदार्थों को प्रदूषक (Pollutants) कहा जाता है। प्रदूषक तत्वो को कई तरह से वर्गीकृत किया जाता है। प्रदूषको की प्रकृति के अनुसार इन्हे एकत्रित पदार्थों जैसे गैसे, ठोस, कृषि प्रदूषक, विकीरण प्रदूषक, तेल प्रदूषण, ताप, ध्वनि आदि प्रकारो मे विभक्त किया जा सकता है। पारिस्थितिकी तत्र मे स्थिति के आधार पर ओडम (1971) ने प्रदूषक तत्वो को दो वर्गों मे विभाजित किया है।

1. जैव विघटनीय प्रदूषक (Bio-degradable pollutants) : वे प्रदूषक तत्व जो सामान्य जैविक क्रियाओं द्वारा आसानी से विघटित होकर सरल तत्वो मे परिवर्तित होकर जैव-भौम परिसचरण (Bio-geo-chemical cycle) पथ मे सम्मिलित हो जाते है। ये पदार्थ तभी प्रदूषक होते है जब इनकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि ये उचित समय पर विघटित नही हो पाते है। इस श्रेणी मे मलमूत्र, विष्ठा, घरेलू अपशिष्ट पदार्थ सम्मिलित है।

2. अविघटनीय प्रदूषक (Non degradable pollutants) : वे प्रदूषक पदार्थ जिनका विघटन सभव नही होता या आसानी से विघटित नही होते तथा इनका पर्यावरण मे सग्रहण होकर खाद्य श्रृखला मे प्रविष्ट होकर भयकर प्रदूषण का कारण बनते है जैसे – अधिकाश कीटनाशी, एल्यूमीनियम, प्लास्टिक, मर्क्युरस लवण, पारा, लैड, आर्सेनिक आदि।

प्रदूषण के प्रकार :--

प्रदूषण को क्षेत्रो के आधार पर निम्न प्ररुपो मे विभक्त किया जाता है।

1. वायु प्रदूषण (Air pollution)
2. जल प्रदूषण (Water pollution)

3 मृदा प्रदूषण (Soil pollution)
4 ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution)
5 उष्मा प्रदूषण (Thermal pollution)
6 ठोस अपशिष्ट प्रदूषण (Solid waste pollution)
7 रेडियो धर्मी प्रदूषण (Radioactive pollution)

वायु प्रदूषण (Air pollution)

पृथ्वी के चारो और फैले वायुमण्डल मे मुख्यत लगभग 78% नाइट्रोजन, 21% आक्सीजन, 0 32% कार्बन डाई ऑक्साइड, 0 034% आर्गन तथा शेष मे हाइड्रोजन, हिलियम, नियोन, क्रिप्टान, जिनॉन तथा जल वाष्प होते है । इनमे नाइट्रोजन, नियोन, हिलियम, आर्गन, क्रिप्टान और जिनॉन निष्क्रिय (Inert) तथा अविषाक्त गैसे है। वायुमण्डलीय आवरण सूर्य तथा अन्य अतरिक्ष पिण्डो से आने वाली हानिकारक किरणो पर नियत्रण रखता है । वायुमण्डल के अभाव मे जीवन के लिये परमावश्यक अनेक जलवायवीय क्रियाऐं सभव नही हो सकती जैसे वर्षा का होना, हवा का बहना, बर्फ का गिरना, इत्यादि । जहा समताप मण्डल (Stratosphere) मे फैली ओजोन हमारी त्वचा की कोशिकाओं को नुकसान पहुँचाने वाली परा बैगनी किरणो (Ultra violet radiation) को अवशोषित कर लेती है वही क्षोभमण्डल (Troposhere) मे फैली कार्बन डाई आक्साइड दृश्य प्रकाश को तो पृथ्वी पर आने देती है परन्तु उष्णीय अवरक्त किरणो को अवशोषित कर हरित ग्रह प्रभाव (Green house effect) पैदा करती है । दैनिक जीवन मे जीवाश्म ईधन (Fossil fuel) के जलाने से सल्फर डाइ आक्साइड और नाइट्रोजन ऑक्साइड की मात्रा बढ़ती है जो वातावरण की नमी के सम्पर्क मे आकर क्रमश सल्फ्यूरिक अम्ल तथा नाइट्रिक अम्ल मे परिवर्तित होकर अम्लीय वर्षा (Acid rains) का कारण बनती है । वायुमण्डल मे इन गैसो की मात्रा लगभग निश्चित रहती है। नाइट्रोजन, आक्सीजन व कार्बन डाई आक्सॉइड की मात्रा इतनी अधिक है कि जीवो के लिये इसकी कमी मालुम नही होती साथ ही इनकी मात्रा मे होने वाले थोड़े बहुत परिवर्तनो का भी कोई विशेष प्रभाव नही होता सुविधा के लिये वायु प्रदूषको को दो भागो मे विभक्त किया जाता है ।

(1) गैसीय प्रदूषक (Gaseous pollutant)
(2) कणयुक्त प्रदूषक (Particulate pollutants)

(1) जहरीली गैसे :--

यद्यपि अधिकाश वायु प्रदूषण मानव जनित होता है तथापि न्युन मात्रा मे प्राकृतिक कारणो से भी वायु प्रदूषण होता है। श्वसन, अपघटन, आधी, तूफान के कारण उड़ती धूल, वनो मे लगी आग से उत्पन्न धुआ, कोहरे, और सक्रिय ज्वालामुखियो से उत्पन्न गैसो के अतिरिक्त हानिकारक गैसो की सर्वाधिक मात्रा मनुष्य की गतिविधियो से उत्पन्न होती है। इनमे जीवाश्म ईधन, खनिज तेल और कार्बनिक पदार्थों के ज्वलन का सर्वाधिक योगदान रहता है। अनुमान है कि विभिन्न ईधनो के जलने से प्रतिवर्ष $3 0 \times 10^8$ टन कार्बन मोनो आक्साइड (CO), $7 9 \times 10^7$ टन SO_2, $2 5 \times 10^7$ टन धुँआ और $9 3 \times 10^9$ टन CO_2 उत्पन्न होते है। एक अनुमान

के अनुसार केवल दिल्ली मे ही लगभग दस लाख वाहनो से प्रतिदिन 170 टन हाइड्रोकार्बन, 80 टन नाइट्रोजन आक्साइड और 2 टन सल्फर डाइ आक्साइड वायुमण्डल मे छोडी जाती है जो सास के साथ ही शरीर मे प्रवेश कर जाती है। अकेले लदन के हीथरो हवाई अड्डे पर वायुयानो के आवागमन से प्रतिवर्ष 10,000 टन CO, 4000 टन हाइड्रोकार्बन, 400 टन नाइट्रोजन के आक्साइड और 100 टन महीन कण वायु मे मिलते है। बम्बई मे रोज लगभग 1500 से 2000 टन प्रदूषित तत्व वायुमण्डल मे छोडे जाते है। मथुरा स्थित तेल शोधक कारखाने से निकलने वाली दूषित वायु से विश्व प्रसिद्ध ताजमहल का रग भी पीला पडता जा रहा है तो भरतपुर स्थित विश्व प्रसिद्ध घना पक्षी विहार भी इससे अछुता नही है। कुछ मुख्य प्रदूषक गैसो का यहाँ अलग से विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(i) सल्फर डाइ आक्साइड और हाइड्रोजन सल्फाइड : --

सल्फर डाइ आक्साइड मुख्यत. उन्नीसवी शताब्दी की औद्योगिक क्राति की देन है। जो ज्वालामुखी के अतिरिक्त खानो से निकले हुए सीसे, जस्ते, लोहे तथा निकल की कच्ची धातुओं को कारखानो मे पिघलाने की क्रिया के दौरान आक्सीकरण के फलस्वरुप उत्पन्न होती है। साथ ही साथ कोयले और पेट्रोलियम के जलने से तथा पेट्रोलियम की शुद्धि पर भी इस गैस का प्रचुर मात्रा मे उत्पादन होता है। यह एक रगहीन तीव्र गध वाली गैस है। प्रथमत यह गैस हाइड्रोजन सल्फाईड (H_2S) के रूप मे निकलती है जो वायुमण्डल मे क्रिया करके SO_2 बन जाती है। यह गैस जलाशयो द्वारा अवशोषित कर ली जाती है तथा वर्षा के जल के साथ यह मृदा मे भी प्रवेश कर जाती है। कुछ गैस जिसका अवशोषण नही हो पाता वह वायुमण्डल मे आक्सीकृत होकर कम विषाक्त SO_3 का निर्माण कर अन्त मे गधक के अम्ल (H_2SO_4) मे परिवर्तित हो जाती है। 5 ppm सान्द्रता होने पर SO_2 से दम घुटने लग जाता है तथा मृत्यु की सभावना रहती है। कोहरे तथा नमीयुक्त हवा मे यह गैस गधक के अम्ल मे परिवर्तित होकर और अधिक घातक हो जाती है। वायुमण्डल मे इसकी अधिकता पेट्रोलियम शोधक तथा धातु द्रावक कारखानो तथा क्राफ्ट पेपर सयत्र के आसपास के वायुमण्डल मे व्याप्त रहती है।

SO_2 की अधिकता से पौधो मे हरित हीनता (Chlorosis) रोग उत्पन्न हो जाता है जिससे प्रकाश सश्लेषण प्रभावित होता है। SO_2 की 0 1 ppm सान्द्रता भी कपास, सेब, जौ, गेहू, एल्फा-एल्फा मे कुप्रभाव उत्पन्न कर देती है तथा 0 3 ppm की सान्द्रता शकुधारी पादपो को पर्याप्त हानि पहुचाती है। ब्रायोफाइटा समूह के पौधे इस गैस के प्रति अत्यधिक सवेदनशील है तथा इन्हे इस गैस का प्रदूषक सूचक (Pollution indicator) माना जाता है। लाईकेन भी SO_2 प्रदूषक के सूचक है।

हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) गैस गदी नालिओं व एकत्रित गदे जल, मृत्यु उपरान्त शरीरो के सडने, ज्वालानुखी गैसो, दलदली स्थलो, गधकयुक्त झरनो से निकलती है। इसकी कम सान्द्रता पर ही सिर दर्द, जी मचलाना, मूर्च्छा आने जैसे रोग हो जाते है। अधिक समय तक अनावरण (Exposure) के उपरान्त मृत्यु की सभावना रहती है। अधिक सान्द्रता से श्वसन सस्थान अत्यधिक प्रभावित होकर मृत्यु का कारण बनती है।

(ii) **हाइड्रोजन फ्लोराइड्स् (Hydrogen fluroides)** -- ये गैसीय पदार्थ एल्यूमिनियम, स्टील के कारखानो से सर्वाधिक मात्रा मे प्राप्त होते है । इसके अतिरिक्त अनेक उद्योग-धन्धो जैसे फास्फेट ऊर्वरक कारखाने, चीनी मिट्टी के कारखाने, ईंट भट्टे आदि से भी यह गैस निकलती है । पौधो पर इसका प्रभाव सर्वप्रथम पत्तियो के किनारो तथा शीर्ष पर हरित हीनता तथा ऊत्तको के विघटन (nacrosis) के रूप मे होती है जिससे उत्पादकता प्रभावित होती है । पत्तियो पर जलने के चिन्ह बन जाते है । भोजन के साथ शरीर मे पहुचने पर यह विष का कार्य करते है । घास के साथ पशुओं मे पहुचने पर यह अत्यन्त घातक सिद्ध होते है । लाइकेन फ्लोराइड के प्रति विशेष सवेदनशील होते है । कपास, टमाटर, निम्बू, प्याज आदि फ्लोराइड विषाक्तता के प्रतिरोधी होते है ।
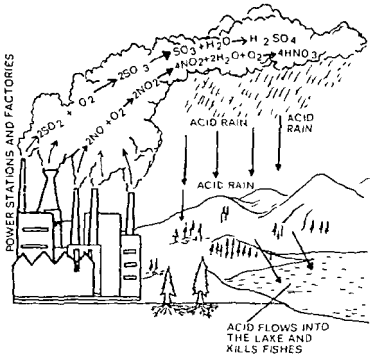
चित्र 5.1 : फैक्ट्रीयों से वायु प्रदूषण के फलस्वरूप अम्लीय वर्षा

(iii) **नाइट्रोजन के आक्साइड** : -- विभिन्न नाइट्रोजन युक्त आक्साइडो (N_2O, NO, NO_2, N_2O_3 और N_2O_5) मे नाईट्रस आक्साइड (N_2O), नाईट्रिक आक्साइड

(NO) व नाईट्रोजन डाइ आक्साइड (NO_2) प्रमुख है। रंगहीन NO गैस गैसोलीन *(Gasoline) के उच्च ताप पर मोटर वाहनों में दहन के कारण निर्गत (exhaust) ताप* पर मोटर वाहनों में दहन के कारण निर्वात (exhaust) पाइप से धुऐं के रूप में तथा नाइट्रिक अम्ल के उत्पादक कारखानों में वातावरण में प्रवेश कर रसायनिक क्रिया द्वारा अन्तत NO_2, ओजोन (O_3), तथा अत्यन्त विषाक्त परआक्सीएसीटाइल नाइट्रेट (PAN) ($CH_3\overset{O}{\overset{\|}{C}}OONO_3$) का निर्माण करती है। नाइट्रोजन के आक्साइडों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रदूषक प्रभाव धूम-कोह (smog) के रूप में होता है स्मोग शब्द स्मोक (smoke) धुआं तथा फोग (fog कोहरे) के मिलाने से बना है अर्थात् smog (smoke + fog) या धूम-कोह मे जलवाष्प और धूल के कण वायु में स्थिर होकर घना आवरण बना देते है। कल कारखानों की चिमनियों से विमुक्त धुआ हवाई जहाजों के निर्वात से निकलने वाला धुआ तथा स्वचालित वाहन मे निकलने वाले हाइड्रोजन और नाइट्रोजन आक्साइड सूर्य के प्रकाश मे क्रिया करके नवीन विषैले तत्वों का निर्माण करते है जो वायुमण्डल मे तैरते रहते है। इस क्रिया को प्रकाश-रासायनिक धूम-कोह (photochemical smog) कहते है।

$$\text{हाइड्रोजन+नाइट्रोजन आक्साइड} \xrightarrow[\text{परा बैगनी किरणें}]{\text{सूर्य का प्रकाश}} \text{पर आक्सी एसीटाइल नाइट्रेट} + O_3$$

इसके अतिरिक्त अन्य यौगिक पर-आक्सी प्रोपिओनाइल नाइट्रेट (PPN), पर आक्सी ब्युटीराइल नाइट्रेट (PBN) का निर्माण भी पाया गया है। ये सभी यौगिक वायुमण्डल के ऊपरी स्तरो मे बनते है परन्तु तापमान प्रत्यावर्तन के कारण भूमि के नीचले स्तरो मे पहुच जाते है। कम तापमान वाले प्रदेशो मे यह धूम कोह कई दिनो तक लगातार बना रहता है। जिससे जीवन की भारी हानि होती है। 1952 मे लन्दन धूम कोह के कारण लगभग 12000 व्यक्तियो की मृत्यु हो गई थी। तीव्र औद्योगीकरण के कारण ठण्डे प्रदेशो मे स्मोग की घटनाओं मे अत्यधिक वृद्धि हुई है। PAN के कारण मानव मे श्वास तथा आँखो सबंधी रोग उत्पन्न हो जाते है। PAN 0.01 ppm मे ही पौधो मे श्वसन दर बढ़ जाने तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया मन्द हो जाने से पौधो की मृत्यु भी हो जाती है। नाइट्रोजन डाइ आक्साइड की अधिकता के कारण फेफड़ो मे पानी भर जाता है इसे इडेमा (Edema) रोग कहते हैं। जिससे मृत्यु की संभावना बन जाती है। इस गैस की उपस्थिति मे पत्तियाँ नष्ट हो जाती है तथा पौधो की वृद्धि रुक जाती है।

(iv) **ओजोन :** पृथ्वी के ऊपरी वातावरण मे स्थित ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली घातक पैरा बैगनी किरणों को रोक कर जैवमण्डल को सुरक्षा कवच प्रदान करती है। धरती की इस रक्षा छतरी को बढ़ते CO_2 और क्लोरोफ्लोरो कार्बन (CFC) तथा धान के खेतो से निकली मीथेन (CH_4) से भारी क्षति पहुँच रही है। पृथ्वी के धरातल पर ओजोन प्राय अनुपस्थित ही रहती है। 0.2 ppm तक की O_3 सान्द्रता अपनी आक्सीकारक प्रभाव से तम्बाकू, टमाटर, सेब, चीड़ आदि पौधो की पत्तियो को नष्ट करके पादप वृद्धि को प्रभावित करती है। इससे वस्त्रो का रंग उड़ जाता है। रबड़ की वस्तुएँ कड़ी होकर

चटक जाती है । 1 0 ppm की सान्द्रता मनुष्य की श्लेष्मिक झिल्लीयो को प्रतिकूल रूप मे प्रभावित करती है ।

(v) कार्बन मोनो आक्साइड : CO की सर्वाधिक मात्रा स्वचालित मोटर वाहनो मे तेल के जलने से प्राप्त होती है । इसके अतिरिक्त कुछ उद्योग के कारखानो, तेल शोधक कारखानो तथा गर्म मृदा से उत्पन्न होती है । सामान्यत: यह गैस आक्सीजन से सयोग कर अपेक्षाकृत कम विषाक्त CO_2 बना देती है । वायु मे इस गैस की सान्द्रता 0 1 ppm होती है । परन्तु मोटर वाहनो से इसकी सान्द्रता 100 से 300 ppm तक पहुँच जाती है । यह मनुष्य के रक्त के हिमोग्लोबिन के साथ क्रिया कर कारबोक्सी हिमोग्लोबिन बना देती है । जिससे रक्त की आक्सीजन वहन क्षमता कम हो जाती है । इसे हाईपोक्सिया (Hypoxia) कहा जाता है । इस के कारण घुटन बढ़ जाने मे मृत्यु हो सकती है । 100 ppm साद्रता होने पर 1 घटे मे ही सिरदर्द, चक्कर और घबराहट होने लगती है । 800 से 1000 ppm साद्रता होने पर कुछ ही क्षणो मे मृत्यु हो जाती है । CO को श्वास के साथ लेते रहने से श्रवण तथा दृष्टि शक्ति पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है । पौधो पर इसकी अधिक सान्द्रता से पत्तियाँ छोटी हो जाती है । परिपक्व होने से पूर्व ही जीर्णता आ जाती है ।

(vi) कार्बन डाइ आक्साइड : पेट्रोलियम तथा ईंधन के जलने एव जीवो की श्वसन क्रियाओं और अन्य विविध क्रियाओं के परिणामस्वरूप वातावरण मे CO_2 गैस मुक्त होती है । सामान्य परिस्थितियो मे पेड-पौधे इसे लेकर आक्सीजन छोड़ते है । हालाकि वायुमण्डल मे इसका अश मात्र 0 03% ही है मगर इसके बिना हमारी धरती भी चन्द्रमा की तरह ठडी हो जायेगी लेकिन इसकी मात्रा बढ़ जाने पर वातावरण के अत्यधिक गर्म होने का अदेशा है । वायुमण्डल मे कार्बन की जितनी मात्रा है उससे तीन गुणा अधिक मात्रा पृथ्वी पर पेड-पौधो व जमीन मे संग्रहीत है । ऐसा अनुमान है कि वनस्पति जगत लगभग 2 खरब टन कार्बन सग्रहीत किये हुए है जबकि जमीन मे कार्बन की मात्रा वनस्पति से दुगनी है । इस कार्बन की मात्रा मे थोडे से भी परिवर्तन का असर वायुमण्डल मे पायी जाने वाली CO_2 पर पडता है । औद्योगीकरण के कारण पिछले 100 वर्षों मे इसकी मात्रा मे 26% की वृद्धि हुई है । जिससे विगत 50 वर्षों मे पृथ्वी के औसत तापमान मे 10°C की वृद्धि हो चुकी है । सयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के अनुसार सन् 2100 तक पृथ्वी का औसत तापमान 3°C से 5°C तक बढ़ जाने की सभावना है । यह बढ़ा तापमान पिछले एक लाख वर्षों मे बढ़े तापमान से कही अधिक होगा । जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के जलवायु मे परिवर्तन होगे और समुद्र का जल स्तर बढ़ेगा । अनुमान है कि बगलादेश में 13 से 209 से० मी० जल स्तर बढ़ेगा और 34% भूमि जलमग्न हो जायेगी । जिन द्विपो का धरातल बगला देश से नीचा है वो भी जलमग्न हो सकते है । वस्तुत: CO_2 वायुमण्डल को हरित गृह मे बदल रही है । वैज्ञानिको का मानना है कि हरित गृह प्रभाव और ओजोन परत को क्षति पहुँचाने वाली गैसो की चौकड़ी (मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन तथा कार्बन डाई आक्साइड) मे मुख्य दोषी कार्बन डाई आक्साइड ही है । इसके बढ़ते सकेन्द्रण के कारण वायुमण्डल गरमाने लगा है । जहाँ 1905 मे CO_2 की वायुमण्डल मे मात्रा 288 ppm (भाग दस लाख आयतन) थी, 1968 मे यह बढ़कर 320 ppm हो गई । यह गैस वातावरण मे एक चादर सी तान देती है जिससे सौर ऊर्जा

पृथ्वी से टकराकर परावर्तित होने के बाद कैद हो जाती है तथा वायुमण्डल का तापमान बढ़ने लगता है जिससे सभी जीव प्रभावित होते है।

(vii) ईथाईलीन (Ethylene) : स्वचालित मोटर वाहनो के निर्वात से तथा जीवाश्म ईधन के अपूर्ण दहन से निकलने वाली इस गैस की अधिकता से श्वसन दर बढ़ जाती है तथा पादप अगो मे पूर्ण जीर्णता (Senescence) तथा विलगन (Abscission) का निर्माण होता है। यह गैस ऑरकिड, कपास, फलदार पौधो तथा ग्रीन हाउस फसलो के लिये अत्यन्त हानिकारक है।

(viii) अमोनिया : शीत सग्रह (cold storage) के रेफ्रिजरेटरो, अमोनियम उर्वरक तथा नाइट्रिक एसीड के निर्माण मे इसका प्रमुखत: उत्पादन होता है। इसकी उपस्थिति मे पत्तियो व फूलो का रग उड़ जाता है। जड़ तथा तने की वृद्धि रूक जाती है। फल समय पूर्व पक जाते है। बीज अकुरण कम हो जाता है, सेब की फसल अत्याधिक प्रभावित होती है।

2. कण युक्त पदार्थ :--

उपर्युक्त गैसीय वायु प्रदूषको के अतिरिक्त विभिन्न आकार के कण भी वायु मे तैरते रहते है। इनमे पराग कण, खनिज कणो के अतिरिक्त कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थ भी होते है। अत्यधिक ज्वलन के कारण कार्बन के सुक्ष्म कण, खदानो, पहाड़ो मे पत्थर की खुदाई, कटाई, घिसाई, आधी तुफान, लकड़ी उद्योग मे उत्पन्न बुरादे, गुजरात, पजाब, महाराष्ट्र के वस्त्र उद्योग मे उत्पन्न धूल और कई महीन 2 कण वायुमण्डल मे लगातार पहुँचते रहते है। इन कणो मे 3 $m\mu$ से बडे आकार के कण श्वास नलिका के रोगो द्वारा फेफड़ो मे जाने से रोक लिये जाते है लेकिन पत्थर की खदानो तथा धूल भरे वातावरण मे करने वाले श्रमिको के फेफड़ो मे कई ग्राम कण प्रतिवर्ष श्वास के जरिये पहुँच कर कुपिकाओ (alveoli) मे सूजन व घाव उत्पन्न कर देती है जिससे आक्सीजन का परासरण प्रभावित होता है तथा यक्ष्मा (TB) जैसे रोगो का जन्म होता है। परागकणो, सिमेन्ट की अन्य धूलकण व धूल आदि का सामान्य प्रभाव एलर्जी उत्पन्न करता है जिसमे सामान्यतया बचाव ही उपयोगी होता है। वातावरण मे धूल के छितरा जाने तथा पत्तियो पर जमा हो जाने से प्रकाश सश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है। शीतोष्ण क्षेत्रो मे कोहरे का निर्माण होकर प्रकाश की उपलब्धता कम हो जाती है। सिलिका (पत्थर खदान, ईट भट्ठा उद्योग) कपास (वस्त्र उद्योग), एस्बेस्टस, लोहा, कोयला, गन्ना, जूट आदि के उद्योगो मे कार्यरत मजदूरो मे सामान्यतया क्रमश: सिलिकोसिस, बाईसिनोसस (Byssinousus), एस्बेस्टोसिस, सिडेरोसिस, एन्थ्रेकनोसिस, बेगेसोसिस, न्यूमोकोनियोसिस तथा ब्रोकाइटिस (Bronchoitis) आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। इन कणो के अलावा रोगाणुनाशक (Pesticide), शाकनाशक (Herbicide) तथा कीट नाशक (Insecticide) रसायनो, आर्सेनिक, सीसा, केडमियम, पारा, निकल आदि के कण भी वायु मे उपस्थित रहते है। केडमियम की 1 ppm से भी कम मात्रा मछलियो के लिए घातक है। इस की सुक्ष्म मात्रा भी मनुष्य के यकृत, वृक्क, हृदय, मूत्रनलिकाओं तथा रक्त सचार पर घातक प्रभाव डालती है। पारा मानव शरीर मे खाद्य श्रृखला के माध्यम से पहुँचता है। इस का प्रभाव स्नायु तत्र (Nervous system) पर होता है। पक्षियो मे इसका प्रभाव प्रजनन पर होता है। इसकी अधिकता के कारण

वशानुगत रोग हो जाते है। जापान में मिनामाता रोग इसका उदाहरण है। सीसे का प्रमुख स्रोत स्वचालित वाहनो में पेट्रोल का ज्वलन, बैटरियाँ, पेन्ट, मुद्रण यत्र आदि है। इसका मुख्य प्रभाव रक्त मे हिमोग्लोबिन सश्लेषण तथा एन्जाइमो तथा गुर्दे पर होता है। बेन्जोपाइरीन नामक विषाक्त कार्सीनोजीनस पदार्थ की उत्पत्ति मोटर गाडियो के निर्वात पम्प से निकलने वाली गैसो, तम्बाकू के धुए तथा औद्योगिक सयत्रो से होती है। मैक्सिको शहर मे श्वास लेना ही दो पैकेट सिगरेट प्रतिदिन पीने के बराबर है। देहरादून के पेट्रोलियम सस्थान के अनुसार वाहनो द्वारा प्रदूषण इसी गति से होता रहा तो 1991-92 मे मुम्बई के मोटर वाहन लगभग 1,07,000 टन CO, 37,000 टन हाइड्रोकार्बन प्रतिवर्ष वातावरण मे छोडेगे तथा सन् 2000 तक यह मात्रा 1,85,000 टन CO तथा 69,300 टन हाइड्रोकार्बन हो जायेगी।

(तालिका 1)

	मुख्य वायु प्रदूषक	कुछ सभावित रोग	प्रमुख उद्योग
1	धुए एव धुल के कण	खासी, दमा, तपेदिक इफ्फइमा	खनिज एव पेट्रोलियम ईंधन, खनन एवं धातुकर्म क्रियाए, कोकओवन, होटमिक्स सयत्र, स्टील और फ्राउन्ड्रीज उद्योग, तापीय विद्युतघर
2	कार्बन मोनो आक्साइड	सिर दर्द, चक्कर, घुटन	खनिज एव पेट्रोलियम ईंधन, कोक ओवन, होटमिक्स सयत्र, स्टील और फ्राउन्ड्री उद्योग
3	सल्फर डाइ आक्साइड	फेफडे व आखो के रोग	कोयला और पेट्रोलियम ईंधन, गधक का तेजाब बनाने का सयत्र, तापीय विद्युतघर, पेपर तथा लुगदी उद्योग
4	नाइट्रोजन के आक्साइड	फेफडे व आखो के रोग	उच्च ताप पर आक्सीजन और नाइट्रोजन का दहन, खनिज एव पेट्रोलियम ईंधन
5	हाइड्रोजन	सास रोग	रेयन (कृत्रिम) उद्योग, पेपर तथा लुगदी उद्योग, पेट्रोलियम शोधन
6	हाइड्रोजन क्लोराइड	गुर्दा रोग	नमक का तेजाब बनाना, कास्टिक सोडा सयत्र
7	क्लोरीन	फेफडो के रोग	कास्टिक सोडा उद्योग, कीटनाशक उद्योग, पेपर एव लुगदी उद्योग
8	क्लोरीन व फ्लोराइड	फ्लोरोसिस दन्त रोग	रासायनिक उद्योग (फोस्फेटयुक्त रासायनिक उर्वरक)
9	हाइड्रोजन फ्लोराइड	दन्त रोग	इलेक्ट्रोप्लेटिंग

10	अमोनिया	श्वसन रोग	रासायनिक उद्योग (नाइट्रोजन युक्त रा० उर्वरक) पेट्रोलियम उद्योग एव शोधन
11	पोलीसाइक्लिक एरोमटिक	कैंसर,आनुवाशिक प्रभाव	वार्निश एव रग उद्योग, कार्बन ब्लैक, कचरा दहन, होटमिक्स सयत्र, रासायनिक उद्योग
12	हाइड्रोकार्बन (पी० ए० एच०)	धूम, धूध	एल्यमीनियम उद्योग, कोक ओवन
13	फार्मेल्डहाइड और स्टाइरीन	श्वसन रोग	मोटर वाहन
14	पोलीक्लोरीनेटीड	कैंसर, आनुवाशिक प्रभाव	कचरा दहन, खनिज व पेट्रोलियम ईंधन
15	सायनाइड	विषैला प्रभाव, चर्म रोग	रासायनिक उद्योग, इलेक्ट्रोप्लेटिंग, कीटनाशक उद्योग
16	फीनोल	श्वसन रोग	पेट्रोलियम, कोक ओवन और कोल कार्बोनाइजेशन, कीटनाशक एव रासायनिक उद्योग
17	कीटनाशकपदार्थ(डी० डी०टी०)बी०एच० सी०,मेलासियथान, पेराथियान,मिथाईल आइसोसायनेट(मिक) यारोविन,2 4-डी, फोरेट,ऐन्डोसल्फान आदि	चर्म रोग, फेफड़े, पेट और हृदय रोग, अनिन्द्रा	कीटनाशक उद्योग
18	भारी धातुए (लोहा, जस्ता, ताबा, सीसा, क्रोमियम, आर्सेनिक, केडमियम आदि	हृदय और मस्तिष्क गुर्दे के रोग, जोड़ो का दर्द, चर्म रोग	खनन एव धातुकर्म सक्रियाए, इलेक्ट्रोप्लेटिंग, तापीय विद्युत उत्पादन, दवाई उद्योग
19	सिलिका	सिलिकोसिस, तपेदिक, एस्बेस्टोसिस, कैंसर	स्टोन क्रशिंग, स्लेट एव पेन्सिल उद्योग, एस्बेस्टस उद्योग
20	एस्बेस्टस	"	"
21	जिक आक्साइड व ऐन्टीमनी	खराश, बेहोशी, उबकाई	दियासलाई उद्योग
22	मर्करी (पारा)	गुर्दे, हृदय तथा मस्तिष्क रोग	कास्टिक सोडा, रासायनिक दवाई उद्योग

जल प्रदूषण (Water polluation)

अमेरिका की जन स्वास्थ्य सेवा, पेयजल मानक (Drinking water standards) के अनुसार जल में किसी कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ का योग जो जल की भौतिक रासायनिक तथा जैविक गुणो को प्रभावित कर उसे उपयोग विशेष के लिये अनुपयुक्त बना दे, जल प्रदूषण कहलाता है। फ्रेक्स ई० मॉस (1964) के अनुसार जल के गुणो मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन जो उसकी हितकारी उपयोगिता को अहितकारी बना दे जल प्रदूषण कहा जाता है।

जल की जीवो व मनुष्य के लिए आवश्यकताओं के बारे मे कुछ कहना व्यर्थ ही है। सर्वविदित है कि जल जीवो का जीवन है। भारत की प्राचीन दार्शनिक परम्पराओं के अनुसार जिन पाँच मूल भूत तत्वो (पाँच तत्व - पृथ्वी, अग्नि, आकाश, वायु तथा जल) की परिकल्पना की गई हैं। उनमे जल भी एक है। इन महाभूतो का परस्पर गहरा सबन्ध प्राकृतिक साधनो और ऊर्जा के स्रोतो से है। जल पर्यावरण का प्रमुख घटक है और जलवायु का निर्धारक अग भी है। मनुष्य की जल पर निर्भरता अन्य सभी जीवो से कही अधिक है परन्तु यदि जल की उपलब्धता को देखे तो हमे ज्ञात होगा कि कुल पानी का 4% भाग ही पृथ्वी पर उपस्थित है शेष भाग समुद्रो मे है जो जन सामान्य के उपयोग का नही हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध जल का केवल 0.3% भाग ही साफ, शुद्ध तथा अलवणीय है। जिस पर सारी दुनिया निर्भर करती है। जल सर्वोत्तम विलायक है और गैसो की घुलनशीलता के कारण और अधिक महत्वपूर्ण है। इसके अलावा जल के अपने ताप सबन्धी कुछ विशेष गुण है जिसके कारण तापमान मे शीघ्र परिवर्तन नही आने देता जैसे अधिक विशिष्ट उष्मा, अधिक गुप्त उष्मा और 4°C पर सबसे अधिक घनत्व आदि।

तीव्र गति से बढ़ती जनसख्या तथा विकास की विभिन्न प्रक्रियाओं मे पानी की खपत लगातार बढ़ती जा रही है। परिणाम स्वरूप शुद्ध पानी कम होता जा रहा है। औद्योगिक देश विकासशील देशो की तुलना मे 20 गुना अधिक पानी खर्च करते है। आदि काल से मनुष्य अपने और पालतु पशुओं के अपशिष्ट पदार्थों को जल मे प्रवाहित करता रहा है जहाँ सूक्ष्म जीवो (जीवाणु, बाइरस आदि) और जल मे घुली ऑक्सीजन द्वारा उनका अपघटन होता रहा था। लेकिन जल मे ऑक्सीजन की विलेयता निश्चित मात्रा मे ही हो पाने के कारण जब रसायनो और कार्बनिक पदार्थों की अत्याधिक मात्रा जल मे डाली गई तो प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई। यहाँ हम प्रदूषण को अति का पर्याय भी कह सकते है। क्योकि जल मे उपस्थित CO_2, O_2 आदि गैसे बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु इनकी अधिकता या कमी पौधो, प्राणियो और मनुष्य सभी के लिए हानिकारक होती है। अधिक आक्सीजन की उपस्थिति से आक्सीकरण और धातुओं के आक्साइडो के बनने मे हानि होती है। अत: प्रदूषको की उपस्थिति सर्वथा नई नही है। केवल मनुष्य की जनसख्या वृद्धि, उसके परिणाम स्वरूप बढ़ती विविध गतिविधियो और पर्यावरण मे उत्पन्न विक्षोभ और औद्योगीकरण ने प्रदूषको की मात्रा और सख्या मे वृद्धि करके मनुष्य के स्वय के अस्तित्व के लिए समस्या उत्पन्न की है।

(तालिका 2)

क्र० स०	जल प्रदूषक	कुछ संभावित रोग	स्रोत
1.	घुलनशील व अघुलनशील अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ	पाचन-तंत्र विकार	लगभग सभी जल प्रयोग में लाने वाले उद्योग
2.	सोडियम व पोटाशियम	विषैले प्रभाव	कास्टिक सोडा उद्योग, चट्टानो का क्षरण
3	कैल्शियम व मैगनीशियम सल्फेट	आतो मे जलन	रासायनिक उर्वरक एव अन्य उद्योग, कीटनाशक उद्योग
4.	क्लोराइड	गुर्दे के रोग	कास्टिक सोडा उद्योग, वस्त्र उद्योग, रजक (ब्लीचिंग पाउडर) उद्योग, चमडा उद्योग
5	सल्फाइड	श्वसन रोग	पेट्रोलियम रसायन व शोधन, मयुक्त ऊनी मिल, कपड़ा उद्योग
6	फलोराईड	फ्लोरोसिस	फास्फेटयुक्त रासायनिक उर्वरक, धातुकर्म, इलेक्ट्रोप्लेटिंग कीटनाशक व दवाई उद्योग
7	फास्फेट	गुर्दे के रोग, भारीपन	फास्फेटयुक्त रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, पेट्रोकैमिकल्स, धातुकर्म, नाभीय विद्युत उत्पादन
8	अमोनिया	विषैले प्रभाव, श्वसन रोग	नाइट्रोजन्युक्त रासायनिक उर्वरक
9	नाइट्रेट, नाइट्राइट व नाइट्रोजन	बच्चो मे मीथेमोग्लोबिनेमिया, आतो के रोग	कोक ओवन, पेट्रोलियम, कीटनाशक रासायनिक उद्योग, इलेक्ट्रोप्लेटिंग
10	यूरिया	पेट विकार	यूरिया ऊर्वरक उद्योग
11	फीनोल	श्वसन रोग	कोक ओवन, पेट्रोलियम रसायन तथा शोधन ऊनी मिल, कीटनाशक उद्योग
12	क्लोरीन	विषैले प्रभाव, फेफड़ो के रोग	कास्टिक सोडा उद्योग, कीटनाशक तथा ब्लीचिंग पाउडर उद्योग, नाभीय विद्युत घर ।
13	तेल एव ग्रीस	पाचन तंत्र विकार	पेट्रोलियम उद्योग तथा शोधन, वस्त्र उद्योग, चमड़ा उद्योग,

			कीटनाशक रासायनिक उद्योग, तापीय विद्युतघर, दवाई उद्योग, खाद्य ससाधन व शीतल पेय उद्योग, वनस्पति घी उद्योग
14	सायनाइड	विषैले प्रभाव चर्म रोग	इलेक्ट्रोप्लेटिंग उद्योग, रासायनिक व कीटनाशक उद्योग, कोक ओवन सयुक्त रासायनिक ऊर्वरक उद्योग, पेट्रोलियम उद्योग
15	आर्सेनिक	जोड़ो के दर्द, गुर्दा व हृदय रोग	कीटनाशक व रसायन तथा दवाई उद्योग, नाइट्रोजनयुक्त रसायनिक ऊर्वरक उद्योग, पेट्रोरसायन उद्योग
16	पारा	हृदय, गुर्दे व तत्रिका के रोग	कास्टिक सोडा, कीटनाशक, पेट्रोरसायन
17	टिन व मेगनीज	भारीपन, गुर्दे के रोग	कीटनाशक उद्योग
18	कैडमियम, निकिल	जोड़ो के दर्द, गुर्दा व हृदय रोग	विद्युत लेपन (इलेक्ट्रोप्लेटिंग)
19	जस्ता	भारीपन, गुर्दे के रोग	विद्युत लेपन, कीटनाशक, तापीय विद्युतघर धातुकर्म क्रियाए।
20	ताबा	भारीपन	विद्युत लेपन कीटनाशक, धातुकर्म क्रियाए
21	क्रोमियम	क्रोम अल्सर	विद्युत लेपन तापीय विद्युतघर, उर्वरक मिल, नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक ऊर्वरक, चर्म उद्योग, पेट्रोरसायन
22	सीसा (लैड)	जोड़ो के दर्द, गुर्दा व हृदय रोग	विद्युत लेपन, पेट्रोरसायन, तापीय विद्युत उत्पादन
23	बोरोन	उदर विकार	चर्म उद्योग
24	लोहा	भारीपन, गुर्दे के रोग	धातुकर्म क्रियाए
25	टेनिन	चर्म रोग, पेट रोग	पत्थर व चर्म उद्योग
26	रग व रजक	चर्म रोग, पाचन तंत्र विकार	
27	कीटनाशक पदार्थ जैसे डी० डी० टी०, बी० एच० सी०, इन्डोसल्फोन, सॉविन (निक)	चर्म रोग, अनिद्रा सिर और जोडो के दर्द, गुर्दे, फेफड़े तथा हृदय के रोग	कीटनाशक उद्योग

जल प्रदूषण के स्रोत (Sources of water pollution)

जल मे प्रदूषण सामान्यतया दो प्रकार से होता है।

(i) प्राकृतिक स्रोत द्वारा (Natural Sources)

(ii) मानवीय प्रवृति द्वारा (Human Sources)

(i) प्राकृतिक स्रोत द्वारा :-- प्राकृतिक स्रोत मे भूक्षरण, खनिज पदार्थों, पौधो की पतियो एवम् ह्यूमस पदार्थ तथा जीवो के मल मूत्र इत्यादि से मिलने के कारण होता है अत्यधिक मद गति के कारण इसके कोई गभीर परिणाम परिलक्षित नही होते है। प्राकृतिक जल प्रदूषण की मात्रा मानव जनित प्रदूषण की तुलना मे नगण्य है।

(ii) मानवीय स्रोत :-- *जल के प्राकृतिक स्रोत जैसे नदी, झरने, नाले, तालाब, आदि मे स्वत: स्वच्छीकरण की प्रक्रिया प्राकृतिक रूप से चलती रहती है। वस्तुत: द्वितीय* विश्व युद्ध के बाद से मुख्यत: तीव्र औद्योगिकरण, शहरीकरण, तकनीकी विकास तथा विविधीकरण ने जल प्रदूषण की समस्या को और गंभीर बना दिया है। लगभग सभी उद्योग अपना अपशिष्ट नदियो तथा झीलो मे ही त्यागते है। मानव जनित जल प्रदूषण प्रमुखत: निम्न अपशिष्ट युक्त बहि.स्रावो के जल मे मिलने से होता है।

1 घरेलू बहि:स्राव (Domostic effluent)
2 वाहितमल (Sewage)
3 औद्योगिक बहि:स्राव (Industrial effluent)
4 कृषि बहि:स्राव *(Agricultural effluent)*
5 उष्मीय या तापीय प्रदूषण (Thermal pollution)
6 तेल प्रदूषण (Oil pollution)
7 रेडियोधर्मी अपशिष्ट या अवपात (Radio active waste or fallouts)

1. घरेलू बहि:स्राव :-- दैनन्दिन गतिविधियो जैसे खाना पकाना, नहाना-धोना, अन्य सफाई कार्य आदि के कारण उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ मुख्यत. सडे फल सब्जी, रसोईघरो से निकली राख, कूड़ा-करकट, अपमार्जक पदार्थ, गदा जल, सॉश्लिष्ट प्रक्षालक (Synthetic *detergents) आदि बहि.स्राव के साथ बहा दिये जाते है जो अन्तत. किसी भी जल स्रोत* मे मिलकर प्रदूषण उत्पन्न करते है। घरेलू अपशिष्टो से युक्त बहि:स्राव को मलिन जल (Sullage) कहा जाता है। यह गभीर प्रदूषक नही होता है। परन्तु यदि उसमे कीटनाशी तथा प्रक्षालक अधिक मात्रा मे उपस्थित होते है तो हानि की सभावना बढ़ जाती है।

2. वाहित मल :-- सामान्यत. वाहित मल मे मल-मूत्र (विष्ठा) का समावेश होता है। कार्बनिक तथा अकार्बनिक दोनो ही प्रकृति के वाहित मल जल मे घुली अथवा निलम्बित अवस्था मे रहते है। ठोस वाहित मल मे कार्बनिक पदार्थों के अधिक्य के कारण मृतोपजीवी *तथा रोगकारक सुक्ष्म जीवी – जैसे – बैक्टीरिया, बाइरस, शैवाल, कवक, प्रोटोजोआ, इत्यादि तीव्र गति से वृद्धि करते है। इस तरह अनुपचारित दूषित वाहित मल मल नालो* (Sewers) द्वारा जल स्रोतो मे मिलता है तो स्वास्थ्य के लिए गभीर जल प्रदूषण का कारण बनता है। खुले स्थानो मे भी मानव तथा पशुओं द्वारा त्याज्य विष्ठ वर्षा के जल के साथ बहकर अन्तोगत्वा जल स्रोतो तक पहुँच जाती है। जल के इस प्रकार के प्रदूषण

को जैविक सदूषण (Biological contamination) कहते है। प्रदूषण के कारण मृत शैवालो का विघटन नही होने से जल मे प्रबल दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। कुछ पौधो के जल मे विघटन होने से विषाक्त स्ट्रीचनीन (Strychnine) की उत्पत्ति हो जाती है। इस तरह के विषाक्त जल के उपयोग से जन्तु व चौपाये जानवरो की मृत्यु हो जाती है। जल के प्रदूषित हो जाने पर अत्यधिक शैवाल वृद्धि होकर जल स्रोत जल झील से पूर्ण रूप से आच्छादित हो जाता है। जिससे पानी मे जल जीवो पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। सभी सुक्ष्म तथा दीर्घ जीव जल के गुणो को प्रभावित करते है जैसे यकृत विकार तथा लकवा सम्बन्धी विषाणु मल मे मिलते है। इसी तरह रोगजनित जीवाणु सालमोनेली, प्रोटोजन्स–एन्टाअमीबा हिस्टेलाइटिका जिससे दुनिया की 10% जनसख्या पीड़ित है अमीबोइसीस नामक रोग उत्पन्न करती है गृह मल-मूत्रादि मे होते है। दूषित जल से पीलिया, हैजा, अतिसार, मलेरिया, पैचीस, मोतीझरा, कैसर, नासूर, पोलियो आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। विश्व मे प्रतिदिन 45,000 व्यक्ति दूषित जल के उपयोग से मरते है। विकासशील देशो मे 5 मे से 4 बच्चे जल जनित रोग से ग्रसित होकर काल कलवित हो जाते है। नागपुर स्थित राष्ट्रीय पर्यावरण अभियाविकी अनुसधान सस्थान (NEERI) के अध्ययन के अनुसार भारत की 70% जलराशि पीने के लिये अनुपयुक्त है।

3. औद्योगिक बहि:स्राव :-- यह जल प्रदूषण का मुख्य कारण है क्योंकि सबसे अधिक जल का उपभोग ये औद्योगिक ईकाईया ही करती है। एक सर्वेक्षण के अनुसार अमेरिका मे लगभग 225 अरब गैलन प्रतिदिन जल का उपयोग ये उद्योग करते है। एक बड़ी पेपर मिल प्रतिदिन लगभग 50,000 व्यक्तियो के उपयोग के पानी को उपयोग कर दूषित कर प्रवाहित कर देती है। दूसरा सिचाई जिसमे लगभग 100 खरब गैलन प्रतिदिन जल का उपयोग होता है जो वहाँ की आबादी के वार्षिक उपयोग का लगभग आधा है। प्राय: विश्व मे अधिकाश बड़े शहर तथा औद्योगिक ईकाईयाँ जल स्रोत (नदियों) के किनारे स्थित है। जल प्रदूषण फैलाने वाले कारखानो मे पेपर उद्योग, कपड़ा, शक्कर, रबर, वनस्पति घी, उर्वरक व रसायन तैयार करने वाले सयत्र, स्टील उद्योग, चर्म शोधन, शराब उत्पादन कपड़े रगने के कारखाने तथा खनन कारखाने सम्मिलित है। इस कल कारखानो के अपशिष्टो से कई प्रकार के विषैले रसायन, तेजाब, खनिज, कॉपर, सीसा, पारा, केडमियम, सायनाइट, फॉस्फेट आदि नदियो के जल मे मिल जाते है। ये बहि:स्राव उद्योगो और उपयोगिता प्रक्रमो के आधार पर भिन्नता रखते है। इन सभी कारखानो से निकलने वाले बहि:स्राव इतने विषाक्त होते है कि वहाँ के जल मे किसी भी प्रकार की वनस्पति तथा जीव का प्रादूर्भाव नही हो पाता। कागज व वस्त्र उद्योग के बहि:स्राव मे कार्बनिक पदार्थों की अधिकता होती है तो शराब व प्लास्टिक कारखानो के बहि:स्राव मे फिनोल, तथा धातु चमकाने और विद्युत से धातु चढ़ाने वाली ईकाईयो (Electroplating plants) के उच्छिष्टो मे भारी धातुए तथा साइनाइड होते है।

4. कृषीय अपजल (Agricultural waste) :-- दोष पूर्ण कृषि पद्धतियो तथा हरित क्रान्ति के नाम पर हमने पश्चिम वालो का अन्धानुकरण कर अपनी अनुभव सिद्ध कृषि पर आधारित जीवन तत्र को परोक्ष या अपरोक्ष रूप से क्षति पहुँचाई है। कृषि मे

अत्यधिक रसायनिक उर्वरका, कीटनाशी, शाकनाशी, कवकनाशी आदि का उपयोग जो अन्तत· वर्षा के साथ बहकर नदियो आदि जल स्रोतो मे पहुँचते है। जिससे जल के सुपोषक एव रासायनिक विषकरण का कारण बनते है। सर्वप्रथम क्लोरीन युक्त हाइड्रोकार्बन DDT का अविष्कार जर्मन रसायनज्ञ जैडलार (Ziedler, 1974) मे किया था। तत्पश्चात् स्विस रसायनज्ञ पॉल मूलर (Paul Mullar, 1939) ने इसका कीटनाशी के रूप मे निर्माण किया। इसके अतिरिक्त डाइएल्ड्रिन, ऐल्ड्रिन ऐन्ड्रिन, बी० एच० सी०, पैराथियोन, मेलाथियोन, लिंडेन आदि कार्बनिक पदार्थ प्राय· सूक्ष्म जीवो द्वारा अपघटित नही होते तथा प्राणियो मे पहुँच कर वसा मे घूलनशील होने के कारण शरीर मे एकत्रित हो जाते है। पक्षियो मे इनका प्रभाव केल्सियम उपापचय पर देखा गया है।

DDT (Dichloro diphenyl trichloroethane) की अधिकता की वजह से पक्षियो के अण्डो का कवच बहुत पतला हो जाता है जिससे अण्डे परिपक्व होने मे पूर्व ही टूट जाते है। इस समय पृथ्वी के जीवमण्डल मे लगभग 5 खरब किलोग्राम डी० डी० टी० सचरित हो रही है। दक्षिण ध्रुव प्रदेशो की सील मछलियो तथा पेन्गुइन मे भी डी० डी० टी० की उपस्थिति पाई गई है जहाँ कभी इसका उपयोग हुआ ही नही है। इसका कारण इनका पर्यावरण मे लम्बे समय तक व्याप्त रहना तथा उच्चतर पोषण स्तरो मे क्रमिक सग्रह जिसे जैववर्धन या जैविक सान्द्रण अथवा जैविक महत्तीकरण (Biomagnification) कहा जाता है। मनुष्य अवाछित पौधो के नाश के लिये अनेक अपतृणनाशी (Herbicides) रसायनो जैसे 2-4-D, (2,4 डाइ क्लोरोफिनोक्सी एसिटिक एसीड), 2, 4, 5, -T (2, 4, 5 ट्राइक्लोरो फिनोक्सी एसिटिक एसीड), पिक्लोराम (Pichloram), क्रेकोडिलिक एसिड (Cracrodilic acid) का उपयोग करता रहा है। जिनका प्रभाव पत्तियो के झड़ने (Defoliation) तथा फ्लोएम (Phloem) ऊत्तक की अति वृद्धि के रूप मे दृष्टिगोचर होता है। प्रकाश सश्लेषण मे बाधा पहुँचने के कारण शाकीय पौधे मर जाते है। इनको वियतनाम युद्ध के दौरान व्यापक स्तर पर प्रयोग करके वर्षा बहुल सघन वनो को नष्ट कर दिया गया है। ये रसायन जैव निम्नीकरण (Biodegradation) के अयोग्य होने के साथ-साथ विनाशकारी प्रकृति तथा अधिकाशत विस्तृत प्रति कक्षशी (Broad spectrum) प्रभाव वाले होते है। जो प्रकाश सश्लेषण व वाष्पोत्सर्जन को रोक कर पौधो को नुकसान पहुँचा सकते है। इसके अतिरिक्त ऊर्वरको द्वारा जल स्रोतो का पोषीकरण (Eutrophication) बढ़ जाता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जल की गुणवत्ता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करते है। नाइट्रेट ऊर्वरको के जल मे मिलने तथा नाइट्रेट युक्त जल का मानव द्वारा पेयजल के रूप मे उपयोग होने पर आत्र मे उपस्थित जीवाणु इन नाइट्रेट को विषाक्त नाइट्राइट्स मे परिवर्तन कर देते है जो हीमोग्लोबिन के साथ सयोग कर मेथेमोग्लोबिन (Methaemogobin) बना देते है जिससे मेथेमोग्लोबिनामिया (Methaemogobinaemia) रोग हो जाता है। इसमे शरीर का रग नीला पड़ जाता है, कैसर रोग भी हो सकता है। फोस्फोरस युक्त रसायनो से मनुष्य मे कोलिनेस्टेरेज नामक इन्जाइम का सश्लेषण नही हो पाता। यह इन्जाइम सवेदन के वाहक का कार्य करता है तथा ऐसे यौगिक मस्तिष्क मे निक्षिप्त होकर पागलपन पैदा करते है।
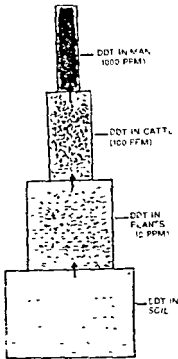
चित्र 5.2 : जैविक महतीकरण का चित्रण

5. तापीय बहि:स्राव (*Thermal effluent*) :-- अनेक ऊर्जा उत्पादन सयत्रो विशेषत: ताप विद्युत ग्रहो के यत्रो को ठडा करने के लिए वृहद मात्रा मे नदी तालाबो के जल का उपयोग किया जाता है। शीतलन की इस प्रक्रिया के लिये प्रयुक्त पानी अपने मे बहुत अधिक मात्रा मे उष्मा एकत्र कर नदियो के जल क्षेत्र मे जाकर जल के तापक्रम को बढ़ाता है। इसका सीधा प्रभाव रासायनिक क्रिया पर पडता है। अधिक ताप पर जलीय प्राणियो एव वनस्पतियो के प्रजनन एवम् वृद्धि की दर बढ़ जाती है। जलाशयो के अनुपयोगी पानी मे विभिन्न प्रकार के उदासीन लवण अम्ल तथा क्षार होने से पानी का pH बदल जाता है इस अनुपयोगी जल मे बिना जला हुआ ईधन, कीचड़ के रूप मे पीसी हुई धातु, कार्बनिक पदार्थ, लौह और एल्यूमिनियम के यौगिक, मैग्नीसियम हाइड्राक्साइड और कैल्सियम कार्बोनेट इत्यादि भी उपस्थित होते है जो जैव रासायनिक आक्सीजन माग (Biological oxygen demand) को बढ़ाकर जलस्त्रोत के pH को प्रभावित करता है। इसी प्रकार कार्बनिक पदार्थों के सड कर इक्ट्ठा होने से जलीय जीव जन्तुओं तथा वनस्पति के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न हो जाता है। इससे जल की गुणवत्ता पर भी दुष्प्रभाव पडता है।

6. तैल प्रदूषण (Oil pollution) :-- विभिन्न औद्योगिक बहि:स्राव तथा सामान्यत: दुर्घटनावश नदी या अन्य जल स्रोतो मे तैल या तैलीय पदार्थों के मिलने से तैल प्रदूषण होता है। नदियो की अपेक्षा समुद्रों मे तैल प्रदूषण की अधिक सभावना रहती

है । सामान्यतया तेल वाहक जहाजो मे तेल चढ़ाने तथा उतारते समय, जलयानो द्वारा अपशिष्ट तेल के विसर्जन, तेल कुओं से रिसाव तथा खनिज तेलो के जहाजो मे खराबी तथा दुर्घटनावश तैल समुद्र की सतह पर फैल जाता है । समुद्री लहरो के साथ यह तैल समुद्र तट पर पहुँच कर पौधो, प्राणियो और मछलियो की मृत्यु का कारण बनने के साथ-साथ समुद्र तटो को मनुष्य के अनुपयोगी बना देता है। वर्तमान मे अनुमानत. विभिन्न कारणो से प्रतिवर्ष पेट्रोलियम के लगभग 50 टन लाख से 1 करोड टन उत्पाद समुद्र जल मे मिलते है । इसी तरह अनुमानत 1/6 खनिज तेल समुद्र के नीचे की जमीन से निकल रहा है । सन् 1969 मे दक्षिणी कैलीफोर्निया के सान्ता बराबारा (Santa Barbara) समुद्र तट के तेल कुऐं से पेट्रोलियम रिसाव से गभीर तेल प्रदूषण हो गया था । जिससे मुक्ति पाने मे वर्षों लग गये । 10 मार्च 1967 को अमेरिकन तेल वाहक जहाज टोरी कन्योन (Torrey Canyon) के इग्लैड के दक्षिण पश्चिम तट पर दुर्घटना ग्रस्त हो जाने से समुद्र की जल सतह पर कही-कही 45cm मोटी तेल की तह बन गयी थी । जिसे नष्ट करने के लिए ब्रिटिश जल सेना ने कई टन बाइट व अपमार्जक प्रयोग किया जिससे जल जीवन की अपार हानि हुई । इसी तरह सन् 1968 मे बिहार स्थित बैरानी तेल शोधक कारखाने से तेल रिसाव के कारण मूगेर क्षेत्र को कई दिनो तक गगा की जलपूर्ति रोक दी गई । तथा गगा मे लगभग 5 घटे पानी मे आग लगने का दृश्य उपस्थित हो गया था । 16 सितम्बर 1974 को एक अमेरिकी तेल वाहक ट्रान्स हीरोयन (Trans shuron) लक्षद्वीप के समुद्र मे किल्टान द्वीप की एक प्रवाह द्वीप वलय (Atoll) से टकरा कर दुर्घटना ग्रस्त हो गया जिससे उनमे ले जाया जा रहा 5000 टन तेल समुद्र मे फैलता हुआ केरल के समुद्र तटो तक फैल गया । जुलाई 1976 मे एक ग्रीक तेल वाहक जलयान वैरपाल के निकट समुद्र मे डूब गया था । परिणाम स्वरूप भारतीय तट पर कई दिनो तक तैल फैला रहा । इसी तरह अप्रैल 1978 मे अमेरिकी तेल वाहक जलयान सीलिफ्ट मेडिटिरानियन (Sealift mediteranian) सुमात्रा के निकट जलमग्न हो गया था जिसका तेल कई दिनो तक निकोबार द्वीप के समुद्री जल पर तैरता रहा था ।

7. रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radio active waste) :-- पिछले कुछ दशको मे विश्वभर मे विशेषत विकसित देशो मे विभिन्न उद्देश्यो हेतु ऊर्जा प्राप्त करने के लिये नाभिकीय ऊर्जा सम्बन्धी प्रयोग बहुतायत मे हुए है । इन प्रयोग के दौरान तथा परमाणुवीय सयत्रो से अनेक रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थ से रेडियो न्युक्लाईडस उत्पन्न होते है जैसे आयोडीन^{129} आयोडीन^{131}, सीजीयम^{137}, स्ट्रोन्सियम^{90}, सीरियम^{144}, कार्बन^{14}, जीक^{65}, क्रिप्टान^{85} आयरन^{59}, कौबाल्ट^{60}, हाइड्रोजन^{3} (ट्रीटोयम) आदि । रेडियोधर्मी अवपात से निकले रेडियो न्युक्लाईडस की अर्ध आयु कुछ सैकन्ड से हजारो वर्षों तक होती है । यदि इनका समुचित समापन नही किया जाता है तो गभीर पर्यावरणीय प्रदूषण हो जाता है । ये रेडियोधर्मी अपशिष्ट खाद्य श्रृखला द्वारा मानव शरीर में पहुँच कर कैसर, ल्यूकेरिया जैसे भयकर रोग तथा उत्परिवर्तन (Mutation) के परिणामस्वरूप वशानुगत रोग भी हो जाते है । इसके अतिरिक्त इन रेडियोधर्मी अपशिष्टो का दुष्परिणाम वृक, तन्त्र, फेफड़ो, सवहनीतत्र, रक्त ऊतको तथा जनन ग्रथी पर भी दृष्टिगोचर हुआ है । सीजीयम^{137} तथा स्ट्रोन्सियम^{90} के लम्बे व गभीर दुष्प्रभाव होते है ।

शोर प्रदूषण (Noise pollution)

एक प्रदूषक के रूप मे शोर की पहचान अपेक्षाकृत नई है, क्योंकि इसके नकारात्मक प्रभाव बहुत ही सूक्ष्म होते-है । शोर अमूर्त है, अधिकांश लोगो के लिए सौन्दर्य बोध की दृष्टि से कम आक्रमक और सवेद के लिहाज से कम घृणास्पद लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से यह जीवन के अति महत्वपूर्ण पहलू को प्रभावित करता है । ध्वनि मनुष्य की मुख्य कृति है और मनुष्य ही इससे सबसे अधिक प्रभावित होता है । शोर (Noise) शब्द का उद्गम लेटिन भाषा के नॉशिआ (Nausea) से हुआ है । एक अन्तर्राष्ट्रीय नगरीय योजनाकार विक्टर ग्रुएन के अनुसार शोर "मृत्यु का एक धीमा कारक" है । एक अमेरिकी पर्यावरण विद् ने भविष्यवाणी की है कि अगर शोर (अवांछित ध्वनि) की दर का वर्तमान स्तर लगातार जारी रहा तो बड़े महानगरीय क्षेत्रो मे रहने वाले ज्यादातर लोग सन् 2050 तक बहरे हो जायेगे ।

प्रचलित मानदण्डो के अनुसार शोर को अवांछित ध्वनि के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है । वस्तुत: शोर एक अवांछित ध्वनि है जिसे अवांछिन स्थान और अवांछित समय पर उत्पन्न किया जाता है । शोर और ध्वनि मे मुख्य अन्तर तीव्रता का ही होता है । वह कोई भी ध्वनि जो मानसिक क्रियाओ मे बाधा उत्पन्न करे शोर मे समाहित हो जाती है । ध्वनि स्पष्टत: ऊर्जा का ही एक रूप है ।

शोर प्रदूषण मे उत्पन्न ध्वनि की उच्च प्रबलता तथा आवृत्ति महत्वपूर्ण होती है । तथा इसे डेसीबल (Decible) या dB मे मापा जाता है । इसे डेसीबल मीटर (Decible meter) नामक यत्र की सहायता से मापा जाता है ।

औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत के दौर मे शोर केवल कारखानो तक ही सीमित था । आज यह दैनिक जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन चुका है । डॉ० हेनिंग ई वॉन गीर्के ने जनसख्या और औसत कोलाहल स्तर के घनत्व के बीच अतर्सबन्ध स्थापित किया है, गैलोवे के सर्वेक्षण के अनुसार अगर जनसख्या घनत्व प्रति मील 1,000 व्यक्ति है तो दिन और रात का औसत ध्वनि स्तर 52 dB होगा । यह 10 लाख जनसख्य पर 72 dB के औसत पर पहुँच जाता है । अत: महानगर कोलाहल के केन्द्र बन गये है । 80 dB से ऊपर की ध्वनि को शोर प्रदूषण के अन्तर्गत रखा गया है । शहरी क्षेत्रो मे रहने वाले लोग कल कारखानो के शोर के अतिरिक्त पर्यावरणीय शोर के बीच रहते है जैसे व्यस्त यातायात क्षेत्र, शहर की भीड़, हवाई जहाज का शोर इत्यादि (तालिका 3) । एक जेट हवाई जहाज उड़ान भरते समय एक बड़े क्षेत्र मे 140-150 dB कोलाहल की बम वर्षा करता है । और लगातार 85 dB शोर श्रवणशक्ति को घातक रूप से प्रभावित कर सकता है । शोर एक अद्भुत अन्तर्राष्ट्रीय घटना है । विश्व का लगभग हर शहर शोर सकट से पीड़ित है केवल अमेरिका का मेंफिस नगर जिसने सबसे शात शहर का नाम कमाया, एक अपवाद है । भारत में स्थिति निराशाजनक ढग से दयनीय एव शोचनीय है । राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली के अध्ययन के अनुसार मुबई और दिल्ली जैसे शहरो मे दिन के समय सड़क कोलाहल 90 dB तक रहता है और 60 dB से विरल ही कम होता

है। मुम्बई देश का सबसे शोरीला नगर है यहाँ दिन-रात औसत कोलाहल स्तर 75 dB है तथा हवाई अड्डे के निकट सबसे ज्यादा 105 dB है। मुबई मे अगर शोर इसी वर्तमान दर पर जारी रहा तो हम एक साल मे कुल एक डी० बी० और जोडेगे इस सदी के खत्म होते 2 एक खतरनाक विन्दु पर पहुँच जायेगे।

तालिका – 3
विभिन्न स्रोतों से उत्पन्न ध्वनियों की तीव्रता

	स्रोत	ध्वनि की प्रबलता (डेसी बल मे)	ध्वनि स्तर का प्रभाव
1	सुनी जा सकने वाली सामान्य सीमा	0 dB 20 dB (सैद्धान्तिक)	शान्त शान्त
2.	श्वास क्रिया	10 dB	शान्त
3	रेडियो प्रसारण	20 dB	शान्त तथा मधुर
4	गुपचुप वार्ता (Soft whisper)	20-30 dB	शान्त तथा मधुर
5	फुसफुसाहट	10-25 dB	शान्त तथा मधुर
6	लाइब्रेरी, रेडियो रिकार्डिंग कक्ष	30 35 dB	मधुर
7	धीमा रेडियो	35-40 dB	मधुर
8	सामान्य वार्तालाप	50-60 dB	सामान्य तेज
9	टेलीफोन	60 dB	सामान्य तेज
10	रेस्टोरेन्ट शोर	60-70 dB	तेज
11	अलार्म घडी	70-80 dB	शोर गुल
12	खेलते बच्चे	60 80 dB	शोर गुल
13	व्यस्त बस्तियाँ	80 dB	शोर गुल
14	यातायात शोर	50-90 dB	प्रबल
15	भारी ट्रक (50 फीट दूर)	90 dB	प्रबल
16	मोटर साईकल (25 फीट दूर)	105 dB	असुविधा जनक रूप से प्रबल
17	रेल की सीटी (50 फीट दूर)	110 dB	असुविधा जनक रूप से प्रबल
18	बिजली की कड़क	120 dB	असुविधा जनक रूप से प्रबल
19	जेटयान उड़ते समय	150 dB	पीड़ा जनक
20	रॉकेट ईन्जन ध्वनि (छोड़े जाते समय)	170 180 dB	अत्यन्त पीडा जनक

शोर के दुष्प्रभाव :--

सामान्यत. कोलाहल के कुप्रभावो को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है । शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और जीव विज्ञान सबन्धी । इन तीनो वर्गों के प्रभाव व्यापक और विविध है । अल्पकालिक और दीर्घ कालिक है । ये सारे प्रभाव शोर की आवृति, उसकी अवधि तीव्रता, प्रकार और अन्य पर्यावरणीय कारणो पर निर्भर करते है ।

शोर के शारीरिक प्रभावो मे श्रवण शक्ति का क्षीण हो जाना या पूरी तरह स्थायी तोर पर समाप्त हो जाना सम्मिलित है । यह शोर की तीव्रता और आवृति पर निर्भर करता है । 100 dB के शोर पर अन्त कर्ण (Internal ear) को क्षति पहुँचती है परन्तु 160 dB से ऊपर के कोलाहल पर तो कान की टिम्फेनिक झिल्ली (Tymphanic membrane) स्थायी तौर पर फट जाती है । विश्व स्वास्थ्य सगठन के अनुसार ध्वनि की उच्चतम सीमा 35 dB रात्रि मे, 45 dB दिन मे तथा 80 dB से उच्च ध्वनि तीव्रता शोर प्रदर्शित करती है । तेज ध्वनी और लगातार शोर हृदय की धडकनो को प्रभावित कर सकता है, रक्त वाहिनियो को सकुचित कर सकता है और उच्च रक्तचाप का कारण बन सकत है । शोर के कारण रक्त सचरण और हृदय रोग की समस्याए उत्पन्न हो जाती है। इनके अलावा कई अन्य शारीरिक व्याधियाँ जैसे आतो मे छाले, एलर्जी, घबराहट, पाचक रस की कमी, चर्म का पीला पड जाना आदि भी पैदा हो सकती है। एड्रीनेलीन (Adrenaline) की रक्त मे मात्रा वढ जाने से चेतना पेशीय तनाव बढ जाता है जिसका गर्भस्थ शिशु पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभावो के अन्तर्गत अवाछित शोर सप्रेक्षण विच्छेदन, कुठा, अपमान, अनिद्रा, व्यग्रता, बेचैनी का कारण बनता है । कोलाहल पूर्व वातावरण मे रहने वाले लोग जल्दी थक जाते है और क्रोधी तथा चिड़चिड़े हो जाते है । विभिन्न अध्ययनो से सिद्ध हो चुका है कि शोरीले वातावरण वाले कारखाने मे शात वातावरण वाले कारखाने की तुलना मे ज्यादा दुर्घटनाए होती है । अत्यधिक तथा लगातार शोर के कारण असहयोग की भावना प्रबल हो जाती है । व्यक्ति क्रोधी, चिड़चिडा, असतुलित और भिरु हो जाता है । शोर के नकारात्मक मानसिक परिणाम होते है जैसे विभ्रम, आत्महत्या या हत्या की प्रवृति । शोर मे 90 dB से ज्यादा की लगातार आवृति मे मनुष्य मनोविक्षिप्त भी हो सकता है ।

जहाँ तक कोलाहल के जैविक प्रभावो का सवाल है । यह पाया गया है कि शोर चुहिया को बाझ बना सकता है । कार्य सबन्धी व्यतिक्रम भी पैदा कर सकता है, यहाँ तक की भातिभ्रम व्यवहार का कारण बन सकता है दीर्घ कालिक जैविक प्रभावो का सिद्ध होना अभी बाकी है । पौधो पर अभी कोई ऐसे अध्ययन नही हुए है जिससे शोर के दुष्प्रभावो का पता चलता हो ।

प्रदूषण नियंत्रण (Pollution control)

उपरोक्त विवरण से प्रदूषण की विकरालता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है । आज मनुष्य को इस बात का आभास मिल चुका है कि वह वायु और जल के परिभ्रमण को कभी नियत्रित नही कर सकेगा । प्रदूषण सम्पूर्ण भूमण्डल की साझी कृति है

तो ससाधन विरासत । विश्व भर के जनमानस मे इस सम्बन्ध मे जागरुकता बढ़ी है । इसी का परिणाम है कि मानव और पर्यावरण के अन्तर्सम्बन्धो को समझने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक सगठनो का गठन, कानूनो का निर्माण आदि हुआ है । हाल ही मे 3-4 जून 1992 मे ब्राजील के रियो दि जनेरो शहर मे सम्पन्न पृथ्वी शिखर सम्मेलन जिसमे 160 देशो एवम् 137 स्वय सेवी सस्थाओं ने भाग लिया इसी क्रम की एक कडी है । यद्यपि विकसित देशो की तुलना मे हमारे यहाँ वायु प्रदूषण की समस्या ने अभी गभीर रूप नही लिया है तथापि केन्द्र सरकार ने 1981 मे वायु प्रदूषण निवारण एवम् नियत्रण कानून लागू किया । समय समय पर,अनेक सुझाव, साधन व निवारण सयत्र प्रस्तुत किये गये है । वायु प्रदूषण के नियंत्रण मे कुछ सामान्य उपाय तथा साधन, सयत्र निम्नानुसार है ।

1 घरो मे धुआ रहित ईधनो के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिये जैसे एल० पी० जी० गैस आदि ।
2 कल कारखानो की स्थापना शहर तथा आवासीय बस्तियो से दूर की जानी चाहिये । कारखानो के आसपास सघन वृक्षारोपण किया जाना चाहिये ।
3 वाहनो मे इस्ट्रोक इजन की जगह निरापद फोर स्ट्रोक इजन की नवीनतम तकनीक का उपयोग एवम् सवर्धन किया जाना चाहिये । जिससे प्रयुक्त ईधनो का पूर्ण आक्सीकरण हो सके तथा निर्वात नाल पर छन्ना, केटेटिक कर्न्वर्टस, या पश्च ज्वलक (after burner) लगाकर धुए व गैस की मात्रा न्यून की जा सके ।
4 वाहनो मे उपयोग हेतु नये अनुपात का गैसोलीन (Gasoline) तैयार किया जाना चाहिये । अधिक प्रदूषण फैलाने वाले वाहनो को दण्डित कर उनका पजीकरण रद्द किया जाना चाहिये । साथ ही साथ LPG (Lequidified petroleum gas) पर आधारित इजनो का विकास किया जाना चाहिये जिनका प्रयोग थ्री वीलर मे किया जा सकता है । दक्षिण कोरिया मे इस तरह के वाहन सफलतापूर्वक चल रहे है ।
5 कारखानो से निकलने वाले प्रदूषको को नियत्रित करने के लिए निम्न विधियो व सयत्रो का उपयोग आवश्यक रूप से किया जाना चाहिये ।

(i) अधिशोषक (Adsorbers) : इसमे छिद्रित सक्रिय कार्बन युक्त उपादान मे से उच्च तापमान पर प्रदूषक गैस तथा द्रव कणो को प्रवाहित किया जाता है । गैस अणु छिद्रिय कार्बन सतह द्वारा अधिशोषित कर लिये जाते है । इस प्रकार उन्हे वायुमण्डल मे जाने से रोक लिया जाता है ।

(ii) अवशोषण (Absorber) : पृथककरण की इस क्रिया मे नि.सृत गैस को विभिन्न विलायको (जैसे अमोनिया) मे से प्रवाहित करवाया जाता है । जिसमे प्रदूषित गैस उस विलायक मे घुल कर रह जाती है ।

(iii) चक्रवात संग्राहक (Cyclone collector) : अपशिष्ट गैसो व कणो को केन्द्रपसारी (Centrifugal) दाब वाले यत्र से गुजारने पर अपशिष्ट कणमय पदार्थों का सग्रह कर लिया जाता है ।

(iv) स्थिर विद्युत अवक्षेपक (Electro static precipitator) : सामान्यतया सीमेन्ट व कागज के कारखानो मे इस तरह के सयत्रो का उपयोग किया जाता है। इससे कण युक्त पदार्थों को विद्युत आवेशित कर विपरित आवेशित इलेक्ट्रोड पर सग्रहीत कर लिया जाता है। यदि धुए मे विद्युत प्रतिरोधी कण हो ते उन्हे छानक सयत्रो से प्रवाहित कर अलग कर लिया जाता है।

भारत सरकार द्वारा जल प्रदूषण नियत्रण के लिए सन् 1974 मे केन्द्रीय जल प्रदूषण नियत्रण मडल की स्थापना की गई। अब तो प्राय: सभी प्रदेशो मे जल प्रदूषण निवारण एवम् नियत्रण मण्डल बने हुए है तथा कानून भी बनाये गये है परन्तु केवल कानून के माध्यम से ही हम अपनी प्राकृतिक विरासत को प्रदूषण से नही बचा सकते है। अब हमे जल प्रदूषण के खिलाफ कानूनी और वैज्ञानिक युद्ध कर देना चाहिए। सदूषित जल को प्राय: निम्न तीन विधियो द्वारा सस्कारित किया जाता है।

1. भौतिक विधि (Physical methods) : इसमे बहि:स्राव मे से अघुलनशील पदार्थों को नियार कर, प्लवन द्वारा या अन्य भौतिक विधियो द्वारा पृथक कर लिया जाता है।

2. रासायनिक विधि (Chemical methods) : इसमे औद्योगिक उच्छिष्ट मे से रासायनिक पदार्थों व धातुओं को उपयुक्त तकनीक से शुद्ध कर अलग कर लिया जाता है।

3. जैविक विधि (Biological methods) : वैसे तो बहि: स्राव मे से घुलनशील पदार्थों को पृथक करना दुष्कर कार्य है परन्तु इसके लिए जैविक विधि सरल एव सस्ती होती है। अपघटनकारी जीवाणु, कवक आदि अनुकूल पर्यावरणीय दशाओ मे पदार्थों को अपघटक कर उन्हे विमुक्त कर देते है।

इसके अतिरिक्त निम्न उपाय किये जाने चाहिये जैसे प्रदूषण फैलाने वाली ईकाईयो को सावर्जनिक रूप मे दण्डित किया जाना जाहिये तथा प्रदूषण कर का प्रावधान भी किया जा सकता है। प्रत्येक शहर मे मैल उपचार सयत्र लगाये जाये, तथा आम नागिरक को जल प्रदूषण की भयानकता से अवगत कराया जावे, रेडियोधर्मी विकिरणो से बचने के लिए विश्व स्तर पर परमाणु विस्फोटो पर प्रतिबन्ध तथा अनुसधान शालाओं मे विखण्डन उत्पादो का नियत्रिण अवस्था मे प्रबन्ध किया जाये, घरेलू बहि:स्राव तथा वाहित मल, औद्योगिक अपशिष्टे, अपमार्जक का असस्कारित अवस्था ने सीधे जल स्रोतो मे प्रवाह को दृढता से साथ रोका जाये आदि इस समस्या के निवारण मे सक्षम है। वस्तुत: हमारे पास पर्याप्त वैज्ञानिक अभिज्ञान व कानूनो के होते हुए भी जल प्रदूषण की इस भयानकता के प्रति उदासीनता का कारण प्रमुखत: प्रदूषण और उसके खतरो के प्रति अनभिज्ञता तथा प्रदूषण नियत्रण मे निहित लागत का भय है। अब समय आ गया है जब हमे जल मितव्ययता को अपनाते हुए यथार्थ परक राष्ट्रीय जल नीति का निर्माण कर उसे अपनाना चाहिये।

शोर प्रदूषण का 70% विशिष्ट मशीनो, मानवीय व्यवहार और शहर की पुर्नसरचना द्वारा नियत्रित किया जा सकता है। शोर प्रदूषण न तो हमारे विधिकर्ताओं न ही योजनाकारों की कार्य सूची मे ही है। प्रदूषण के विभिन्न स्वरूप मे शोर प्रदूषण ही सबसे ज्यादा

लापरवाही के साथ उपेक्षित किया गया है। तकनीकी आधार पर शोर प्रदूषण निवारण करने के लिए तीन उपाय सुझाये गये है

(i) स्रोत पर नियत्रण
(ii) सचारण को रोकना
(iii) ग्राही का सरक्षण

इसमे शोर को स्रोत के स्तर पर ही नियत्रित करना एक सस्ता और कारगर तरीका है।

शोर के सभी मुख्य स्रोतो के लिए व्यवहार्य और जरूरी उत्सर्जन मानको का निर्धारण तथा दोषियो के लिए सख्त दण्ड का विधान सार्वजनिक जागरूकता और शिक्षा के लिए सूचना व्यवस्था का एक व्यापक जाल तैयार करना। शोर प्रदूषण नियत्रण प्रौद्योगिकी विशेषकर परिवहन तत्र समूह विद्युत और इलेक्ट्रानिक प्रयुक्तियो के अनुसधान और विकास के लिये कोष प्रदान करना। शोरिले वातावरण के चारो और सघन वृक्षारोपण करना क्योंकि वृक्ष शोर को अवशोषित कर ऊपर की तरफ विक्षेपित (Deflect) कर देते है। शोर स्रोत की ओर छोटे वृक्ष तथा ग्राही की ओर बडे वृक्ष लगाने से शोर प्रदूषण की तीव्रता मे भारी कमी आती है। भवन निर्माण मे ध्वनि रोधक या ध्वनि अवशोषक सामग्री जैसे एकोस्टीक टाइल्स का उपयोग किया जाना चाहिये कारखानो मे कार्यरत श्रमिको को काना मे प्लग (ear plugs) या कर्ण मफ (ear muffs) पहनना अनिवार्य कर देना चाहिये। योजनाकारो को शहर की स्थलाकृति का लाभ उठाते हुए सार्वजनिक भवनो तथा रिहायशी इलाका क जगह उपयुक्त ढग से नियोजित करनी चाहिये

अन्तत पर्यावरण के इन तमाम प्रदूषण की जड है मानव मन का प्रदूषण। अनुपम मिश्र के शब्दो ने सस्कृति बचाइये पर्यावरण बच जायेगा

अध्याय : 6

प्राकृतिक संसाधनो का संरक्षण एवम् प्रबन्ध

(Conservation & Management of Natural Resources)

अनादिकाल से चली आ रही वह मानव सभ्यता आज उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। जिसमे एक तरफ हमारी आशा की जागृति हो रही है। वही दूसरी तरफ निराशा भी उसी अनुपात मे बढ़ती जा रही है। अर्थशास्त्र मे मॉल्थस के अभावात्मक सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की आधार भूत आवश्यकताओं मे जनसख्या वृद्धि के अनुरूप बढ़ोतरी होती रहती है। इसके विपरीत इन मूलभूत आवश्यकताओं की आपूर्ति हेतु उत्तरदायी ससाधनो की मात्रा सामान्यत. एक निश्चित सीमा तक सीमित है। विगत कुछ दशाब्दीयो मे मनुष्य (विषम पोषी स्तर का उपभोक्ता प्राणी) ने विज्ञान के क्षेत्र मे सर्वतोमुखी उन्नति की है। विज्ञान (Science) और प्राविधिकी (Technology) के सहारे मनुष्य ने *अपनी अनवरत बढ़ती जनसख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रकृति के सभी* समाधनो का दुरुपयोग कर प्रकृति और प्राविधिकी के बीच एक शीत युद्ध छेड़ दिया है।

आजकल प्रकृति के साथ समाज की अन्त क्रिया इतनी व्यापक है कि उससे सारी मानव सभ्यता को प्रभावित करने का आसन्न खतरा उत्पन्न हो गया है। जिसे हम पारिस्थितिकी भाषा मे पर्यावरणीय सकट (Environmental crisis) कह सकते है। इस प्रकार हम देखते है कि भौतिक विकास के प्रयास मे ससाधन आधार का विनाश हो रहा है। विगत कुछ वर्षो मे विश्व जनमत प्राकृतिक ससाधनो के उपयोग और पर्यावरणीय प्रदूषण मे सबंधित समस्याओं की और तेजी से मुडा है। इस सदी की पिछली चौथाई मे प्राकृतिक समाधनो का जितना उपयोग किया गया वह मानव समाज के समस्त पूर्ववर्ती इतिहास के समतुल्य है। ऊर्जा के पदार्थों की खपत तो और भी तेजी से बढ़ी है। प्राकृतिक समाधनो के इस अबाध शोषण ने आज ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमे भूमि के 2 अरब हेक्टयर क्षेत्र से मिट्टी का उपजाऊ ऊपरी परत नष्ट हो गई है आज यह क्षेत्र समस्त कृषि योग्य भूमि से कहीं अधिक है। भारत मे भूमि की ऊर्वरा शक्ति घटने का औसत विश्व मे सबसे ज्यादा है हमारे ग्रह के दो-तिहाइ जगल काट डाले गये है। जानवरों की अनेक जातियां पूरी तरह नष्ट हो गइ है। विशेषज्ञो का अनुमान है कि — आजकल प्रतिवर्ष पृथ्वी से लगभग 10 अरब टन विभिन्न अयस्क, ईंधन, ईमारती माल खोदकर निकाले जाते है और 5 करोड टन से अधिक संश्लिष्ट पदार्थ उत्पादित किये जाते है भारतीय वन क्षेत्र प्रतिवर्ष 20% का दर से तेजी मे घटता जा रहा है। उपरोक्त विवेचन एवम् तथ्य स्पष्ट इंगित करते है कि *बिगडते हुए पर्यावरण के लिये हमारी अर्थ* एवम् भोग प्रधान भौतिकवादी सभ्यता उत्तरदायी है, जिसने मनुष्य को प्रकृति का सहचर होने की बजाय प्रकृति का स्वामी और विजेता बना दिया, अधिकाधिक भोग की वस्तुऐं जुटाना सभ्यता का प्रतीक चिन्ह माना जाता है और इसके लिये प्रकृति के भण्डारो का मनमाना शोषण किया जाता है। यह एक विडबना ही है कि किसी भी विषय के व्यावहारिक पक्ष को मनुष्य के लिये उसकी उपादेयता की दृष्टि से आंका जाता है। इसी सदर्भ मे पारिस्थितिकी विज्ञान के ज्ञान और सिद्धान्तो का मानव कल्याण मे उपयोग की अनुप्रयुक्त

पारिस्थितिकी (Applied Ecology) कहा जाता है। इसकी एक शाखा के अन्तर्गत प्राकृतिक ससाधनो के सरक्षण व प्रबन्ध का अध्ययन किया जाता है – सरक्षण पारिस्थितिकी कहलाती है। मानवीय बुद्धि के अविवेकपूर्ण उपयोग से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं को सामान्यत दो भागो मे विभक्त किया जाता है प्राकृतिक ससाधनो का ह्रास (Depletion of Natural resources) और दुरुपयोग (Misuse) तथा पर्यावरण प्रदूषण (Environmental pollution) वस्तुत इन दोनो समस्याओं का पृथक अस्तित्व बोध नही है अपितु दोनो परस्पर अन्तर्वयित (*Interwoven*) है।

संरक्षण का भावार्थ

सभवत विश्व मे प्रकृति के सरक्षण का आरम्भ सर्वप्रथम ईसापूर्व तीसरी शताब्दी मे सम्राट अशोक ने किया था। प्रकृति के महत्व को स्वीकारते हुए वन्य जीवन के शिकार पर अकुश और तत्सबधी सरक्षण, जो आज भी उनके शिलालेखो के रूप मे सुरक्षित है। कृष्णावतार मे प्रकृति के सतुलन का महत्व और ज्ञान निहित है। पचतन्त्र कथाऐं, हितोपदेश, जातक कथाऐं वन्य जीवन सरक्षण से सबधित है।

सरक्षण शब्द का मूल अग्रेजी पर्याय कन्जरवेशन (Conservation) लैटिन भाषा के Con = 'Together" अर्थात् साथ तथा *Service* = "*guard*" अर्थात् सुरक्षा या रक्षा शब्दो से मिलकर बना है। जिसका तात्पर्य सरक्षण या सुरक्षा प्रदान करने से है। सरक्षण हमे प्रकृति के अनुरुप चलने की शिक्षा देता है, उसके प्राकृतिक नियमन के विरुद्ध नही। वह हमे सदैव यह स्मरण कराता है कि हम स्वय प्रकृति जन्य है। सरक्षण आज को कल से जोड़ता है। सरक्षण की परिभाषा तर्कसगत, न्यायसगत हितकारी एवम् पर्यावरणीय दक्षता के साथ उपयोग के रुप मे की जा सकती है। आज पर्यावरण सरक्षण और विकास को दो विपरीत ध्रुवो के रुप मे देखा जाता है। सरक्षणवादियो (*Conservationist*) को विकास मे बाधक के रुप मे इगित किया जाता है परन्तु वास्तव मे अन्तर्निहित सघर्ष पर्यावरण सरक्षण आन्दोलन और विकास के बीच नही है बल्कि पर्यावरण और दक्षता के नाम पर मनुष्य और पृथ्वी के समस्त ससाधनो के मनमाने शोषण के बीच है। "पृथ्वी पर उपलब्ध जैविक तथा भौतिक ससाधनो के उपयोग की एक ऐसी व्यवस्था करना जिससे उनकी उपलब्धता निरन्तर बनी रहे तथा पारिस्थितिक तत्र मे भी कोई असन्तुलन स्थिति न बने सरक्षण कही जाती है"। उदाहरणार्थ किसी घास के मैदान मे नियत्रित मात्रा एवम् समय के लिये पशुओं को चरने देने से घास के मैदान मे कोई पारिस्थितिकी विसगति उत्पन्न नही होगी।

आजकल मानव के उपयोग एवम् उपभोग के पृथ्वी पर उपस्थित सभी साधन ससाधन rces) कहे जा सकते है। पृथ्वी के समस्त प्राकृतिक स्रोतों का मानव द्वारा सास्कृतिक मानव पर्यावरण (Human environment) कहा जा सकता है। जिसका भावार्थ इन स्रोतो मे मानव उपयोग हेतु किये गये परिवर्तनो एवम् प्रबन्धो से भी है। आज समस्त ससाधन है। वाट (1973) की परिभाषा के अनुसार "ससाधन किसी जीव (population) या पारिस्थितिकी तत्र (ecosystem) की वह कोई भी

आवश्यकता है जिसकी गुरुत्तर उपलब्धता ऊजा सग्रह मे सहायक होती है। मनुष्य के सन्दर्भ मे वीटे ने समय (Time) तथा स्थान को भी बहुमूल्य ससाधन माना है। सुविधा की दृष्टि से ससाधनो को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1 नवीनकरणीय (Renewable) या पुर्नव्य (Regenerative) या गत्यात्मक (Flow) या जैविक ससाधन (Biological resources)
2. अनवीनकरणीय (Non renewable) या अपुनर्नव्य या सचित (Fund) या भौतिक ससाधन (Physical resources)

1 नवीनकरणीय ससाधन (Renewable resources) --

इसके अन्तर्गत जैविक ससाधन आते है जैसे कृषि पेड-पौधे जीव-जन्तु, आदि जिनमे पुनर्नव्य (Regenerative) क्षमता पायी जाती है। पादप वनस्पति प्रकृति के सरलतम तत्वो का उपयोग कर उन्हे जटिलतम तत्वो मे रूपान्तरित कर देते है जिन पर पारिस्थितिक तत्र के अन्य पोष स्तर के प्राणी निर्भर करते है। जीव प्रजनन द्वारा अपनी वृद्धि करते रहते है और मरने के उपरान्त यही जटिल तत्व पुन सरल तत्वो मे सूक्ष्म जीवो द्वारा परिवर्तित कर दिये जाते है। इस प्रकार इन सरलतम तत्वो का पुन पुन परिसचरण पारिस्थितिक तत्र मे होता रहता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इनका निर्माण तत्र मे निरन्तर होता रहता है। आवश्यकता इस तरह के जैविक ससाधनो की समुचित देख रेख तथा प्रबन्ध की है। पर्यावरण की सकलता के सिद्धान्त के अनुसार ये सभी जैविक घटक अन्योन्याश्रित रहते हुए एक निश्चित सतुलन प्रक्रिया मे रहते हुए अन्त क्रिया करते रहते है। इस सतुलन प्रक्रिया मे विक्षोभ होने की दशा मे सम्पूर्ण तत्र अहितकारी रूप से प्रभावित होकर अपना वर्तमान स्वरूप खो सकता है। उदाहरणार्थ – यदि किसी घास स्थल मे अत्याधिक चराई होती है तो न केवल वहा की जैविक सम्पदा ही लुप्त होती है वरन् मृदा के गुणो तापमान आर्द्रता आदि पर भी प्रतिकुल प्रभाव पडता है।

ओलीवर एम० ओवन (1941) ने इन जैविक ससाधनो को असमाप्य ससाधन (Inexhaustible) कहा है। ओवन के अनुसार असमाप्य ससाधन दो प्रकार के होते है।

(अ) अपरिवर्त्य (Immutable) -- वे ससाधन जिन पर मानव गतिविधियो का कोई विशेष प्रतिकूल प्रभाव नही होता है जैसे– वायुशक्ति जल शक्ति आण्विक ऊर्जा ज्वार भाटे की जल शक्ति इत्यादि।

(ब) दुरुपयोज्य (Misusable)-- वे असमाप्य ससाधन जिनके समाप्त होने का कोई खतरा तो नही है परन्तु उनके दुरुपयोग का डर रहता है। जैसे सौर उर्जा एक असमाप्य ससाधन है परन्तु मानव की औद्योगिक गतिविधियो से उत्पन्न वायु प्रदूषण के कारण उसकी तीव्रता के प्रभावित होने का सदैव अन्देशा रहता है। इसी तरह वायुमण्डल के ओजोन सुरक्षा कवच के ह्रास होने से घातक पराबैगनी किरणो से हानिकारक प्रभाव पैदा हो सकते है।

2. अनवीनकरणीय ससाधन (Non renewable resources)--

इस श्रेणी मे हम उन समाप्य ससाधनो को रखते है जिनका केवल एक बार पूर्ण रूपेण उपयोग किया जा सकता है और पुन उन्हे उपयोग योग्य नही बनाया जा सकता

है जैसे – पेट्रोलियम, डीजल, केरोसीन, जीवाश्म ईंधन आदि । ऐसे ससाधन उपयोग के साथ ही समाप्त हो जाते है अर्थात् ऐसे ससाधनो के पुनर्स्थापना की गतिया तो अत्यन्त मन्द होती है अथवा होती ही नही है ऐसे ससाधनो का भडार अक्षय नही होता है । अत: इन्हे अपुनर्नव्य अथवा सचित ससाधन भी कहा जाता है ।

इनका सरक्षण वर्तमान मे उपस्थित सचित भण्डार के आकलन के साथ-साथ आवश्यकताओं के अनुसार व्यय तथा अपव्यय पर नियत्रण रखने के यथासभव प्रयासो द्वारा ही हो सकता है । इन ससाधनो के समाप्त होने की दशा मे हमे प्रतिस्थायी (Substitute) खोजना होगा । नवीनकरण साधनो की तरह अनवीनकरणीय साधनो मे परस्पर सम्बन्ध नही होता अर्थात् एक खनिज के दोहन से अन्य भूमिगत निक्षेप प्रभावित नही होते है ।

औवन के वर्गीकरण के अनुसार नवीनकरणीय ससाधन या समाप्य ससाधन को दो भागो मे विभक्त किया गया है ।

(क) संधारणीय संसाधन (Maintainable resources) -- इसमे उन ससाधनो को सम्मिलित किया जाता है जिनकी पुनर्स्थापना या पुनर्निमाण सभव होता है जैसे– वन, घासस्थल, कृषि भूमि, समस्त जैव सम्पदा आदि ।

(ख) असंधारणीय संसाधन (Non-maintainable resources)-- इसके अन्तर्गत वे ससाधन आते है जिनकी पुनर्निमाण या पुनर्स्थापना सभव नही होती है – जैसे जीवाश्म ईंधन, विशिष्ट खनिज इत्यादि ।

वस्तुत प्राकृतिक ससाधनो का उपरोक्त वर्गीकरण इतना सरल नही है क्योंकि विभिन्न ससाधक वर्ग परस्पर एक दूसरे से अन्तर्ग्रंथित (Interwoven) है । मानवीय गतिविधियो के कारण नये तरह के अन्तर्सबन्ध स्थापित होते रहते है । जैसे कोयले और पैट्रोलियम पदार्थों के उपयोग से लकडी तो बच जाती है परन्तु वायु प्रदूषण का खतरा बढ जाता है तथा जैव सम्पदा प्रभावित होती है । ओडम (1971) ने अनवीनकरणीय साधनो को भी कुछ अर्थों मे नवीनकरणीय माना है । ओडम के अनुसार यदि खनिज, जल आदि ससाधन आवश्यकता से अधिक तीव्र गति से परिसचरण करते रहे तो उनको नवीनकरणीय ही माना जायेगा । मृदा को नवीनकरणीय तथा अनवीनकरणीय दोनो ही श्रेणियो मे रखा जा सकता है – जैसे यदि मृदा किसी क्षेत्र मे व्यापक भूक्षरण या मृदा अपरदन क्रिया द्वारा प्रभावित हो रही हो तो उसे अनवीनकरणीय श्रेणी मे रखा जायेगा इसके विपरित यदि उसकी उर्वरकता मे ह्रास हो तो उसे नवीनकरणीय ससाधन कहा जा सकता है ।

पदार्थ ही अतिम सत्य है इस दर्शन ने मानव की भोगवादी प्रवृति को बढ़ाकर पर्यावरणीय सकट पैदा कर दिया है । आज विभिन्न ससाधनो की कमी एवम् दुरुपयोग होने के कारण ही उनके प्रबन्ध और सरक्षण की बात की जाती है । पर्यावरण की सकलता का ज्ञान (Holistic concept of Environment) तथा पारिस्थितिक तत्र मे कार्यिकीय समाकलन का ज्ञान हो जाने से अब जैविक तथा भौतिक ससाधनो को पृथक नही किया जा सकता है । प्रबन्ध (management) का अर्थ युक्ति-युक्त उपयोग की उस विधि से है जिसके द्वारा ससाधन की भविष्य मे भी प्राप्ति की निरन्तर सम्भावना बनी रहे । आजकल

ससाधनो के समेकित प्रबन्ध (Integrated management) की बात की जाती है। पारिस्थितिकी मे यह सर्वविदित तथ्य है कि जैवमण्डल मे हुए किसी भी विक्षोभ के परिणामस्वरुप श्रृखलाबद्ध प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जिनके अतिम परिणाम अत्यन्त भयकर हो सकते है। अत समेकित प्रबन्ध मे भविष्य के दूरगामी परिणामो का ध्यान रखा जाता है। प्राकृतिक ससाधनो के प्रबन्ध के साथ उनके सरक्षण की चर्चा की जाती है। सरक्षण का अभिप्राय आरक्षण (Protection) या परिरक्षण (Preservation) से नही है। अपितु ससाधन की ऐसी प्रबन्ध व्यवस्था से है जिसके द्वारा उपयुक्त प्रयोग के पश्चात् भी उसकी उपलब्धता दीर्घकाल तक बनी रहे तथा स्वरुप मे परिवर्तन न हो। जैसे किसी वन क्षेत्र को सरक्षित रखने पर भी यदि उसमे से कुछ वृक्षो (सूखे), को समय-समय पर काट भी लिया जावे तो भी समुदाय मे कोई विशेष परिवर्तन नही आयेगा क्योकि प्राकृतिक चक्र मे कुछ नये वृक्ष उग ही आयेगे। लेकिन पारिस्थितिक तत्र की कुछ विशेष परिस्थितियो मे कुछ क्षेत्रो या अशो को पूर्णरुपेण आरक्षित (Protected) रखना भी जरुरी होता है ताकि मनुष्य की गतिविधियो से हुए परिवर्तनो तथा क्रियाकलापो का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके अथवा क्षेत्र विशेष की जैविक सम्पदा को लुप्त होने से बचाया जा सके। प्राय देखा जाता है कि वनस्पति विज्ञान या प्राणी विज्ञान के छात्रो की टोलिया प्रतिवर्ष शैक्षणिक भ्रमण के दौरान पौधो एवम् प्राणियो की विभिन्न जातियो का सग्रह करती है जिनका ध्येय अक्सर दुर्लभ प्रजाति का सग्रह करना ही होता है।

सरक्षण की दृष्टि से, यह हम कुछ प्रमुख ससाधनो का पारिस्थितिकी सिद्धान्तो के अनुरुप प्रबन्ध का सक्षिप्त विवेचन करेगे।

1 वन सम्पदा –

पहले "वन" शब्द का उपयोग बिना जोती भूमि के लिए होता था चाहे बजर हो या पेड-पौधो से आच्छादित लेकिन नई परिभाषा मे प्राय, वन ऐसे पादप सघ को कहते है जिसमे वृक्षो एवम् अन्य काष्ठीय पादपो की प्रमुखता एवम् बाहुल्य हो। वन विश्व के अति जटिल, अन्योन्याश्रित, वृद्धिमान, पारिस्थितिक तत्र है। वनो से मनुष्य का सबन्ध बहुत पुराना है। सभ्यता की ओर कदम बढ़ाने से पूर्व मनुष्य वनो पर ही आश्रित था। लेकिन आज भी जब हम इक्कीसवी सदी की ओर कदम बढ़ा रहे है तब भी वनो पर ही हमारा अस्तित्व निर्भर है। वास्तव मे वन हमारे वर्तमान और भविष्य दोनो के सरक्षक है।

वनों का महत्व – वन हमारी अनेक प्रमुख आवश्यकताओं जैसे ईंधन, इमारती लकडी, प्लाई वुड, बाँस, बेत, कागज की लुगदी, सेलुलोज, लिग्निन वानस्पतिक रजक पदार्थ अनेक औषधिया, पशुओ के लिए चारा, खाद्यफल, गौद, रबर, तारपीन का तेल, कत्था, सुपारी, शहद, लाख, लासा इत्यादि की पूर्ति करते है। इस के अतिरिक्त वन अप्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखने मे सहायक होते है। वन वायुमण्डल मे ऑक्सीजन तथा कार्बन डाइ आक्साइड के क्रान्तिक सतुलन को बनाये रखने मे सहायक होते है। वन अपनी ताप नियन्त्रण क्षमता द्वारा ग्रीष्म ऋतु मे तापमान घटाते तथा शीत ऋतु मे बढ़ाते है। वनाच्छादित क्षेत्र वायुमण्डलीय आर्द्रता को अवक्षेपित कर पर्याप्त तथा समय पर वर्षा

कराने मे सहायक होते है। वन वेगवती हवाओ को रोक कर मृदा क्षरण के अतिरिक्त भी अन्य नुकसानो के बचाव करते है। वन जल तथा वायु अपरदन से मृदा का सरक्षण करते है। वन्य क्षेत्र मे जमीन पर पडी सूखी पत्तिया, टहनिया आदि सड-गल कर मृदा के साथ मिलकर भूमि की ऊर्वरा शक्ति मे पर्याप्त वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त वृक्षो की लम्बी गहरी जडे तथा मृदा की कम सख्त प्रकृति वर्षा के जल को स्पज की भाँति अधिक से अधिक मात्रा मे अवशोषित कर भूमिगत जल ससाधनो मे वृद्धि कर उसके स्तर को ऊँचा बनाये रखते है। वनावरण मृदा मे पर्याप्त नमी व ऊर्वरकता बनाये रखते है। वर्षा के तेज बहाव को रोक कर बाढ़ की सभावना को कम कर देते है। वनो द्वारा सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशसश्लेषण का लगभग आधा कार्य पूर्ण होता है। वन वन्य जीव-जन्तुओ को प्रश्रय एवम भोजन उपलब्ध कराते है जिनका वन पारिस्थितिक तत्र मे अपना पृथक महत्व है। वनो का आध्यात्मिक चेतना, सौन्दर्य बोध, मनोरजन, मनोवैज्ञानिक तथा पर्यटन की दृष्टि से भी विशेष महत्व है। एक अनुसधान के अनुसार वृक्षो की सिर्फ 50 मीटर चौड़ी कतार वायुमण्डल का 3°C तापमान कम कर सकती है। रक्षापक्ति वृक्षावली से कृषि उपज मे लगभग 150 प्रतिशत तक की अभिवृद्धि अकित की गई है। वनो के महत्व के बारे मे मत्स्य पुराण मे उल्लेख है कि एक वृक्ष लगाने का उतना ही महत्व है जितना की 10 पुत्र प्राप्त करने का है। अत उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वनो की भूमिकाए तथा सेवाये मानव अस्तित्व के लिए बहुमूल्य है तथा प्रकृति प्रदत्त सतुलन वनो की ही अमूल्य देन है।

भारत में वन (Forest in India) –

मानवीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल मे भू-पटल का लगभग 60 प्रतिशत भाग वनाच्छादित था। सन् 1850 मे भू-पटल के लगभग 40 प्रतिशत भाग पर वनो की उपस्थिति थी जो वर्तमान मे घट कर लगभग 26 प्रतिशत रह गई है। वनो मे भी सबसे महत्वपूर्ण है उष्णकटिबधीय वर्षा वन। विश्व के इन वन क्षेत्र के लगभग 50 प्रतिशत वन भूमि पर उष्णकटिबधीय वन पाये जाते है जो कभी इतने सघन थे कि सूरज की किरणे भी वन भूमि तक नही पहुँच पाती थी। कभी पृथ्वी पर 160 करोड़ हेक्टेयर मे घने वर्षा वन थे सन् 1975 तक 93 करोड़ 80 लाख हेक्टेयर मे ही ये प्राचीन वन बच पाये। इस तरह वन क्षेत्र मे लगभग 41 4% कमी आई है। इसका भी 63 3 प्रतिशत भाग केवल बर्मा, भारत, श्रीलका मे उजाड़े गये है। आजादी के समय भारत मे कुल भौगोलिक क्षेत्र (32 88 करोड़ हेक्टेयर) के 7 48 करोड़ हेक्टेयर मे वन थे। इसमे से 6 11 करोड़ हेक्टेयर के वन क्षेत्रो से वनोपयोगी सामग्री प्राप्त होती थी। इस 6 11 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र के 5 92 करोड़ हेक्टेयर में अशकुधारी वन (Non-coniferous forest) तथा 0 19 करोड हेक्टेयर मे शकुधारी वन (Coniferous forest) पाये जाते है। उत्पादकता (Productivity) की दृष्टि से हमारे वनो की दशा शोचनीय है। इन वनो की वार्षिक प्रति हेक्टेयर उत्पादकता केवल 0 61 घन मीटर प्रति हेक्टेयर ही है एक अनुमान के अनुसार भारत की लगभग आधी भूमि परती (Waste) हो चली है। हमारे प्रान्त की स्थिति तो और भी दयनीय है जहाँ लगभग 2 प्रतिशत ही सघन वन रह गये है। वह भी अरावली पर्वत श्रृखला पर कही-कही है।

वनोन्मूलन (Deforestation) -- वन आच्छादित क्षेत्र मे वन विनाश विकास कार्यो का मिला जुला नतीजा है । खेती और बागान लगाने के लिए बहुत बडे वन क्षेत्र की सफाई, बड़ी औद्योगिक और सिचाई परियोजनाओं के कारण विशाल वन क्षेत्रो की कटाई या उनका जलमग्न होना, मानव तथा पशुओं की सख्या मे अत्याधिक वृद्धि के दबाव के कारण, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण वनोत्पादनो की बढ़ती माग वन विनाश के लिए उत्तरदायी कारक बने हुए है । नीचे हमारे अपने देश के दो दशक के ऑकडे दर्शाये गये है । स्पष्टत: इन दो दशको मे काफी बडे क्षेत्र से वनो का नाश हुआ है और यह प्रक्रिया सम्पूर्ण विश्व मे सतत चली आ रही है ।

सारणी – भारत मे दो दशको (सन् 1951 से 1972) के बीच समाप्त होने वाले वनो का क्षेत्रफल तथा कारण

	कारण	क्षेत्रफल	
1	नदी-घाटी परियोजनाए	4,01,000	हेक्टेयर
2	कृषि	24,33,000	"
3	सड़क तथा अन्य यातायात	55,000	"
4	उद्योग	1,25,000	"
5	अन्य	3,88,000	"
	योग	34,02,000	"

सन् 1900 मे विश्व मे वनो का क्षेत्रफल 700 करोड हैक्टेयर के आसपास आका गया था जो सन् 1975 मे घट कर 289 करोड़ हेक्टेयर रह गये थे । विश्व मे प्रतिवर्ष अनुमानत. एक करोड़ हेक्टेयर भूमि से वृक्ष काट दिये जाते है । इसी गति से वन विनाश होता रहा तो सन् 2000 तक विश्व मे मात्र 237 करोड़ हेक्क्टेयर मे ही वन रह जायेगे । निकट भविष्य मे शून्य वन (Zero forest) की स्थिति आ जायेगी । सितम्बर 1986 मे वाशिंगटन मे हुए सम्मेलन मे विशेषज्ञो के मतानुसार अनुमानत विश्व के उष्ण कटिबधीय वर्षा वन आने वाले 50 से 75 वर्षों मे लुप्त प्राय. हो जायेगे ।

सभवत सम्राट चन्द्रगुप्त मोर्य के समय तथा बाद मे सम्राट अशोक के काल मे व्यापक स्तर पर वृक्षारोपण अभियान चलाया गया था । मुगलो के काल मे कृषि के लिए वन विनाश की गति तीव्र हो गई । 1857 के स्वतत्रता सग्राम के बाद तो अग्रेजी साम्राज्य ने वनो का शोषण ही प्रारम्भ कर दिया था । वर्ष 1987 की वन स्थिति पर रिपोर्ट के अनुसार आज देश मे प्रति वर्ष 13 3 करोड़ टन ईधन की लकडी की आवश्यकता है, जबकि सरकारी तौर पर ज्ञात उपलब्धता केवल 3 9 करोड टन ही है । इस माग आपूर्ति के लिए प्रति वर्ष लगभग 10 15 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्रो का विनाश कर दिया जाता है । लगभग यही स्थिति चारे की है । जिसकी वार्षिक मांग 70 करोड टन है, जबकि हमे सिर्फ 54 करोड टन चारा ही मिल पाता है हिमालय क्षेत्र के गाँवो

मे महिलाओं को चारे और जलावन की तलाश मे हर रोज छ से दस घटे तक पैदल भटकना पड़ता है।

भारत की वर्ष 1951 की राष्ट्रीय वन नीति मे यह स्पष्ट कहा गया है कि भारत के मैदानी भू भाग के 33 प्रतिशत भाग मे तथा पर्वतीय भागो के 60 प्रतिशत भू भाग पर वन होना आवश्यक है क्योंकि जल और भूमि सरक्षण की दृष्टि से अधिक घनत्व वाला वन तथा मैदान मे 33% प्रतिशत से अधिक घनत्व वाला वन प्रभावशाली होता है। इतनी स्पष्ट चेतावनी के बाद भी भारत मे प्रतिवर्ष 13 लाख हेक्टेयर भूमि से वनो का सफाया कर दिया जाता है। जिसके परिणाम स्वरूप देश को वनोन्मूलन के दुष्प्रभाव की गभीरतम समस्याओं का प्रतिवर्ष सामना करना पडता है। वर्तमान मे देश मे केवल 15 प्रतिशत भाग पर वन रह गये है और केवल लगभग 8 प्रतिशत पर स्वस्थ तथा सघन वन है। उपग्रह से प्राप्त चित्रो के अनुसार वस्तुत: भारत के केवल दस प्रतिशत भूभाग पर ही वनो का अस्तित्व रह गया है। सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश के अतिरिक्त लगभग सभी राज्यो मे अधाधुध जगलो की कटाई हुई है। इस समय परती (Waste) भूमि का सबसे बडा क्षेत्रफल राजस्थान मे है। आज से तीस वर्ष पहले तक भारत मे कृषि योग्य भूमि की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 0 48 हेक्टेयर थी, आज यह घटकर 0 26 हेक्टेयर मात्र रह गई है।

विकसित देशो की लकड़ी की खपत प्रतिवर्ष लगभग 1 75 करोड़ घन मीटर है। इन देशो की व्यापारिक लकड़ी की आवश्यकता अविकसित देशो की तुलना मे डेढ़ सौ से दो सौ गुनी है। विकसित देशो मे प्रति व्यक्ति कागज की खपत लगभग 150 कि० ग्रा० जबकि विकासशील तथा अविकसित देशो मे यह 5 7 कि० ग्रा० प्रति व्यक्ति है।

कृषि की कुछ नवीन प्रचलित पद्धतियाँ भी वनो के ह्रास का कारण बनी है। उदाहरणत एशिया प्रशान्त क्षेत्र मे लगभग 30 मिलियन लोग झूम खेती (Jhum cultivation) करते है। जिसके कारण उष्णकटिबधीय वनों का तीव्र गति से विनाश हो रहा है। इस पद्धति से कृषि योग्य भूमि अर्जित करने के लिए किसी वन क्षेत्र की समस्त वनस्पति को काटकर जला दिया जाता है। इस प्रकार वनस्पति दहन से उत्पन्न राख के आवश्यक खनिज मृदा मे मिलकर उसकी उर्वरकता बढ़ा देते है। इस समृद्धित कृषि भूमि पर दो या तीन फसल ली जाती है तथा मृदा की उर्वरकता के घटने के साथ कृषक उस स्थल को छोड कर अन्य क्षेत्र मे पुन ऐसी ही प्रक्रिया अपनाकर कृषि योग्य भूमि प्राप्त करते हैं। इस पद्धति को स्थानान्तरी जुताई (Shifting cultivation) या झूम खेती (Jhum cultivation) कहा जाता है। इस समय लगभग 75 मिलियन हेक्टेयर वन्य क्षेत्र इस समस्या से ग्रस्त है। भारत के पूर्वोत्तर राज्यो विशेषकर आसाम, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा आदि मे झूम खेती होती है। वर्ष 1984 के आकड़ो के अनुसार लगभग 63 हजार वर्ग कि० मी० वन क्षेत्र झूम खेती से प्रभावित था। समस्या की गभीरता का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि आइवरी कोस्ट (Ivory coast) मे दस वर्षों (1956-1966) मे ही 40 प्रतिशत वन क्षेत्र इस पद्धति से नष्ट हो गये। कभी-कभी वनाग्नि तथा रोग सक्रमण के कारण भी सम्पूर्ण वन नष्ट हो जाते है।

वनोन्मूलन के दुष्प्रभाव (Harmful effect of deforestation) –

वानन हनन से मानव की तात्कालिक आवश्यकताओं की आपूर्ति तो हो जाती है परन्तु पारिस्थितिक जन्य कई दीर्घकालीन एवम् अन्तर्सम्बन्धित समस्याओं का जन्म होता है। यहाँ हम वनोन्मूलन से उत्पन्न विभिन्न दुष्प्रभावो का सक्षिप्त विवेचन करेंगे।

(i) मृदा अपरदन – सघन वनावरण वर्षा के प्रभाव को रोकते है तथा मृदा को अपनी जडो से बाँधे रखते है। वनो को काटे जाने की स्थिति मे वर्षा के जल का प्रवाह बढ़ जाता है। जिससे वर्षा का जल अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे मिट्टी का कटाव करने मे सक्षम हो जाता है। अफ्रीका महाद्वीप मे किये गये विभिन्न शोध सर्वेक्षणो से ज्ञात हुआ है कि सघन वनाच्छादित क्षेत्रो मे 0.9% वर्षा जल बहकर जलधाराओं के साथ चला गया जबकि कृषि युक्त क्षेत्र मे यह प्रतिशत 17.4 रहा। इस प्रकार वनस्पति रहित नग्न भूभाग मे कुल वर्षा का 40% भाग जलधाराओं मे बहकर चला गया। वस्तुत जल बहाव का आयतन मुख्य रूप से भूक्षरण को प्रभावित करता है। उक्त सर्वेक्षण मे ही यह भी पाया गया कि सघन वनावरण मे जितना भूक्षरण हुआ, कृषि युक्त क्षेत्र मे उसका 320 गुना तथा नग्न भूमि से 768 गुना अधिक भूक्षरण पाया गया। मृदा अपरदन (Soil erosion) से मिट्टी की ऊपरी उपजाऊ परत (Top soil) शीघ्रता से बहकर चली जाती है। प्रकृति मे एक इच मोटी मृदा परत के निर्माण मे 500 से 1000 वर्ष का समय लगता है। अनुमान है कि हर वर्ष 2500 करोड टन मृदा कट कर बह जाती है। जिससे पृथ्वी का एक बडा हिस्सा बजर होता जा रहा है।

(ii) बाढ़ एवम् सूखा – "प्राकृतिक या दैवी" विपत्तियाँ कही जाने वाली बाढ़ तथा सूखा के पृष्ठ मे भी वही कारण है जो भूक्षरण के लिए जिम्मेदार है। जिस भूमि से वनस्पति कवच हट जाता है वहाँ भूक्षरण कई सौ गुना बढ़ जाता है। भूक्षरण से प्रभावित मृदा जलधारा के साथ बहकर नदी नालो मे पहुँच जाती है और उनके तल को ऊँचा या उथला कर देती है परिणाम स्वरूप उनकी जल ग्रहण क्षमता मे कमी के कारण जलस्तर बढ़ जाता है तथा किनारे तोड़कर जलवेग निकटवर्ती क्षेत्रो को जलाक्रान्त कर बाढ़ का रूप ले लेता है। कुछ वर्ष पहले तक भारत मे बाढ़ से 2 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र ही प्रभावित होता था, अब यह बढ़ते बढ़ते 5.9 करोड़ हेक्टेयर गया है।

इसी विनाश का दूसरा रूप है सूखा। जब भूमि पर वनस्पति नही रहती और बजरीकरण की प्रक्रिया शुरु हो जाती है तब वहाँ वर्षा की कमी होने लगती है। वर्षा की लगातार कमी से शनै शनै धरती सूख जाती है तथा भोजन, चारे और पीने के पानी की गभीर समस्या उत्पन्न हो जाती है। जल एवम् विद्युत आपूर्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्ष प्रति वर्ष देश मे सूखे का प्रकोप बढ़ता ही जा रहा है। अनुमान है कि देश का 35 प्रतिशत क्षेत्र अब सूखे से प्रभावित होने लगा है।

(iii) वन आधारित उद्योगों का सकट – विश्व मे जिस गति से वर्तमान मे वन विनाश हो रहा है उससे 21वी सदी के प्रथम चरण मे ही वनो पर आधारित कई उद्योगो जैसे कागज एवम् लुगदी उद्योग, रेशम उद्योग, लकड़ी व फर्नीचर उद्योग, जलयान निर्माण उद्योग, दिसासलाई उद्योग, लाख उद्योग आदि मे कच्चे माल की आपूर्ति का सकट पैदा हो जायेगा।

(iv) दुर्लभ प्रजातियाँ के विलुप्त होने का खतरा – प्राणियो तथा वनस्पतियो के विलोपन का मुख्य कारण प्रकृति मे हुए परिवर्तनो, प्राकृतिक वासो के विनाश, वनो के अंधाधुध कटाव, कृषि विस्तार, अधाधुध चराई तथा बढ़ते औद्योगिकीकरण और शहरीकरण से पर्यावरण मे हुए परिवर्तन है जिनके कारण आज की वन्य जातियाँ सकटापन्न और दुर्लभ जातियो की श्रेणी मे पहुच गई है। इस समय सिर्फ भारत की ही लगभग 15,000 वनस्पति *तथा 75,000 जन्तु जातियो का अस्तित्व खतरे मे है।*

(v) जलाशयो के अस्तित्व का खतरा – भूक्षरण मे लगातार बढ़ोतरी के कारण जलाशयो मे गाद (Silt) जमा होने की दर भी बढ़ती जा रही है। भारत मे करीब 5 लाख छोटे जलाशय तथा 487 मध्यम एवम् वृहद जलाशय है। भाखड़ा बाध जिसकी आयु 88 वर्ष मानी गई थी वह अब घटकर 47 वर्ष रह गई है। इसी प्रकार हीरा कुण्ड बाध जिसकी आयु 1?1 वर्ष निर्धारित की गई थी वह घटकर 45 वर्ष रह गई है। इसके *लिए बढ़ते भूक्षरण के साथ-साथ जलाशयो मे बढ़ता पानी का दबाव भी मुख्य रूप से* उत्तरदायी है। भारत के राष्ट्रीय बाढ़ आयोग (National Commission on Floods) की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत की नदियो मे सिर्फ 20 करोड एकड फूट पानी सम्भाल सकने की क्षमता है लेकिन वर्षा काल मे भारतीय नदियो मे लगभग 140 करोड एकड़ फूट पानी बहता है।

(vi) जलवायु परिवर्तन – जैसा पूर्व मे उल्लेख किया गया है कि वनो की अधाधुन्ध *कटाव से प्रकृति प्रदत् जल चक्र तथा वायुमण्डल मे कार्बन डाई आक्साइड एवम् आक्सीजन* का सतुलन प्रभावित होता है। वायुमण्डल मे कार्बन डाई आक्साइ की मात्रा मे वृद्धि होने से "हरित गृह प्रभाव" की समस्या उत्पन्न हो रही है। जल चक्र मे असंतुलन से बाढ़ तथा सूखा की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि वन विनाश के दुष्परिणाम अत्यन्त व्यापक, अपरिमित तथा दीर्घकालीन है जिन्हे विश्व व्यापी वनशोषण के इस काल खण्ड मे समुचित वन प्रबध *तथा वन सरक्षण द्वारा पुनर्नव्य या पुनर्स्थापित किया जा सकता है।*

वनों का सरक्षण एवम् संवर्धन – *हमारी कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 40 प्रतिशत* भाग वन क्षेत्र से प्राप्त होता है। अत कभी-कभी वन प्रबन्ध मे निहित व्यावसायिक दृष्टि से वन प्रबन्ध ही वन विनाश का कारण बन जाता है। वर्तमान मे वन सरक्षण के लिए समयोचित प्रबन्ध व्यवस्था की आवश्यकता है। जिससे वन तथा वनोत्पादनो की निर्बाध *आपूर्ति कायम रह। उक्त दृष्टि से निम्न सुझाव तथा प्रयास सहायक सिद्ध हो सकते है।*

(i) वन क्षेत्रो को आरक्षित (Reserved) किया जाना चाहिये। ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ कृषि सम्भव नही हो वहाँ पारिस्थितिकी साम्य चरम वन समुदाय (Climax forest community) को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिऐ।

(ii) वनाग्नि, कीट प्रकोप, रोग सक्रमण तथा अत्यधिक चराई से वनो की सुरक्षा *के लिए यथोचित प्रबन्ध किये जाने चाहिये। प्रबन्ध के यथोपयुक्त साधनो*

का उपयोग करने से पूर्व पारिस्थितिक सतुलन को ध्यान मे रखा जाना चाहिये ।

(iii) ऐसे प्रयास किये जाने चाहिये जिससे वनो से वृक्षो की कटाई के बाद भी वन समुदाय का वाछित पारिस्थितिकी स्तर बना रहे । इसके लिए वृक्षो के कटान के स्थान पर उनकी वृद्धि की सबसे उपयुक्त वन वर्धन (Silvi culture) तकनीक अपनाई जावे जिससे शीघ्र चरम समुदाय की पुनर्स्थापना सम्भव हो सके । इसके साथ वन सौन्दर्य, जैव विविधता, वन्य प्राणी वैभव, चारागाह तथा मनोरजन की दृष्टि से भी वनो को समुन्नत करने के यथोचित प्रयास किये जाने चाहिये ।

(iv) वृक्षारोपण करते समय एकल प्रजाति के वृक्षो (*Monoculture*) के स्थान पर बहुल प्रजाति या मिश्रित वन सम्पदा को प्रायमिकता दी जानी चाहिये। पर्यावरण सरक्षण के प्रयासो मे क्षुप (Shurb) व शाकीय (Herbaceous) *पौधो का भी उतना ही महत्व है जितना वृक्षो का । अत. इस बिन्दु पर* भी ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है ।

(v) वृक्षारोपण मे वृक्षो की प्राथमिकताए बदलने की भी आवश्यकता है । व्यापारिक *उपयोग के वृक्षो (यूक्लिपटस, पौपलर, चीड आदि) के स्थान पर* ऐसे वृक्षो को लगाना चाहिये जिससे मानव दैन्दिन आवश्यकताओ की आपूर्ति होती है तथा भू एवम् जल स्रोतो का सरक्षण भी होता है । अत वृक्षारोपण का पाँच "एफ" कार्यक्रम (Food, Fodder, Fuel, Fertilizer and Fibre) अपनाया जाना चाहिए । मरूस्थलीय एवम् पर्वतीय क्षेत्रो मे यूक्लिपटस जैसे पौधो को लगाने के सरकारी एवम् गैर सरकारी प्रयासो को रोका जाना चाहिए ।

(vi) वन सरक्षण के अन्य उपायो मे ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतो के प्रयोग पर विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रो मे प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये ।

(vii) *"मर्यादित उपयोग" नीति को तथा सप्रेक्षण (Communication) की विभिन्न* विधाओ को अपनाकर पर्यावरण सरक्षण के प्रति जन जागृति, जन क्रान्ति पैदा करना आवश्यक है ।

वन वर्धन (*Silviculture*) — *वन वृक्षो को उगाने की वैज्ञानिक विधियो को* वनवर्धन (Silviculture) कहा जाता है इसके लिए वृक्षारोपण से पूर्व विस्तृत कार्य योजना बनाई जाती है । वन क्षेत्रो को कई खण्डो (Blocks) मे विभाजित कर देते है तत्पश्चात् *इन खण्डो को पुन कई प्रखण्डो (Compartments) मे विभक्त कर कटीले तारो से घेराबन्दी* कर दी जाती है जिससे वन क्षेत्र को चारण जन्तुओं से सरक्षित रखा जा सके । अब वन पौधशाला से प्राप्त स्वस्थ पौधो को उचित समय पर वैज्ञानिक विधि से निश्चित दूरी एवम् पक्तियो मे गड्ढे खोद कर रोपित कर देते है । चार पाँच वर्षों तक इन प्रखण्डो को सुरक्षित रखा जाता है तथा तब यह वृक्षारोपण कुछ ऊँचा हो जाय तो तारो को हटाकर अन्य प्रखण्ड के घेर लेते है और यह प्रक्रम अपनाया जाता है । इस प्रकार से एक ही उम्र वाले वृक्षो के समूह को वृक्षारोपण (Plantation) कहते है । इस तरह वृक्षो की सतत् उपलब्धता बनी रहती है ।

वृक्षारोपण में होने वाले व्यय को कम करने तथा भूमिहीन कृषकों को रोजगार *उपलब्ध कराने की दृष्टि से टान्या विधि (Taungya System) अपनायी जाती है।* इसमें वृक्षारोपण के साथ-साथ उसी भूमि में कृषि की भी अनुमति दी जाती है। इस विधि से प्रथम वर्ष कृषक उस भूमि पर खेती करता है परन्तु दूसरे वर्ष निर्धारित तकनीक से वृक्षारोपण कर रोपण के मध्य में खाली पड़ी जमीन को कृषि कार्य के लिए उपयोग करता है तथा वन रोपण को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है।

गुल्मवन वन वर्धन की प्राचीन विधि है। इसमें कुछ दृढ़ काष्ठ वाले वृक्षों जैसे ओक (Oak), काजू, ऐशेज (Ashes), आल्डर (Alder) आदि को भूमि तक में न काटकर कुछ ऊपर से काटा जाता है तथा बचे हुए ठूठ (Stump) में पुनः नई शाखाएँ वृद्धि करती हैं जिन्हें पुनः नियमित आकार तक बढ़ाने के बाद काट लिया जाता है। यह प्रक्रम बारम्बार *चलाया जाता है। वनवर्धन की इस प्रणाली को गुल्मवन या कप्पी प्रणाली (Coppicing or Coppice System) कहा जाता है।*

वनों के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने वन क्षेत्रों को अपने अधिकार में लेकर पारिस्थितिकी दृष्टि से संवेदनशील वन क्षेत्रों में वन कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया है। हमारे देश में समय समय पर सरकारी तथा गैरसरकारी दोनों ही स्तरों पर वन संरक्षण के प्रयत्न किये जाते रहे हैं।

सरकारी प्रयास – सन् 1894 से चली आ रही वन नीति में सुधार कर 1952 में वनसंरक्षण और संवर्धन के लिए नई राष्ट्रीय वन नीति बनाई गई। जिसका उद्देश्य देश के कुल भूभाग के एक तिहाई भाग को वन क्षेत्र के अन्तर्गत लाना था परन्तु यह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हुई। वर्ष 1983 में इसे पुनः संशोधित किया गया। जुलाई 1952 में पूर्व प्रधान मंत्री स्व० जवाहर लाल नेहरू तथा कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी ने वनमहोत्सव (Van mahotsava) परम्परा डालकर जन सहयोग को प्रोत्साहित किया। सरकार ने राष्ट्रीय वन नीति और वन संरक्षण की दिशा में महत्वपूर्ण सरकारी कदम उठाए हैं। इसी क्रम में वर्ष 1985 में पर्यावरण मंत्रालय के रूप में स्वतंत्र मंत्रालय का गठन किया गया है।

वन संरक्षण अधिनियम 1980 के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति के बिना गैर वन्य कार्यों के लिए वन भूमि के इस्तेमाल करने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। विकास उद्देश्यों के लिए जहाँ वन भूमि का उपयोग करना अपरिहार्य हो जाता है वहाँ अनुमति–क्षतिपूर्ति के रूप में पुनः वन लगाने की शर्त पर दी जाती है। अधिनियम के प्रावधानों को और कठोर बनाने के उद्देश्य से 1988 के संशोधनों का उद्देश्य उन अधिकारियों के विरुद्ध भी कार्यवाही करना है जो इस कानून का उल्लंघन करते हैं। सरकार ने वन कटान की समस्या से निपटने के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के विकास का कार्य भी शुरू किया है। इसके अलावा रेलवे स्लिपरों और भवन निर्माण में लकड़ी के स्थान पर वैकल्पिक सामग्री के उपयोग की सम्भावनाओं का भी पता लगाया जा रहा है। लकड़ी के स्थान पर अन्य सामग्री का उपयोग करने वाले उद्योगों को सरकार वित्तीय प्रोत्साहन दे रही है।

सरकार प्राकृतिक वनो को कटाई से बचाने के लिए पहाडी इलाको मे एक हजार मीटर से अधिक ऊँचाई वाले स्थान पर पेडो की कटाई पर प्रतिबन्ध लगाने का विचार कर रही है। सरकार वन क्षेत्र के चार प्रतिशत क्षेत्र को वन्यजीवन अभ्यारण, राष्ट्रीय उद्यान तथा जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र के रूप मे भी विकसित कर रही है।

वनरोपण को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से 1985 मे राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड का गठन किया गया। इसका उद्देश्य जन सहयोग लेकर ईंधन व चारे की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रतिवर्ष पचास लाख हेक्टेयर परती भूमि मे वृक्षारोपण करना है। बोर्ड ने अपने सामाजिक वानिकी (Social forestry) तथा कृषि वानिकी (Farm forestry) के जरिये मार्च 1989 तक 71 60 लाख हेक्टेयर जमीन पर वन लगाये है।

विभिन्न राज्य सरकारो के वन विभागो ने वनो का सर्वेक्षण कर राष्ट्रीय वन नीति के आधार पर वन प्रबन्ध एवम् विकास की अनेक योजनाए बनाई है। जून 1981 मे भारतीय वन सर्वेक्षण (Forest survey of India) का गठन किया गया इसका मुख्य कार्य वन ससाधनो का समय समय पर मूल्याकन करना, विकास परियोजनाओं के प्रभाव का आकलन करना आदि हैं। इस सदर्भ मे अक्टूबर 1985 मे भोपाल मे वन प्रबन्ध सस्थान (Institute of forest management) की स्थापना की गई।

सरकार ने वन अनुसधान को नई दिशा देने के प्रयास के अन्तर्गत देहरादून मे केन्द्रीय वन अनुसधान सस्थान (Central forest research institute) की स्थापना की है। यह सस्थान वन सरक्षण तथा वनोपयोग के लिए वन सम्बन्धी समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। इस सस्थान के अन्तर्गत चार प्रादेशिक केन्द्र बैंगलोर, कोयम्बटूर, जबलपुर तथा बुरती हाट मे कार्यरत है।

हाल ही मे हिमालय पारिस्थितिकी व्यवस्था के सरक्षण एवम् वनो का ह्रास रोकने के लिए प्रभावी रणनीति बनाने के लिए गोविन्द वल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण सस्थान की स्थापना की गई है।

सरकार द्वारा अगले वित्तीय वर्ष मे राजस्थान मे लगभग 177 करोड रुपयो की जापान की आर्थिक सहायता से अरावली परियोजना लागू की गई है। इसके अन्तर्गत 10 जिलो के 15,947 वर्ग कि० मी० क्षेत्र मे पुनर्स्थापित किया जायेगा।

विभिन्न पचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत वन विभागो द्वारा तीव्रता से वृद्धि करने वाले, औद्योगिक ईकाईयो को कच्चे माल की आपूर्ति करने वाले तथा आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वनो को लगाया गया। इन्ही योजनाओं के अन्तर्गत सुदूर वन प्रदेशो तक पहुँच बनाने के लिए सड़को का निर्माण तथा मरम्मत का कार्य किया गया।

सरकार द्वारा वनाच्छादन को आवश्यक स्तर तक लाने को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा रही है। इस हेतु विभिन्न रोजगार व राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रमो मे सामाजिक वानिकी (Social forestry) का समावेश किया जा रहा है। सामाजिक वानिकी कार्यक्रमो का लक्ष्य सामाजिक तथा सार्वजनिक रिक्त भूमि पर ग्रामीण जन सहयोग से वन लगाकर लोगो की बुनियादी आवश्यताओं जैसे ईंधन, चारा, फल तथा ईमारती लकड़ी की पूर्ति सुनिश्चित

करना है । वृक्षारोपण एवम् सरक्षण कार्यक्रमो की सफलता जन सामान्य की सहभागिता पर काफी कुछ निर्भर करती है । सामाजिक वानिकी कार्यक्रम मे प्रमुखत ग्रामीण स्तर पर जन सहयोग सुनिश्चित होता है ।

गैर सरकारी प्रयास – वन सरक्षण के क्षेत्र मे हाल ही के वर्षों मे अनेक स्वय सेवी सस्थाओं की भूमिका तथा प्रयास सराहनीय रहे है । इन्होने जनजागृति का अनुपम उदाहरण कायम किया है । इनमे चमेली (उ० प्र०) का चिपको आन्दोलन कर्नाटक का एप्पिको (Appiko) आन्दोलन उदयपुर (राज०) का अरावली बचाओ अभियान होशगाबाद (म० प्र०) का मिट्टी बचाओ अभियान बम्बई (महाराष्ट्र) का बम्बई बचाओ अभियान विश्नोई समाज का खेजडी वृक्ष बचाओ आन्दोलन (खेजारली जोधपुर राजस्थान) आदि उल्लेखनीय प्रयास है । वन सरक्षण के जन प्रयास के अन्तर्गत चिपको आन्दोलन का इसी अध्याय मे अलग से वर्णन किया जायेगा ।

कृषि (Agriculture)

यह मानव द्वारा विकसित मुख्य कृत्रिम पारिस्थितिक तत्र है जिसने प्रकृतिक पारिस्थितिक तत्र को प्रतिस्थापित किया है । इसमे मानव द्वारा एक ही प्रजाति के पौधो का विकास सरक्षण तथा प्रबन्ध किया जाता है । आज विश्व की आधी से अधिक जनसख्या कृषि कार्यों मे लगी हुई है । भारत कृषि प्रधान देश है । देश की लगभग 80 प्रतिशत आबादी की आजीविका का साधन कृषि ही है । विगत कुछ वर्षो मे कृषि क्षेत्र मे वैज्ञानिक तथा तकनिकी विकास के साथ चहुमुखी प्रगति हुई है । अतीत मे मनुष्य कृषि कार्य के लिए समय समय पर भूमि बदलता रहता था क्योंकि कृषि के कारण मृदा के पोषण स्तर मे गिरावट आ जाती थी । जिससे लम्बे समय तक एक ही भूमि पर कृषि सभव नही हो पाती थी । औद्योगिक विकास के साथ रासायनिक उर्वरको का निर्माण, नई सकर किस्मो की उत्पति कृषि का यान्त्रिकीकरण उद्योगो के विकास के कारण एक ही भूमि पर दीर्घकाल तक कृषि कार्य सभव हो पाया है । इससे जहाँ एक ओर भूमि के सुधार, उर्जा का अधिक मात्रा मे सग्रह अधिक खाद्यान्न उत्पादन से जीवन की सम्भावनाओ तथा मानव जीवन को जीवनधारा मिली वही दूसरी तरफ इसके दुष्परिणामों मे भी अत्यधिक वृद्धि हुई है । उन्नत कृषि द्वारा खाद्यान्न उपलब्धि के कारण जनसख्या मे त्वरित वृद्धि होने से अनेक सामाजिक आर्थिक राजनैतिक तथा पर्यावरणीय समस्याऐं उत्पन्न हो गई । वस्तुत कृषि मनुष्य अभियत्रित पारिस्थितिकी तत्र है । कृषि के आधुनिकरण यात्रिकीकरण के फल स्वरूप कृषि अब समाज के कुछ व्यक्तियो तक ही सिमटकर रह गई है । इससे समाज मे आर्थिक वर्ग भेद बढा है बेरोजगारी को बढ़ावा मिला है लोगो का बड़ी सख्या मे रोजगार की तलाश मे शहरो की ओर पलायन भी बढा है । जिससे नगरो महानगरो की आबादी मे विगत वर्षों मे तीव्र वृद्धि हुई है इसका हमारे आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक नैतिक स्तर तथा मानवीय सम्बधो पर प्रतिकूल प्रभाव पडा है । कृषि के लिए वन क्षेत्रो का सफाया किया गया । कृषि मे उर्वरको के अत्यधिक प्रयोग अधिक सिचाई से भूमि अम्लीय, क्षारीय या लवणीय हो जाने की सम्भावना प्रबल हो गई है प्रयुक्त नाइट्रोजन युक्त उर्वरको का अधिकाश भाग अन्तत रासायनिक क्रिया द्वारा नाइट्रोजन के आक्साइड के रूप मे

विमुक्त होकर वायुमण्डल मे पहुँच जाते है। अत्यधिक सिचाई तथा वर्षा के कारण नाइट्रोजन तथा फॅास्फोरस के लवण पानी के साथ बहकर नदियों, नालों, जलाशयो तथा भूमिगत स्रोतो तक पहुँच कर उन्हें सदूषित कर देते है। इस प्रकार उनका पोषण स्तर बढ़ जाने से प्लवक तथा जल वनस्पति की जल स्रोत मे मात्रा बढ़ जाती है। जिससे जल स्रोत प्रदूषित होते है तथा सिंचाई भी प्रभावित होती है। सिचाई के भूमिगत जल के अधिकाधिक उपयोग से जलस्तर नीचा होता जाता है और भूमि की ऊपरी परत की शुष्कता बढ़ती जाती है जो अन्तत उसे मरूस्थल मे परिवर्तित कर देती है। राय चौधरी (1963) ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के अधिकाश भू भाग मे लवणीय भूमि की उपस्थिति के लिए दोष पूर्ण सिचाई और कृषि पद्धतियो को भी उत्तरदायी माना है। पुरातात्विक अन्वेषणों से यह प्रमाणित हो चुका है। अधिकाश रेगिस्तानो का निर्माण एवम् प्रसार मानवीय गतिविधियो विशेषकर कृषि के कारण हुआ है। राजस्थान मे आज जहाँ थार मरूस्थल है वहाँ कभी पर्याप्त वर्षा होती थी। भूगर्भीय जल भी सामान्य से अधिक था तथा चारो और लहलहाती वनस्पतियाँ थी। अतीत मे सघन और विस्तृत खेती वाली कृषि आधारित सभ्यताऐं अधिकाशत अब विलुप्त हो चुकी है जैसे–सिन्धु नदी घाटी सभ्यता।

जब भूमि कृषि योग्य न रहने पर खाली छोड़ दी जाती है तब तेज हवा के साथ मृदा अपरदन बढ़ जाता है तथा भूमि मरूस्थलीय होने लगती है। कृषि मे उन्नत सकरित किस्म के बीजो के उपयोग करने से कृषि उपज तो बढ़ जाती है परन्तु इसके लिए अधिक ऊर्वरक (खनिज), जल तथा ऊर्जा की आवश्यकता होती है और यदि इसमे कीटनाशको, रोग नाशको तथा पर्यावरणीय ह्रास की कीमत भी जोड़ दी जाए तो इसे किसी भी रूप मे आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नही कहा जा सकता है। खाद्यान्न उत्पादन मे वृद्धि के लिए कृषि मे किये गये औद्योगिकीकरण से मृदा अपरदन, लवणता मे वृद्धि, कार्बनिक तत्वो का मृदा से ह्रास, महामारी फैलने का अदेशा, कीटनाशक, शाकनाशी रसायनो के प्रयोग से जल, वायु तथा भू प्रदूषण का खतरा बढ़ता ही जा रहा है। इसलिए हमे आज पारिस्थितिकी सोच पर आधारित कृषि प्रबन्ध व्यवस्था अपनाने की आवश्यकता है। जिसमे मृदा सरक्षण, कीटनाशक, रोगनाशक, शाकनाशक आदि रसायनो के न्यूनतम उपयोग, रसायनिक ऊर्वरको के स्थान पर कार्बनिक खाद तथा अपशिष्ट पदार्थों के उपयोग पर ध्यान केन्द्रित किये जाने की आवश्यकता है। कृषि भूमि मे मृदा क्षरण को रोकने के लिए वर्ष भर वनस्पति आवरण रखा जाना चाहिये। कृषि मे जहाँ तक सम्भव हो एक ही स्थान पर एक ही जाति के स्थान पर भिन्न जाति के पौधो की मिश्रित खेती की जानी चाहिए। भूमि की उर्वरकता, खरपतवार तथा कीटो की अनेक समस्याओं पर फसल बदल बदल कर उगाने से कुछ हद तक नियत्रण पाया जा सकता है।

घास के मैदान और चारागाह – मनुष्य अतीत से ही अनेक शाकाहारी पशुओं को खेती, सवारी, बोझा ढोने, गाड़ी खिचने के अतिरिक्त दुध, फर, चमड़ा, ऊन आदि के लिए पालता रहा है। पशुपालन की दृष्टि से घास के मैदान तथा चारागाहो का विशेष महत्व है। विश्व के कुछ भूभागो की जलवायु घास या घास के समान पौधों की वृद्धि के अनुकूल है तथा जहाँ इन के चरम समुदाय पाये जाते है जैसे – स्टेपी, प्रेयरी, सवाना।

भारत की जलवायु विशेषत काष्ठीय वनस्पति के अनुकूल है तथापि कई स्थानो पर शाकीय पौधे तथा घास के मैदान भी पाये जाते है जो अधिकाशत. अतिचारण अर्थात् जैविक विक्षोम या आग के प्रभावो से विकसित हुए है । इनमे अफ्रीका तथा मध्य उत्तरी अमेरिका के चारागाह प्रमुख है । भारत मे पशुधन की सख्या बहुत अधिक है परन्तु घास स्थलो की कमी के कारण स्वस्थ नही है । इसलिए घास स्थलो का क्षेत्रफल तथा पौध उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त पारिस्थितिकी दृष्टिकोण से भी घास के मैदान भू सरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है । अतिचारण (Over grazing) के दुष्परिणाम के अन्तर्गत प्राय पादप समुदाय का अनुक्रमण (Succession) विपरित दिशा मे होने लगता है । घास स्थल से वनस्पतियो के विलुप्त होने के कारण भूक्षरण प्रारम्भ हो जाता है । अधिकाश पशु विशेष प्रकार के पौधो या घास को ही चरते है जिससे इन उपयोगी पौधो की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पडता है । इस प्रकार समुदाय मे अवाछित पादप ही रह जाते है तथा समुदाय के बाहर से भी अवाछित पौधे समुदाय मे प्रवेश कर जाते है । मृदा के सख्त होने तथा मृदा के ग्रथन मे परिवर्तन आने से मृदा की जल धारण क्षमता कम हो जाती है और जल गुरुत्वाकर्षण के भूमिगत जल स्रोतो मे न जाकर सतह पर ही बह जाता है । साथ ही साथ मृदा की पोषकता भी नष्ट होने लगती है । चारण के कारण बीजो का उत्पादन घट जाता है तथा भूमिगत तनो पर स्थित कलिकाओं द्वारा वर्धी प्रजनन की गति बढ़ जाती है । पारिस्थितिकी दृष्टि से उपयुक्त प्रबन्ध के लिए ऐसी घास या पौधो को जिनका पोषण स्तर उत्तम हो, मुलायम हो, पशुओं द्वारा पसन्द किये जाते हो और चारण दाब (Grazing pressure) को सहने की क्षमता रखते है उन्हे उगने के लिए उचित वातावरण दिया जाना चाहिए । प्रबन्ध के ही अन्तर्गत इन चारागाहो की प्राथमिक उत्पादकता ज्ञात की जानी चाहिए । तदुपरान्त उचित प्रबन्ध प्रणाली अपनाई जानी चाहिए । घास के मैदानो मे प्राय दो प्रकार के पौधे पाये जाते है ।

(i) जिनकी वृद्धि चारण द्वारा प्रभावित होकर शीघ्रता से कम हो जाती है ।

(ii) जिनकी वृद्धि चारण के कारण अधिक हो या अप्रभावित रहती है ।

केन्द्रीय घास स्थल और चारण अनुसधान केन्द्र, झासी इसी दिशा मे कार्य कर रहा है । चारागाहो के उचित प्रबन्ध के लिए निम्न विधिया काम मे लाई जाती है ।

(1) स्टॉक लेवल पॉलिसी (Stock level policy) प्रत्येक चारागाह (Pasture) की अपनी एक आदर्श वहन क्षमता होती है अर्थात् निश्चित क्षेत्रफल का चारागाह, चारण पशुओं की एक निश्चित औसत सख्या को ही वहन करने की क्षमता रखता है जबकि पारिस्थितिकी कारक अनुकूल हो । चारागाह की उत्पादकता जलवायु कारक पर निर्भर करती है । इसलिए प्रत्येक चारागाह मे पशुधन की एक ऐसी सख्या सुनिश्चित की जानी चाहिये जिससे अतिचारण (Over grazing) तथा पोषण के अभाव मे चारागाह या पशुधन की हानि न हो सके । इसके लिए सामान्यत· वहन क्षमता का 60 या 70 प्रतिशत तक पशुधन की सख्या रखी जाती है । इस तरह चारागाह को अत्यधिक चराई से या सुखा के कारण उत्पादन घटने की दशा मे पोषण के अभाव से बचाया जा सकता है ।

(2) डेफर्ड ग्रेजिंग (Deferred grazing) इस प्रक्रिया के अन्तर्गत चारागाह को प्रमुखत: तीन भागो मे विभक्त किया जाता है प्रथम भाग मे पशुधन को दो वर्ष के लिए

रखा जाता है। तथा अन्य दो भागो को चराई से मुक्त रखा जाता है। इस प्रकार चारण के अभाव मे इन मे पर्याप्त वृद्धि होने से पादप जैव भार (Biomass) बढ़ जाता है। अब तीसरे और चौथे वर्ष मे मवेशियो को दूसरे भाग मे रखा जाता है और प्रथम और तृतीय भाग को बिना चारण (Ungrazed) के छोड़ दिया जाता है। अन्त मे पाँचवे और छठे वर्ष मे पशुओं की तीसरे भाग मे छोड दिया जाता है तथा भाग प्रथम और द्वितीय को चारण से मुक्त रखा जाता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया पुन पुन अपनाई जाती है। इस तरह चारागाह को स्थायी रूप से नष्ट होने से बचाया जाता है तथा वर्ष भर चारागाह पोषक घास से भरा रहता है। यहाँ पशुधन की औसत सख्या का ध्यान रखना आवश्यक है। यह उस चारागाह की वहन क्षमता (Carrying capacity) से अधिक नही होना चाहिये।

(3) **अग्नि (Fire)** चारण के अयोग्य जातियो को नष्ट करने के लिए कभी कभी एक वर्ष या अधिक के अन्तराल पर चारागाह को जला दिया जाता है। जिससे चारागाह मे इन जातियो की प्रमुखता स्थापित न हो सके। यदि आग लगने के पश्चात् कुछ समय तक वर्षा नही होती तथा तेज हवा से राख अन्यत्र उड़कर नही जाती है तो उस चारागाह के उपजाऊपन से अत्याधिक वृद्धि हो जाती है क्योंकि राख मे पोषक खनिज उपस्थि रहते है।

(4) **रीसीडिंग (Reseeding)** चारागाह की मृदा उर्वरकता बनाये रखने के लिए तथा घास की अच्छी वृद्धि के लिए कभी कभी घास तथा लेग्यूम (जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते है) का उपयुक्त मिश्रण को बीज द्वारा उगाया जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया मे बड़े क्षेत्र मे बीज वितरण के लिए बीजो का हवाई छिड़काव किया जाता है।

वन्य जीव संरक्षण

यथार्थ परक परिभाषा के अनुसार वनो या अपने प्रकृतिक आवासो मे पाये जाने वाले अपालित (Non-domesticated) जगली पशु-पक्षियो को वन्य प्राणी कहा जाता है। इसमे पेड पौधो को भी सम्मिलित कर लेने पर वन्य जीवन (*Wild life*) की सज्ञा दी जाती है। किसी भी पारिस्थितिक तत्र की कार्य प्रणाली तथा सरचना का अध्ययन करने पर हमे इनका महत्व स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। किसी भी पारिस्थितिक तत्र मे इन जैविक घटको का ऊर्जा प्रवाह (Energy flow) और खनिज पदार्थों के परिसचरण मे अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ये ही तत्र को स्थायीत्व प्रदान करते है। इसके अतिरिक्त इन वन्य प्राणियो से प्रोटीन, भोजन फर, चमड़ा तथा अन्य उत्पाद प्राप्त होते है। इस आर्थिक लाभो के अतिरिक्त वन्य जीवन हमे सौन्दर्य बोध, आध्यात्मिक चिन्तन का वातावरण तथा मनोरजन (पर्यटन, आखेट प्रकृति, वास आदि) प्रदान करते है। अनादिकाल से मनुष्य वन्य प्राणियो का शिकार करता आया है। अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए मनुष्य ने कुछ को पालतू बनाया तो कुछ का शिकार किया। उसके प्राकृतिक वास से वनो को काटकर उसके अस्तित्व को सकट म डाल दिया है। आज वनो के साथ साथ वन्य प्राणियो का भी द्रुत गति से विनाश होता जा रहा है। जिसके फलस्वरूप पारिस्थितिक सतुलन बिगड़ रहा है

और हम विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के शिकार हो रहे है। मानव की अतिक्रमण प्रवृति, स्वार्थ परता, लोलुपता तथा निर्मम दृष्टि के कारण सम्पूर्ण जैवमण्डल की पारिस्थितिक व्यवस्था असंतुलित होती जा रही है। वन्य जीवन के प्रति प्रेम और आदर भावना, भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रही है। पुराणो ने वन्य प्राणियो को देवी देवताओं के वाहन के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है। उसी भारत वर्ष मे वन्य प्राणियो का तीव्रता के ह्रास किया जा रहा है। भारत की विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियो के कारण यहाँ के वन्य जीवन मे भी विविधता पायी जाती है। विश्व की ज्ञात लगभग ढाई लाख वनस्पतियो मे पन्द्रह हजार सिर्फ भारत मे है और ज्ञात पन्द्रह लाख प्राणियो मे से पचहत्तर हजार भारत की देशज है।

उक्त दृष्टि से वन्य प्राणियो को भी प्रमुख संसाधन माना जाता है तथा इसके लिए प्रबन्ध की विशेष आवश्यकता है। प्राय: मत्स्य पालन को इससे पृथक रखा जाता है परन्तु सभी प्राणियो के लिए पारिस्थितिकी सिद्धान्त समान रूप से लागू होते है। संरक्षण की दो प्रमुख विचार धाराएँ या विधियाँ प्रस्तुत की गई है।

(i) स्वास्थाने संरक्षण (In situ conservation)
(ii) उत्स्थाने संरक्षण (Ex situ conservation)

(i) स्वस्थाने संरक्षण (In situ conservation) — इसके अन्तर्गत जीव जन्तुओं तथा पौधो का संरक्षण उनके प्रकृतिक वासो मे ही या मानव निर्मित कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र का यथोचित प्रबन्ध करके किया जाता है। संरक्षण की यह विधि अधिक उपादेय है। इसी उद्देश्य से अनेक क्षेत्रो को कानून द्वारा सुरक्षित क्षेत्र (Protected areas) घोषित किया जाता है। राष्ट्रीय उद्यान (National parks), अभ्यारण्य (Sancturies) जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere reserves), प्राकृतिक स्मारक (Natural monuments) आदि इसी उद्देश्य से बनाये गये है। पालित जन्तुओं के लिए यह विधि उपयुक्त नही है।

(ii) उत्स्थाने संरक्षण (Ex situ conservation) — जीवों को उनके मूल स्थान से हटाकर अन्यत्र संरक्षण प्रदान करने की इस विधि को उत्स्थाने संरक्षण कहा जाता है। इसी उद्देश्य से आनुवंशिक संसाधन केन्द्र (Genetic resources centres), जन्तु उद्यान (Zoological parks), वनस्पति उद्यान (Botanical gardens) की स्थापना की जाती है। जीन बैंक (Gene bank) की अवधारणा भी इसी पर आधारित है। हमारे देश मे भी राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन संस्थान (National Bureau of Plant Genetic Resources) की स्थापना इसी दृष्टि से की गई है।

आज भी हमारे देश मे पक्षियो की लगभग 1200 जातियाँ, 2100 उपजातियाँ, स्तनधारियो की 500 जातियाँ तथा कीटो की 20,000 से अधिक जातियाँ पाई जाती है। आज जब हमे इनके विलोपन का अहसास हुआ है तब तक स्तनधारियो की 66, पक्षियो की 38 तथा उभयचरो एवम् सरीसृपो की सम्मिलित रूप से लगभग 18 जातियाँ विलुप्त हो चुकी है। प्रो० टी० एन० खुसू (1984) के अनुसार भारत मे पौधो की लगभग 134, स्तनधारियो की 18, पक्षियो की 47 तथा सरीसृपो की 15 जातियाँ विलोपन के खतरे मे है। इस प्रकार विभिन्न पशुपक्षियो की 600 जातियाँ तथा पौधो की 3000 जातियाँ संरक्षित

किये जाने की आवश्यकता है। भारत मे अधिकाधिक सख्या मे पाये जाने वाला शिकारी चीता तो विलुप्त ही हो गया है। बगाल, मणीपुर, मध्यप्रदेश का शाही चिता जिसकी अनुमानित सख्या कभी 40,000 थी, 1972 की गणना मे घटकर लगभग 1827 ही रह गयी थी। लगभग 200 एशियाई शेर गुजरात के "गिर" जगलो तक ही सीमित रह गया है। दुर्लभ भारतीय श्वेत बाघ बीसवी सदी के प्रारम्भ मे असम, उडीसा और मध्यप्रदेश मे देखे गये परन्तु ये वन्य जीव विश्व मे सर्वप्रथम रीवा (म० प्र०) रियासत के दक्षिण पूर्वी जगल मे देखे गये थे। इसके अतिरिक्त देश के विभिन्न भागो मे पाये जाने वाले हिरण भी सकटापन्न प्राणियो मे गिने जाने लगे है। ब्रा-एण्टलार्ड हिरण की सख्या 1977 तक सिर्फ 18 रह गई थी। भारत के मैदानी भागो मे पाया जाने वाला एन्टीलोप तथा ब्लैक बक (काला हिरण) जो कभी हजारो की सख्या मे पाया जाता था। आज देश के कुछ भागो मे कठिन सरक्षण के कारण अस्तित्व मे रह पाया है। सोहन पक्षी (बस्टर्ड) कभी पजाब, मैसूर, सिन्ध, कठियावाड़ तथा उड़ीसा मे बहुतायत मे पाया जाता था , आखेट के कारण लुप्त प्राय. हो गया है। जैसलमेर, गुजरात और महाराष्ट्र मे ही कुछ पक्षी पाये जाते है। गुलाबी सिर वाली बतख तथा जेर्डन्स कोरसर तो भारत से लुप्त ही हो गई है। गगा के घडियाल, मगरमच्छ आदि भी अधिक शिकार के कारण विलोपन के कगार पर पहुँच गये है। विलोपन के ये उदाहरण तो सिर्फ भारत वर्ष से है। विश्व मे तो यह स्थिति और भी भयावह है।

विलोपन के कारण-वैसे तो प्रकृति मे विलोपन एक जैविक सत्यता है लेकिन असमय, अकाल मृत्यु या विलोपन, वह भी मानवीय गतिविधियो के कारण, पारस्थितिकी सतुलन के लिए गम्भीर खतरा है। वन्य जीवन विलोपन के मुख्य कारण प्रकृति मे हुए परिवर्तनो, प्राकृतिक वासो के विनाश, वनो का अविवेक पूर्ण दोहन, कृषि विस्तार, अत्याधिक चारण, वन्य जीवो से प्राप्त होने वाली खालो, फरो, विलासी भोजन, प्रसाधन सामग्रियो, सजावटी चीजो और मनोरजन के लिए अधिक शिकार और अवैध व्यापारिक हित तथा बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण और शहरी करण से पर्यावरण मे हुए परिवर्तन आदि है। जिनके कारण आज कई वन्य जातियाँ सकटापन्न और दुर्लभ जातियो की श्रेणी मे पहुँच गई है।

सरक्षण हेतु प्रयास – भारत सरकार ने वन्य जीव सरक्षण अधिनियम 1887 से लागू किया। स्वतत्रता के पश्चात् वर्ष 1952 मे भारत सरकार ने वन्य जीवन सरक्षण हेतु "भारतीय वन्य जीवन बोर्ड (IBWL) की स्थापना की गई और उसके द्वारा उनकी सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय पार्क, वन्य अभ्यारण्य आदि बनाये गये। विश्व स्तर पर वन्य जीवो के सरक्षण हेतु यूरोप के सम्पन्न व्यक्तियो द्वारा "वर्ल्ड वाईल्ड फड (WWF)" की स्थापना की गई। इसकी एक शाखा भारत मे दिल्ली मे है। वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम (1972) मे सशोधन किया गया। इसके अनुसार उन प्रजातियो के व्यापार व शिकार पर प्रतिबध लगा दिया गया है जिनका अस्तित्व खतरे मे है तथा उनसे प्राप्त चीजो के व्यापार पर भी पाबन्दी लगा दी गई है। भारत मे बाघो की गिरती आबादी को दृष्टि मे रख कर उनके सरक्षण के उद्देश्य से IBWL की सस्तुति पर अप्रैल 1973 से बाघ परियोजना (Project

tiger) का शुभारम्भ (कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान से) किया गया और सारे देश मे 28,017 वर्ग कि० मी० क्षेत्र के अन्दर 14 राज्यो मे 18 बाघ सुरक्षित क्षेत्र बनाये गये है। वर्ष 1989 तक देश मे 67 राष्ट्रीय उद्यान तथा 394 अभ्यारण्य स्थापित किये गये जो 1,41,298 वर्ग कि० मी० क्षेत्र मे फैले हुए है। यह देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग चार प्रतिशत है। देश मे 13 प्रमुख चिडियाघर हैं मैसूर के चिडियाघर मे सबसे अधिक 87 जातियो के 518 वन्य जीव रहते है। दुर्लभ प्राणियो की खालो के अवैध व्यापार को रोकने के लिए भारत ने 1976 मे "कन्वेनशन ऑफ इटरनेशनल ट्रेड इन एन्डेजर्ड स्पीशीज ऑफ वाइल्ड फौना एण्ड फ्लोरा" समझौते पर हस्ताक्षर किये और इसी के तहत 1976 मे साँपो की कची खालो के व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा था।

संरक्षण परियोजनाये — इस विशिष्ट पारिस्थितिक तत्र की सुरक्षा तथा आनुवशिकी विविधता बनाये रखने के उद्देश्य से 14 जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere reserves) की स्थापना की योजना है। जिनमे से 7 नील गिरी (कर्नाटक), नन्दादेवी (उत्तर प्रदेश), नाक्रेक (मेघालय), ग्रेट निकोबार (अण्डमान निकोबार द्वीप समूह), मानस (असम), सुन्दर वन (पश्चिमी बगाल) तथा मन्नार की खाडी (तमिल नाडू) की स्थापना की जा चुकी है। इन जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र मे राष्ट्रीय उद्यान जैसे मौजुदा सरक्षित क्षेत्रो को शामिल नही *किया जाता है। जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र का उद्देश्य पर्यावरण प्रणालियो की आनुवशिकी* विशिष्टताओं को सुरक्षित रखना है। शेष सात जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र है — नामदाफा (अरुणाचल प्रदेश), उतराखण्ड (उत्तर प्रदेश), थार रेगिस्तान (राजस्थान), कच्छ का छोटा रण (गुजरात), उत्तरी अण्डमान द्वीप (अण्डमान निकोबार द्वीप), कान्हा (मध्य प्रदेश) तथा काजीरगा (आसाम)। यह कार्यक्रम वर्ष 1973 से यूनेस्को (UNESCO) ने विश्व स्तर पर आरम्भ किया है। सकटापन्न प्रजातियो की सुरक्षा के लिए आरम्भ परियोजनाओं मे बाघ परियोजना सफल रही है। इसी तरह 1972 से गुजरात मे आरम्भ गिर शेर *अभ्यारण्य परियोजना (1,412 वर्ग कि० मी०) से एशियाई शेरो (Panthera lion persica)* की सख्या मे स्थिरता आई है। इस पशु विहार को अब राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया गया है। इसी तरह घडियालो और मगरमच्छो की खाल की बढ़ती माग के कारण इसकी सकटापन्न प्रजातियो को घडियाल प्रजनन परियोजना (उडीसा) के अन्तर्गत बचा लिया गया है। FAO (Food and Agriculture Organisation) की सस्तुति पर वर्ष 1975 से आरम्भ इस परियोजना के अन्तर्गत 16 केन्द्र विभिन्न राज्यो मे खोले गये है, इन्ही मे से एक *राजस्थान के कोटा जिले मे स्थापित किया गया है। यह परियोजना भी काफी* सफल रही है। हगुल या कश्मीरी मृग, कस्तूरी मृग तथा ब्रा एण्टलार्ड मृग या थामिन के लिए भी तीन अलग-अलग परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई है। हिमालयी कस्तूरी मृग परियोजना केदार नाथ अभ्यारण्य मे शुरू की गई है। ब्रा-एण्टलार्ड मृग परियोजना मणीपुर के केवल लाजो पार्क मे है। इसी तरह 600 प्रजातियो के भारतीय आर्किड के हो रहे अवैध व्यापार ने इनके लिए भी सकट उत्पन्न कर दिया है। खासी हिल, सिकिम्म को इसी दृष्टि से सरक्षित क्षेत्र घोषित *किया गया है। वनो की रक्षा के लिए हिमालय क्षेत्र का चिपको आदोलन तथा* कर्नाटक का एप्पिको आदोलन बहुत सफल हुए है। इन्ही परियोजनाओं से

अर्जित उपलब्धियो, वन्य जीव सरक्षण जन चेतना पैदा करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष अक्टूबर के प्रथम सप्ताह मे "वन्य प्राणी सप्ताह" मनाया जाता है।

वन्य जीवन के प्रबन्ध और सरक्षण के लिए स्वस्थान विधियो के साथ, उस पर्यावरण की वहन क्षमता, जीवो की पारिस्थितिकी आवश्यकताओं और सहन सीमाओं तथा वृद्धि दर का भी अध्ययन किया जाना चाहिये। वन्य पौधो मे आनुवशिकी गुणो का अक्षय भण्डार है जिनका उपयोग समय समय पर सकरण मे किया जाता रहा है। इस दृष्टि से भी वन्य जीवन का सरक्षण किया जाना चाहिये।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति संसाधन संरक्षण संगठन आई० यू० सी० एन० (International Union for Conservation of Nature and Natural Resources)-- यह एक स्वतत्र अन्तर्राष्ट्रीय सगठन है जिसका गठन वर्ष 1948 मे हुआ था। इसका मुख्यालय स्वीटजरलैण्ड के मोरगस (Morges) जनपद मे है। इसके अध्यक्ष प्रख्यात भारतीय कृषि वैज्ञानिक डॉ० एम० एस० स्वामीनाथन है। इस संगठन के तत्वाधान मे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पौधो तथा जन्तुओं के सरक्षण के लिए परियोजनाऐं बनाई तथा क्रियान्वित की जाती है। यह सगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न कार्यशील सस्थाओं जैसे UNO, FAO, *UNESCO आदि मे समन्वय का कार्य भी करती है।* इसी सगठन के उत्तर जीविता सेवा आयोग (Survival service commission or SSC) ने विश्व स्तर पर लुप्तप्राय लगभग 1000 प्राणी जातियो को अपनी लाल आकड़ो की पुस्तक (Red data book) मे सूचीबद्ध किया है। इस सगठन ने वर्ष 1981 मे FAO, UNESCO, UNEP तथा WWF के सहयोग तथा आर्थिक अनुदान से प्राकृतिक ससाधनो के सरक्षण हेतु एक प्रलेख (document) तैयार किया। जिसे विश्व सरक्षण युक्ति (World conservation strategy) कहा गया। इस प्रलेख को 20 खण्डो तथा प्रत्येक खण्ड को अनेक पैरा मे विभक्त किया गया है। जिनमे सरक्षण हेतु अग्रताए (Priorities) तय की गई है तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वयन का आह्वान किया गया है। अनेक देशो के साथ भारत ने भी वर्ष 1980 मे ही इसकी अनुशसाओं को स्वीकार कर लिया है। इस सगठन ने लगभग 40 अन्तर्राष्ट्रीय परिपाटियो (International conventions) की एक सूची बनाई है। जिसका अनुपालन विभिन्न देशो द्वारा अपेक्षित है। इन परिपाटियो मे निम्न चार प्रमुख है –

(i) आर्द्र भूमि परिपाटी (Wet land convention) यह आर्द्रभूमि (wet land) के सरक्षण से सम्बन्धित है।

(ii) विश्व धरोहर परिपाटी (World heritage convention) यह विश्व धरोहरो के सरक्षण के सदर्भ मे है।

(iii) कन्वेनशन ऑन इन्टरनेशनल ट्रेड इन एन्डेजर्ड स्पीशीज ऑफ़ वाईल्ड फौना एण्ड फ्लोरा (Convention of International trade in endangered species of wild fauna and flora) सकटापन्न जातियो के प्रबन्ध व सरक्षण के सदर्भ मे।

(iv) प्रवासी जातिया परिपाटी (Migrating species convention) इसके अन्तर्गत चक्रीय या सिजनल (Seasonal) प्रवास करने वाली जीव जातियो को सरक्षण प्रदान किया जाता है।

वर्ष 1989 मे IUCN ने WWF के साथ मिलकर वनस्पति उद्यान सरक्षण युक्ति (Botanical garden conservation strategy) का प्रकाशन किया। जिसमे पादप आनुवशिक ससाधनो (Plant genetic resoures) के सरक्षण मे वनस्पति उद्यानो (Botanical gardens) के योगदान को प्रतिपादित किया गया है। इस तरह IUCN विश्व की विभिन्न देशो को मार्गदर्शन तथा आपसी समन्वयन को निरन्तर प्रोत्साहित कर रहा है।

सकटापन्न प्राणी तथा पादप – लाल आंकड़ों की पुस्तक (Endangered animals and plants -- Read Data Book)-- IUCN के उत्तर जीविता आयोग (Servival service commission or SSC) के 1966 के सर्वेक्षण के आधार पर विश्व सकटापन्न जीवजन्तु तथा पौधो की सूची को लाल आकड़ो की पुस्तक (Red Data Book) मे प्रकाशित किया है। दो खण्डो (Volume) मे प्रकाशित इस पुस्तक मे स्तनधारी जन्तुओं (Mammals) की 305 जातियाँ, पक्षियो की 400 जातिया, मछलियो की 193 जातिया तथा उभयचरो तथा सरीसृपो की 138 जातियो के लुप्तप्राय होने का खतरा है। पुस्तक मे वर्णित सूची के अनुसार विश्वभर मे अनुमानत 25,000 जातिया सकटापन्न है। हमारे देश मे भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग (Botanical Survey of India – BSI) द्वारा वर्ष 2000 A D तक भारत के वनस्पति जात (Floras) का प्रकाशन 24 खण्डो मे होने की आशा है। अभी तक देश एक 3/5 भाग का सर्वेक्षण कार्य सम्पन्न हो चुका है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग द्वारा वर्ष 1992 तक देश की सभी सकटापन्न या सकटग्रस्त पादप जातियो की सूची तैयार कर ली जायेगी। भारत सरकार के पर्यावरण विभाग (Department of Environment – DOE) ने उक्त सर्वेक्षण के सहयोग से सकटापन्न जातियो की सूची प्रकाशित की है। जिसे लाल आकडो की पुस्तक कहा गया है। इस पुस्तक के दो खण्ड क्रमश वर्ष 1988 और 1989 मे प्रकाशित हो चुके है। जिसमे क्रमश 235 तथा 200 सकटग्रस्त जातियो के नाम सूची बद्ध है। इस समय विश्व के दस प्रतिशत पुष्पधारी पौधे विलोपन के खतरे के अन्तर्गत है।

इसी तरह भारतीय जन्तु सर्वेक्षण विभाग (Zoological Survey of India ZSI) द्वारा वर्ष 2000 A D तक भारत के प्राणीजात (Fauna) के 6 खण्डो मे प्रकाशन का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। अब तक देश के लगभग 1/3 भाग का सर्वेक्षण कार्य पूर्ण हो गया है। राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास सग्रहालय के अनुसार भारत मे 137 जीव जन्तु सकटापन्न अवस्था मे है। भारतीय जन्तु सर्वेक्षण विभाग द्वारा सकटग्रस्त जन्तुओं की रेड डाटा बुक के वर्ष 1995 तक प्रकाशित होने का अनुमान है। विलोपन के इस आसन्न खतरे के फल स्वरूप देश मे वन्य जीवन सरक्षण को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है। आज तक भारत मे अनुमानत लगभग 200 जन्तु जातिया विलुप्त हो चुकी है। सकटग्रस्त कुछ जातिया निम्न प्रकार है –

गैंडा (Rhinoceros), नीलगाय (Nilgai) गिर सिंह (Gir Lion) बाघ (Tiger), मगरमच्छ (Crocodile), सोहन पक्षी या सारग (Bustard) कृष्णसार (Black Buck), चीतल (Chinkara), बारह सिंगा (Antelope), हसावर (Flamingo), हवासिल (Pelican), धूसर बगला (Grey Heron), पर्वतीय बटेर (Mountain Quail) आदि।

चिपको आन्दोलन (Chipko Movement) –

वनो की जीवन धारित उपयोगिता तथा वनो के विनाश के दुष्परिणामो के परिपेक्ष्य मे हिमालय क्षेत्र मे सातवे दशक की शुरूआत मे स्थानीय ग्रामीण जनता द्वारा जगलो की अन्धाधुध कटाई रोकने के लिए पेड़ो को बाह भर कर लिपट जाने के सामुहिक शातिपूर्ण सघर्ष के रूप मे चिपको आन्दोलन वन प्रबन्ध की एक युक्ति के रूप मे शुरू हुआ, पर बाद के वर्षों मे यह जन आन्दोलन सुदूर के गाँव-गाँव मे हजार हजार रूपो मे अभिव्यक्त हो रहा है। इस आन्दोलन का नेतृत्व एवम् प्रसार राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्री सुन्दर लाल बहुगुणा व चण्डी प्रसाद भट्ट द्वारा किया गया। वन सरक्षण युक्ति के रूप मे जन आन्दोलन का सर्वप्रथम दृष्टान्त हमारे प्रान्त राजस्थान मे मिलता है। जहाँ वर्ष 1731 मे जोधपुर से 25 कि० मी० की दूरी पर स्थित खेजडली ग्राम की विश्नोई महिला अमृता देवी द्वारा इस क्षेत्र की प्रमुख प्रभावी वृक्ष खेजड़ी (Prosopis cineraria) या जाँटी वृक्ष को राजाज्ञा के तहत काटे जाने के प्रबल विरोध के रूप मे किया तथा इस कृत्य को अपने धर्म विरूद्ध माना। उस समय इस वृक्ष की रक्षा करने मे स्वय अमृता देवी, उनके पति रामोजी तथा पुत्रिया (आशीबाई, रतनी बाई तथा भगवती) सहित 363 विश्नोइयो ने अपने प्राणो का उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् तात्कालीन महाराजा अजीत सिंह ने क्षेत्र मे खेजडी वृक्ष के कटान पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगा दिया। इस आन्दोलन के शहीदो की स्मृति मे प्रतिवर्ष यहाँ एक मेला आयोजित किया जाता है। जिसमे पर्यावरण सरक्षण के इन प्रयासो के जीवन्त रखने के प्रण को दोहराया जाता है। इसी तरह का एक आन्दोलन "रूख भाईला" बासुवाड़ा क्षेत्र की आदिवासी महिला लाड़की ने शुरू किया था। इसी प्रकार के अन्य जन आन्दोलन हिमालय क्षेत्र मे और भी हुए है लेकिन इसमे "चिपको आन्दोलन" सर्वाधिक सफल एवम् महत्वपूर्ण रहा है।

चिपको आन्दोलन की पृष्ठ भूमि – सास्कृतिक चेतना और प्रगति के इस दौर मे स्वतन्त्रता के बाद हिमालय के वन ससाधनो का वृहद स्तर पर व्यावसायिक उपयोग किया जाने लगा। सरकार की वन सम्बन्धी नीतियो के परिणाम स्वरूप वनो के निरन्तर विनाश से अलकनन्दा नदी घाटी तथा भागीरथी नदी मे सत्तर के दशक मे भूस्खलन (टावाघाट, 1977 व कानादियागढ 1978), सूखे, बाढ तथा भूक्षरण की कई घटनाऐं हुई। स्थानीय निवासी वनो के व्यावसायिक कटान का लगातार विरोध करते रहे। चण्डी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व मे चमोली जिले के मलारी घाटी मे वनो की नीलामी का तीव्र विरोध किया गया। वन गतिविधियो मे हर प्रकार की ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति की माग करते रहे। साथ ही साथ वनपयोग के अधिक अधिकार दिलाने के लिए सघर्ष रत थे परन्तु साठ के दशक तक कोई सगठित प्रयास नही किये गये थे। वर्ष 1970 के प्रारम्भ मे उत्तरकाशी मे गगोत्री ग्राम स्वराज्य सघ तथा गोपेश्वर, चमोली, गढ़वाल मे दशोली ग्राम स्वराज्य मडल की स्थापना की गई जो मुख्य रूप से वनो के व्यावसायिक शोषण के विरोध के केन्द्र बिन्दु बन गये। इन स्वयसेवी सस्थाओ ने कई छोटे बड़े आन्दोलनो का नेतृत्व किया। स्थानीय जनता तथा आन्दोलन के लगातार बढ़ते दबाव के बाद सरकार ने ठेकेदारी प्रथा को समाप्त कर उत्तर प्रदेश वन विकास निगम (U.P Forest Development Cooperation -

UPFDC) की स्थापना की। वनो का व्यावसायिक शोषण प्रभावी स्थानीय व्यक्तियो के माध्यम से होता रहा। अत अब स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा पारिस्थितिकी दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रो का पता लगाकर व्यापारिक आधार पर वनो के कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध की माग की जाने लगी। सरकार द्वारा अलक नन्दा नदी घाटी ऊपरी आवाह क्षेत्र (Catchment area) का लगभग 1200 वर्ग कि० मी० क्षेत्र और रेणीगाँव को पर्यावरणीय दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्र घोषित किया गया। दिसम्बर 1972 मे टेहरी गढ़वाल के रेणी ग्राम की महिलाओं द्वारा सरकारी ठेकेदारो से संघर्ष करते हुए तथा वनो के कटान को रोकते हुए चिपको आन्दोलन का उदय हुआ। मार्च 1974 मे इसी गाँव की गौरादेवी ने चिपको आन्दोलन की कर्मठ कार्यकत्ता के रूप मे पुरुषो की अनुपस्थिति मे दो दिन दो रात तक जंगल मे अपनी महिला सहियोगियो के साथ रहकर तथा वृक्षो से चिपक कर वनो को काटने वाले ठेकेदारो और मजदूरो से संघर्ष किया। बाद के वर्षों मे भी उन्होंने इस आन्दोलन को नये आयाम दिये। हाल ही मे 7 जुलाई 1991 मे उनका देहावसान हो गया। चिपको शब्द महिलाओं की भावनात्मक पुकार थी जो पेड़ो को बचाने के संघर्ष मे बाह भर लिपट जाने के साथ अभिव्यक्त हुई। इस तरह इसे चिपको आन्दोलन की संज्ञा दी जाने लगी। फरवरी 1978 मे टेहरी गढ़वाल के अडवाणी गाँव के उग्र आन्दोलनकारी महिलाओं पर पुलिस ने गोली चलाई। अनेक आन्दोलनकारियो को जेल मे डाल दिया गया। परन्तु तब तक आन्दोलन की बागडोर कर्मठ कार्यकर्ता सुन्दर लाल बहुगुणा के हाथ मे आ गई थी। बहुगुणा ने संघर्ष का मुख्य केन्द्र अडवाणी तथा बुढ़कर गाँव को रखा। शनै शनै यह आन्दोलन चण्डी प्रसाद भट्ट और सुन्दर लाल बहुगुणा के सामुहिक नेतृत्व मे सम्पूर्ण उत्तरा खण्ड मे फैल गया। सुन्दर लाल बहुगुणा ने जून 1982 मे लंदन मे आयोजित संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme) की बैठक मे आन्दोलन की रूप रेखा, पृष्ठ भूमि तथा नीति को स्पष्ट करते हुए बताया कि हिमालय क्षेत्र के वन मृदा, जल व पर्यावरण संरक्षण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अत क्षेत्र के वृक्षो के कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए। उत्तर प्रदेश सरकार ने वष 1981 मे के० के० कौल की अध्यक्षता मे एक कमेटी का गठन किया था। पर्यावरण विभाग ने कमेटी की अनुशासा के आधार पर उत्तर प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रो मे 1000 मीटर की ऊँचाई पर वृक्षो के कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया।

चिपको आन्दोलन के उदेश्य:- चिपको आन्दोलन से पूर्व वनो को केवल वाणिज्यिक दृष्टि से ही सरकारी स्तर पर महत्वपूर्ण समझा जाता रहा था। अन्य लाभ लगभग गौण थे। उस दौर मे आन्दोलन का लक्ष्य वनो के व्यवसायिक दोहन को रोकना था। बाद के वर्षों मे वनो के महत्व को ध्यान मे रखते हुए आन्दोलनकारियो ने वनो के पर्यावरणीय महत्व की जानकारी जन जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया। इस तरह इस आन्दोलन ने जनमानस को वनो के महत्व के प्रति उद्वेलित किया तथा एक नयी वन दृष्टि प्रदान की। वास्तव मे आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य निम्न रहे है।

(i) आर्थिक स्वालम्बन के लिए वृक्षो के व्यावसायिक कटान पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाना।

(ii) वनो का सर्वेक्षण कर लोगो की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर उनके अधिकारो को पुनर्निधारण किया जाना।
(iii) बजर भूमि को हरा भरा करने के काम मे स्थानीय लोगो की भागीदारी तथा वृक्ष खेती को प्रोत्साहन दिया जाना।
(iv) वन गतिविधियो मे हर प्रकार की ठेकेदारी को समाप्त करना और इसके स्थान पर ग्रामीण समितिया गठित करना।
(v) वनाधारित कुटीर उद्योगो स्थापना करना और इसके लिए कच्चामाल, अर्थ तथा तकनीक उपलब्ध कराना।
(vi) *स्थानीय पारिस्थितिकी और आवश्यकताओं पर आधारित प्रजातियो को* वनीकरण मे प्राथमिकता देना।
(vii) पारिस्थितिकी सतुलन के लिये वृक्षारोपण के कार्य को गति देना

चिपको आन्दोलन के पाँच वर्ष बाद, 1977 मे आन्दोलन कारी महिलाओं ने नारा दिया।

"क्या है जगल के उपकार, पानी मिट्टी और बयार,

पानी मिट्टी और बयार, जिन्दा रहने के आधार।

इस आन्दोलन ने घोषणा की कि वनो का मुख्य उत्पाद ईमारती काष्ठ (Timber) नही अपितु मृदा, जल और आक्सीजन है। आन्दोलन की शुरूआत वनो के व्यापारिक दोहन के विरोध के रूप मे हुई किन्तु बाद के वर्षों मे ग्रामीण महिलाओं ने इसे पर्यावरण सरक्षण तथा *स्थायी अर्थ व्यवस्था का अभिनव आन्दोलन बना दिया। उत्तराखण्ड के गाँव गाँव मे महिला* मगल दलो का गठन किया गया और अब यह वन सरक्षण के साथ-साथ ग्रामोत्थान का आन्दोलन भी बन गया है। इस प्रकार चिपको आन्दोलन की दुनिया मे बिजली, वन, स्कूल आदि एक दूसरे से घूल मिल गये है। इस आन्दोलन की दृष्टि मे वनारोपण के लिए निम्न "एफ" को ध्यान रखा जाना चाहिए – (i) ईंधन (fuel) (ii) चारा (Fodder) (iii) खाद (Fertilizer) (iv) भोजन (Food) तथा (v) रेशा (Fibre), उक्त उद्देश्यो की पूर्ति तथा जन सामान्य को *पर्यावरण की शिक्षा देने के उद्देश्य से चिपको कार्यकर्ताओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रो मे पदयात्रायें शुरू* की गई। ग्रामीण क्षेत्रो मे समय समय पर शिविर आयोजित किये जाते है जो सामान्यतया स्थानीय ग्रामीणो की पहल पर होते है। स्थानीय ग्रामीण जन इसमे अपने परम्परागत सास्कृतिक रीति रिवाजो के अनुरूप ढोल, बाजे और बिगुल आदि के साथ सम्मिलित होते है। जिन्हे लोक शिक्षण के माध्यम से जानकारी और जन चेतना प्रदान की जाती है। आज चिपको आन्दोलन को सम्पूर्ण देश मे स्वीकारोक्ति मिल रही है। आज जन सामान्य यह समझने लगा है कि वन *हमारी सास्कृतिक चेतना तथा राष्ट्रीय विकास के स्तम्भ है। चिपको आन्दोलन के निरन्तर प्रयास* के कारण आज यह उत्तरा खण्ड हिमालय से देश के विभिन्न पर्वतीय क्षेत्रो जैसे कर्नाटक के पहाड़ी भूभाग, राजस्थान के अरावली क्षेत्र तथा मध्य भारत के प्रर्वतीय क्षेत्रो तक फैल गया है। इस आन्दोलन को नई गति देने के उद्देश्य तथा जनमानस को इसके उद्देश्य से अवगत कराने के लिए बहुगुणा ने अपने कर्मठ अनुयायियो के साथ श्री नगर से सिलिगुड़ी तक 3000 कि० मी० तथा कश्मीर से कोहिमा (नागालैण्ड) तक चिपको पद यात्राऐं की। चिपको आन्दोलन से प्रेरित होकर कर्नाटक मे वन सरक्षण के प्रयास के रूप मे *"अप्पिको वालुवाल्लि आन्दोलन"* चलाया गया।

कर्नाटक के कृषको ने सिंचित क्षेत्र से प्राकृतिक वनो को काटकर वाणिज्यिक महत्व के सागौन व यूकलिप्टस पौधो को वृहद स्तर पर लगाने का विरोध किया। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, दार्जिलिग क्षेत्रो मे भी वनो के व्यावसायिक उपयोग तथा एकल प्रजाति वृक्ष रोपण (Mono culture) जैसे–चीड़, यूकलिप्टस आदि का विरोध किया जाने लगा है। हिमाचल प्रदेश के सेहून्ता गाँव मे चिपको कार्यकर्त्ताओं ने वन विभाग द्वारा रोपित चीड़ की पौध को उखाड़कर अन्य स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले वृक्ष लगा दिये। इसी तर्ज पर अरावली बचाओ अभियान, उदयपुर, राजस्थान मे चलाया जा रहा है। आज विश्व जनमत वन सरक्षण के इस अभिनव आन्दोलन की तरफ तेजी से मुड़ रहा है।

मृदा संरक्षण (Soil conservation)

वस्तुत. मृदा अपने आप मे एक जटिल तत्र है। पारिस्थितिकी दृष्टि से मृदा पादप उत्पति का माध्यम है जो हजारो वर्षों मे जीवो, जलवायु, सूक्ष्मजीव तथा अन्य भौतिक कारको की अन्योन्य क्रियाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। मृदा पृथ्वी के बाहरी पटल की सबसे ऊपरी परत है। स्थलीय पादपो की वृद्धि के लिए मृदा परमावश्यक है। सभी पादप वृद्धि के लिए आवश्यक जल तथा खनिज तत्वो का अवशोषण मृदा से ही करते है। कृषि मे जिसकी आपूर्ति रासायनिक या कार्बनिक ऊर्वरकों के रूप मे की जाती है। प्रकृति में निरन्तर कार्बनिक पदार्थों की उत्पत्ति तथा खनिज तत्वो के परिसचरण के कारण मृदा का स्थायित्व बना रहता है। अत: मृदा अनिवार्यत: एक बहुमूल्य प्राकृतिक ससाधन है जिस पर मानव जीवन का अस्तित्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पूर्णतया निर्भर है। कृषि कार्य के लिए निरन्तर एक ही भूमि का उपयोग करने से शनै शनै मृदा के पोषण स्तर मे कमी आने लगती है तथा मृदा के प्राकृतिक गुण नष्ट होने के कारण मृदा पादप वृद्धि के योग्य नही रह जाती। विभिन्न कीटनाशी, शाकनाशी रसायनो के उपयोग से मृदा सूक्ष्म जीवो के नष्ट होने के कारण मृदा का प्रकृतिक सतुलन गड़बड़ा जाता है और अपघटन की क्रिया के प्रभावित होने से खनिज परिसचरण मे बाधा उत्पन्न होती है। मृदा प्रबन्ध के सदर्भ मे मृदा सरक्षण (Soil conservation) तथा मृदा उद्धार (Soil reclamation) का सर्वाधिक महत्व है। जहाँ सरक्षण का तात्पर्य मृदा अपरदन (Soil erosion) को रोकने तथा मृदा परिपक्वन मे वृद्धि करने से है वही मृदा उद्धार उन तकनीकी पद्धतियो से सम्बधित है जिसके द्वारा लवणीय, क्षारीय या अम्लीय मृदा को पादप वृद्धि के योग्य बनाया जाता है। जल तथा वायु द्वारा मृदा की ऊपरी सबसे उपजाऊ परत का एक स्थान से अन्य स्थान पर स्थानातरित हो जाना मृदा अपरदन कहलाता है।

मृदा अपरदन और नियत्रण (*Soil erosion and its control*)

प्राय पर्याप्त वनस्पति युक्त क्षेत्र मृदा क्षरण के कुप्रभाव से प्रभावित नही होते है। परन्तु वनस्पति आवरण रहित क्षेत्र मृदा अपरदन से निरन्तर प्रभावित होते रहते है। अपरदन मे वायु और जल सहायक कारक होते है।

(क) जल द्वारा मृदा अपरदन – जल प्रवाह से मृदा का ऊपरी उपजाऊ महीन स्तर नष्ट हो जाता है। इस तरह का मृदा अपरदन सामान्यत: चार प्रकार का होता है।

(i) स्तरी अपरदन (Sheet erosion) – वर्षा जल प्रवाह से मृदा अपरदन एकाएक दृष्टिगोचर नही होता क्योंक सम्पूर्ण क्षेत्र से एक रूप (Uniform) मृदा अपरदन होता है।

(ii) सीता अपरदन (Rill erosion)– इसमे जल के प्रवाह से भूमि मे पतली पतली गहरी सीता या कुण्ड जैसी नालिया बन जाती है जिससे होकर मृदा जल प्रवाह के साथ बह जाती है।

(iii) अवनालिका अपरदन (Gully erosion) – जब छोटी छोटी गहरी नालिया ढलान की ओर आपस मे मिल जाती है और अधिक जल प्रवाह के कारण गहरी बड़ी नालियो के कारण कटाव गम्भीर होता है तो इसे अवनालिका अपरदन कहते है।

(iv) नदतटीय अपरदन (Riparian erosion) – तेज प्रवाहमान नदियो, वर्षा के दौरान उफनती नदियो द्वारा तटीय मिट्टी के कटाव या नदियो द्वारा मार्ग बदलने से उत्पन्न 'खार' नदतटीय अपरदन कहलाता है।

जैसा कि पूर्व से उल्लेख किया जा चुका है कि जहाँ भूमि पर्याप्त वनस्पति आच्छादन से युक्त होती है वहाँ कृषि के साथ मृदा का क्षरण लगभग नही होता है तथा जल भी अपेक्षाकृत काफी कम गति से बहता है। परन्तु पादप समुदाय के नष्ट होने की दशा मे भूमि के सख्त होने से भूमि की जल अवशोषण क्षमता भी बहुत कम हो जाती है तथा जल भी तीव्र गति से बहकर मृदा के उपजाऊ भाग को बहा ले जाता है।

(ख) वायु द्वारा अपरदन – साधारणतया आर्द्रभूमि (Wet land) से वायु द्वारा मृदा अपरदन नही होता है फिर भी तेज आधी इन क्षेत्रो मे भी मृदा अपरदन करने मे सक्षम होती है। शुष्क और अतिशुष्क मरूस्थलीय प्रदेशो मे जलवायु की विषमता से कम वनस्पतियों के कारण मृदा अपरदन अधिक होता है। भारत मे प्रतिवर्ष राजस्थान, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश से तेज आधी द्वारा शुष्क ग्रीष्म ऋतु मे भारी मृदा सरक्षण भी कठिन होता है।

भूक्षरण को रोकने तथा मृदा सरक्षण के लिये वृक्षारोपण सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय है। जल द्वारा अपक्षरण को रोकने के लिए भूमि को कभी भी नग्न नही रखा जाना चाहिये अपितु सदैव वनस्पति आच्छादन से भूमि को आवृत रखना चाहिये। वृक्षारोपण मे प्रारम्भ में वृद्धि धीरे-धीरे होती है। ऐसी जगह मिश्रित वनस्पति लगाई जानी चाहिये। बाद मे पत्तिया, शाखाओं, टहनियो आदि के भूमि पर पडे अवशेषो के सडने से, भूमि मे कार्बनिक पदार्थों की मात्रा बढ़ती है। भूमि उर्वरा होने लगती है। जल धारण क्षमता मे वृद्धि होने से वहाँ अन्य वार्षिक शाकीय पेड़-पौधे भी उगने लगते हैं। इस प्रकार मृदा अपरदन भी कम हो जाता है। खेतों के चारों और बाधे गये ऊचे मेड भी जल द्वारा मृदा अपरदन को रोकने मे सहायक होते है। मृदा अपरदन को उचित फसलो को समय समय पर बदल कर उगाने, रासायनिक उर्वरक की जगह कार्बनिक खाद उपयोग करके भी रोका जा सकता है। घास स्थली मे अतिचारण नही होने देना चाहिये। सड़को के किनारे, पहाडी ढलानो पर उच्च सरक्षणकारी क्षमता वाली पादप जातियो को रोपण किया जाना चाहिए। वन, कृषि तथा घास स्थल आदि का सकल एवम् समन्वित रूप मृदा अपक्षरण से बचाव का सर्वोत्तम उपाय होता है। नदतटीय अपरदन को रोकने के लिए मिट्टी को बाधने वाली वनस्पति से तट को परिपूर्ण रखने का प्रयास किया जाना चाहिये। तटीय क्षेत्र मे कृषि कार्य

की जगह यथोपयुक्त वनस्पति का संवर्धन करना चाहिये। भूमि को मृदा प्रदूषण से मुक्त रखा जाना चाहिये।

वायु द्वारा अपरदन से प्रभावित क्षेत्र में घास तथा मृदा को बाधने वाले पेड़-पौधों को लगाया जाना चाहिये। इस वृक्षारोपण को वायु रोधक कहा जा सकता है क्योंकि ये भूमि से वाष्पोत्स्वेदन (वाष्पन तथा उत्स्वेदन) में कमी करके मिट्टी की नमी को बनाये रखते हैं तथा वायु की गति रोक कर अवरोध का कार्य करते हैं। तेज आंधी से प्रभावित क्षेत्रों में आंधी की दिशा के समकोण में घने ऊंचे पेडों की कतारें लगा दी जाती हैं जिन्हें वायु अवरोधक (Wind breaks) कहते हैं। इस तरह के अवरोधों से पवन गति काफी पहले से ही घट जाती है और काफी दूरी के बाद ही पवन पुन: वेग धारण कर पाता है। साथ ही पेड़ों द्वारा वायु के साथ आये मिट्टी के कण वहीं एकत्र हो जाते हैं जिस पर धीरे-धीरे अन्य वनस्पति उगने लगती है। यदि ये वायु अवरोधक वनस्पतियाँ काफी वृहत क्षेत्र में लगाई जाती हैं तो इसे सेल्टर बेल्ट या मृदा रक्षक वृक्षावलियाँ (Shelter belt) कहा जाता है तथा दो वायुअवरोधक वृक्षावलियों के बीच के सुरक्षित क्षेत्र में कृषि की जा सकती है। प्रक्षेत्र वानिकी (Farm forestry) के अन्तर्गत कृषि क्षेत्र के चारों ओर वक्षावलिया लगाई जाती है। यदि किसी कृषि भूखण्ड के 20% भाग में छितरे वृक्ष लगा दिये जाये तो वायु द्वारा अपरदन को काफी हद तक रोका जा सकता है। अम्बष्ट (1970) ने शोध परिणामों के अनुसार शाकीय पौधों में दूब (सायनोडोन डेक्टाइलोन) तथा मूंज (सैकरम मूजा) में मृदा अपरदन रोकने की क्षमता (Soil conservation value) क्रमश: 92% और 97% पाई गई। स्थानीय पर्यावरणीय स्थिति के अनुसार वृक्षावलियों की लम्बाई, ऊँचाई, पंक्ति संख्या, संघटन जातियों, दो वृक्षावलियों के मध्य की दूरी आदि का निर्धारण, मृदा अपरदन के कारण, मृदा की रचना के साथ कुशल संरक्षण कर्ता द्वारा किया जाता है।

जल संरक्षण (Water conservation) – जल का जीवों और मनुष्य के लिए महत्व सर्वविदित है। जल प्रदूषण और जल के महत्व की विस्तृत चर्चा प्रदूषण *अध्याय* के अन्तर्गत की जा चुकी है। कृषि और उद्योगों के विकास के साथ जल की खपत में अत्यधिक वृद्धि के साथ प्रदूषण की समस्या भी उत्पन्न हुई है। जल संरक्षण का हर स्तर पर प्रयास आवश्यक है। जल प्रबन्ध तकनीक का उपयोग करते समय उसके लाभ के साथ अनिरिक्त प्रभावों का भी ध्यान रखा जाना चाहिए जैसे इन्दिरा नहर क्षेत्र में लवणता का बढ़ना, जलाशयों में गाद भरना, बांध क्षेत्र में भूमि उर्वरकता का घटना आदि। इसे *(Ecological)* कहा जाता है जल स्रोतों के संरक्षण के प्रयास भी पारिस्थितिकी सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए। कुओं को ढक कर रखना तथा चबूतरों को ऊँचा रखने से जल के प्रदूषित होने की सम्भावना कम हो जाती है। दूषित जल को सीधे जल स्रोतों में प्रभावित करने के बजाय संस्कार संयत्र (Sewage treatment plant) द्वारा उपचारित किया जाना चाहिये। इसमें प्राप्त कार्बनिक खाद का उपयोग किया जा सकता है तथा उपचारित जल का सिंचाई में उपयोग किया जा सकता है। गर्म प्रदेशों में जल वाष्पन की दर को कम करने के लिए जलाशयों में हेक्साडिकेनॉल *(Hexadecanol)* की थोड़ी मात्रा जल में डाली जाती है। जिससे जल की सतह हेक्साडिकेनॉल की एक-परमाणु परत (Mono molceular layer) चारों और फैल जाती है जो वाष्पन की दर को घटा

देती है। रेगिस्तानी क्षेत्रो मे भूमि पर ऐस्फाल्ट (Asphalt) की धूल का छिडकाव किया जाता है जिससे भूमि की जल धारण क्षमता घट जाती है तथा जल भूमिगत जल स्रोत मे न जाकर ढलान की ओर बहने लगता है जहाँ बड़ी बड़ी टकियो मे उस वर्षाजल को एकत्रित कर लिया जाता है। जल सरक्षण के परोक्ष उपाय के रूप मे वृक्षारोपण को बढावा दिया जाना चाहिये ताकि बाढ़ और सूखे की सम्भावनाओं को कम किया जा सके। वर्षा के जल का अधिकतकम उपयोग किया जाना चाहिये।

अध्याय : 7

पारिस्थितिक अनुकूलन

(Ecological Adaptation)

पूर्व के अध्यायो मे आप पढ़ चुके है कि पारिस्थितिक कारक किस प्रकार से वनस्पति को प्रभावित करते है । प्राय यह कहा जाता है कि वातावरण जीवो को प्रभावित करता है, किन्तु यह भी सत्य है कि जीवो द्वारा वातावरण भी प्रभावित होता है । उदाहरण के लिए किसी झील के निरीक्षण से पता चलेगा कि पानी मे घुले लवण तथा ऑक्सीजन, जलीय जीवो के प्रवर्धन को प्रभावित करते है किन्तु इन लवणो की सान्द्रता भी जलीय जीवो से प्रभावित होती है जैसे – जलीय जीव श्वसन मे ऑक्सीजन लेते है तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड छोड़ते है जिसके फल स्वरूप ऑक्सीजन (O_2) की मात्रा कम तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड (CO_2) की मात्रा पानी मे बढ़ती है ।

प्रत्येक जीव मे चाहे वह वनस्पति हो या जन्तु स्वय को अपने चारो ओर के वातावरण के अनुरूप ढालने की क्षमता पायी जाती है । यदि वनस्पति का उसके वातावरण को ध्यान मे रखते हुए अध्ययन किया जाये तो ज्ञात होता है कि प्रत्येक पादप के विभिन्न अग उसके वातावरण के अनुरूप परिवर्तित हो जाते है । ये परिवतन उसकी रचना एव कार्यिकी दोनो ही से सम्बन्धित होते है । इसके फलस्वरूप पादप अपने को विशेष वातावरण मे जीवित रहने योग्य बनाकर स्वय को नष्ट होने से बचा लेता है । इसे ही पादप अनुकूलन कहते है ।

यदि हम ससार मे मिलने वाली वनस्पति पर दृष्टि डाले तो पायेगे कि कही पर घने जगल है तो कही पर घास व कही पर रेगिस्तान । पृथ्वी पर वनस्पति के इस प्रकार के वितरण का मुख्य कारण है उस स्थान का वातावरण क्योंकि पृथ्वी के सभी स्थानो का वातावरण कभी भी एक प्रकार का नही होता, अत वनस्पति भी भिन्न भिन्न प्रकार की होती है । वनस्पति के इस प्रकार के वितरण के अनेक कारण है जिनमे मुख्य है – वर्षा । समस्त पारिस्थितिक कारको मे पौधो के लिए जल (जो वर्षा से प्राप्त होता है) एक अनिवार्य पोषक है तथा जीव-द्रव्य (Protoplasm) का मुख्य अश भी । इसके अतिरिक्त जल एक ऐसा विलायक है जिसमे समस्त प्रकार के खनिज एव लवण घुल कर पौधो को उपलब्ध होते है । प्रकृति मे जल मुख्यत: चार दशाओं मे विद्यमान रहता है ।

(i) वर्षा ।

(ii) वायुमडलीय आर्द्रता ।

(iii) मृदा-जल ।

(iv) बर्फ ।

वातावरण मे जल की उपलब्धता के आधार पर पादपो को निम्न चार श्रेणियो मे वर्गीकृत किया जा सकता है –

(i) जलोद्भिद (Hydrophytes) – जल की बहुलता वाले वातावरण मे पाए जाने वाले पादप ।

(ii) **समोद्‌भिद (Mesophytes)** – समान्य ताप व नमी वाले वातावरण मे पाये जाने वाले पादप ।

(iii) **मरूद्‌भिद** -- शुष्क मरूस्थली वातावरण मे पाये जाने वाले पादप ।

(iv) **लवणमृदोद्‌भिद** – लवणीय मृदा अथवा समुद्री, लवणीय जल मे पाये जाने वाले पादप ।

जलोद्‌भिद –

ये पादप ऐसे वातावरण मे पाये जाते हैं जहाँ जल की बहुलता होती है । ऐसे पादप पूर्ण रूप से या आशिक रूप से निमग्न (Submerged) स्थिति मे या प्लवमान (Floating) अवस्था मे या जल सतृप्त मृदा मे पाये जाते हैं । अत: ये पादप नदियो, झीलो, तालाबो व दलदली भूमि मे पाये जाते हैं ।

इन पादपो के अनुकूलन का अध्ययन करने से पहिले ऐसे वातावरण के उन लक्षणो का जानना आवश्यक है जो अनुकूलन के कारण होते हैं ।

(1) जल –

(अ) उपलब्धता – ये पादप ऐसे वातावरण मे उगते हैं जहाँ पानी बहुतायत मे उपलब्ध रहता है अत: इन पादपो की कार्यिकी मे पानी की कमी नहीं रहती ।

(ब) उत्प्लावक (Buoyant) प्रभाव – इसके कारण इन पादपो मे कई अनुकूलन उत्पन्न हो जाते हैं ।

(स) अल्प लवणता वा परासरण सान्द्रता – स्वच्छ जल की लवणता (Salinity) कम होती है अत: स्वच्छ पानी का परासरण दाब (Osmotic pressure) भी कम होता है ।

(2) तापक्रम -- यह जल ऊष्मा का कुचालक है अत: जलाशयो मे जल के तापक्रम मे उतार चढ़ाव बहुत ही कम होता है; इसीलिए जलोद्‌भिद पादपो को तापक्रम का बदलाव बहुत ही कम सहना पडता है । जल के तापक्रम का प्रभाव जल मे घुलित तत्वो एवं ऑक्सीजन पर पड़ता है ।

(3) प्रकाश – प्रकाश की तीव्रता जल की गहराई के साथ साथ कम होती जाती है क्योंकि प्रकाश का कुछ अश जल मे निलम्बित ठोस कणिकाओं द्वारा अवशोषित हो जाता है अत: प्रकाश जल मे उपस्थित जन्तुओं तथा पौधो के लिए सीमाकारी कारक (Limiting factor) की तरह कार्य करता है ।

(4) गैसे (O_2 and CO_2)-- जल मे उपस्थित पादपो व जन्तुओं के लिए O_2 तथा CO_2 का होना आवश्यक है । वायुमडल की तुलना मे जलीय माध्यम मे O_2 की मात्रा कम होती है तथा इसके विसरण की दर भी कम होती है अत: गहरे पानी मे O_2 की मात्रा कम होती है ।

जलोद्‌भिदों में अनुकूलन –

उपरोक्त जलीय लक्षणो के कारण इन पादपो मे अनेक प्रकार के अनुकूलन पाये जाते हैं जिनको निम्न मुख्य तीन भागो मे बाँटा जा सकता है ।

1 आकारिकीय अनुकूलन (Morphological adaptations)

2 आन्तरिक सरचना

3 कार्यिकी अनुकूलन (Physiological adaptations)

आकारिकीय अनुकूलन –

(अ) मूल – आप जानते है कि जड़ो का मुख्य कार्य जल का अवशोषण करना है। जल की उपलब्धता के अनुसार जड़ो मे आकारिकीय परिवर्तन हो जाते हैं क्योंकि जलोद्‌भिदो को जल सुलभ होता है और पौधे अपनी सम्पूर्ण सतह से जल अवशोषित कर लेते हैं अत इनमे जड़ो का कोई विशेष कार्य नही होता फलस्वरूप – जड़े प्राय. रेशेदार, अशाखित एव छोटी होती हैं।

(i) इन पादपो मे मूल तत्र अल्पविकसित होता है। कुछ पादपो जैसे सिरेटोफिलन *(Ceratophyllum)*, सालविनिया *(Salvinia)*, अजोला *(Azolla)*, वुल्फिया *(Wolffia)*, यूट्रीकुलेरिया *(Utricularia)* आदि मे जड़ो का अभाव होता है।

(ii) कुछ पौधे जैसे लेम्ना *(Lemna)*, निम्फिया *(Nymphea)* आदि मे मूल रोम अनुपस्थित होते हैं।

(iii) मूल के अग्र भाग पर मूल गोप (Root cap) के स्थान पर मूल कोटरिकाएँ (Root pockets) पाये जाते है, उदाहरणार्थ – आइकोर्निया *(Eichhornia)*, सिघाड़ा *(Trapa)*, पिस्टिया *(Pistia)* आदि।

(iv) लेम्ना *(Lemna)* जैसे पादप मे केवल एक ही जड़ होती है जो अवशोषण के स्थान पर पौधे के सतुलन को बनाये रखने मे सहायक होती है।

(v) जलीय फर्न, साल्विया *(Salvia)* आदि मे एक पर्ण शाखित होकर मूल का कार्य करती है।

(vi) कुछ पादपो मे श्वसन या प्रकाश सश्लेषण के लिए अपस्थानिक मूल रूपान्तरण पाया जाता है जैसे – सिघाड़े मे प्रकाश – सश्लेषण के लिए जड़े हरी हो जाती है। इस तरह ज्यूसिया *(Jussia repens)* मे दो प्रकार की जड़े उत्पन्न होती हैं – कुछ सामान्य जड़े तथा दूसरी स्पजी रचना वाली जड़े जो जल की सतह पर प्लावित रहती है एव श्वसन मे सहायक होती है।

(vii) मेंग्रोव पादपो (Mangrove plants), जैसे – एविसीनिया *(Avicenia)*, राइज़ोफोरा *(Rhizophora)* जो अनूप (Swamps) मे उगते हैं, मे जड़े खूटीनुमा (Peg like) आकृति की होती हैं जो भूमि से ऊपर निकल आती हैं। इनके वायव भाग पर अनेक छिद्र होते हैं जो श्वसन मे गैसो के आदान-प्रदान मे सहायक होते हैं। इन जड़ो को न्यूमेटोफोर (Pneumatophore) कहते हैं।
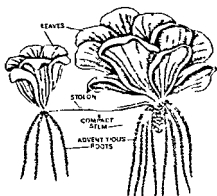
1 पिस्टिया के पौधे मे छोटा स्तम्भ एव मूल कोटरिकाए युक्त मूल
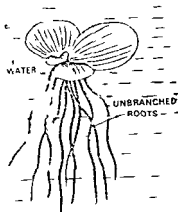
2 लेम्ना मे पेलसनुमा पत्तियाँ तथा अशाखित मूलरोम रहित मूल
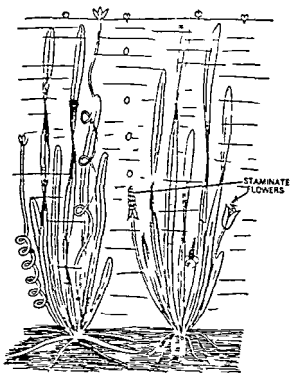
3 वेलिसनेरिया के पौधे मे छोटा प्रकन्द, रिबन नुमा पत्तियाँ

चित्र 7 1 जलोदूभिदो मे आकारिकीय अनुकूलन

(ब) स्तम्भ (Stem) –

(i) जल में प्रकाश की तीव्रता कम होने के कारण जलोद्‌भिद पादपों में तना पाडुरित (Etiolate), कोमल, कमजोर एवं पतला होता है।

(ii) कुछ निमग्न (Submerged) जलीय पौधों जैसे इलोडिया *(Elodea)*, पोटेमोजीटोन *(Potamogeton)* आदि में तना स्पंजी, लचीला व गोल होता है।

(iii) अजोला *(Azolla)*, सल्विनिया *(Salvinia)* एवं लेम्ना *(Lemna)* जैसे स्वतंत्र प्लवमान पौधों में तना बहुत ही अल्प विकसित होता है। कीचड में जमे जलीय पौधे जिनकी जडें भूमि में रहती हैं उनमें तना प्रकन्द (Rhizome) या रनर (Runner) होता है जैसे निलम्बो *(Nelumbo)* एवं निम्फिया *(Nymphea)* में।

(स) पर्ण (Leaf) –

(i) निमग्न जलोद्‌भिद पादपों में जैसे– नाजास *(Najas)*, सिरेटोफिलम *(Ceretophyllum)* में पर्ण प्राय धागे के समान तथा कटी फटी होती है जिससे कि जल तरंगों से जल के बहाव से गतिरोध उत्पन्न न हो। वेलिसनेरिया *(Vallisneria)* में पर्ण लम्बे रिबन के समान होती है।

(ii) कुछ निमग्न पौधों की पत्तियों में विषमपर्णता (Heterophylly) पाई जाती है। जल में रहने वाली पत्तियाँ पतली व शाखित तथा कटी फटी होती है तथा जल के बाहर रहने वाली पत्तियाँ सरल व पूर्ण विकसित होती है, उदाहरणार्थ – लिम्नोफिल्ला हेटरोफिल्ला *(Limnophylla heterophylla)*, रेननकुलस *(Ranunculus)* आदि।

(iii) प्लवमान पौधों में पर्ण लम्बी, बेलनाकार, पतली, चिकनी, छत्रिकाकार, गहरे हरे रंग की होती है।

(vi) जल के विगलन (Wetting) प्रभाव को रोकने के लिए तनों एवं पत्तियों पर अवपकी म्यूसिलेज (Slimy mucilage) की परत बन जाती है।

आन्तरिक अनुकूलन –

(i) जल निरोधी पदार्थ जैसे क्युटिकल की कमी – जल के सुलभ उपलब्ध होने तथा वाष्पोत्सर्जन की समस्या न होने से क्युटीकल जैसे जल निरोधी पदार्थों की कमी या अभाव होता है। निमग्न पौधों में क्युटिकल अनुपस्थित होता है। क्युटिकल के न होने से ये पादप अपने हर भाग की सतह से जल अवशोषित कर सकते है।

(ii) सुरक्षात्मक रचनाओं की कमी – इन पादपों में अधिचर्म (Epidermis) प्राय: एक परत में, पतली क्युटिकल युक्त, पतली भित्तियों वाली मृदुत्तकीय हरितलवक युक्त कोशिकाओं से बनी होती है। बाह्य त्वचा के ऊपरी सतह पर मोम (Wax) की परत होती है जो रंध्रों को गीला तथा बंद होने से बचाती है, अत. अधिचर्म सुरक्षात्मक न होकर अवशोषण में सहायक होती है। अधिचर्म पर रोम अनुपस्थित होते हैं। अधश्चर्म (Hypodermis) अल्प विकसित या अनुपस्थित होती है।

1 हाइड्रिला के स्तम्भ की अनुप्रस्थ काट
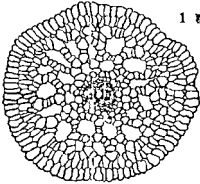
2 निम्फीया के मूल की अनुप्रस्थ काट
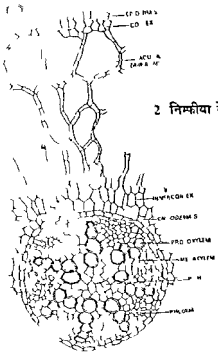
चित्र 7 2 जलोद्‌भिद्‌ मे आन्तरिक अनुकूलन

(iii) यांत्रिक ऊतकों की कमी – जल के उत्प्लावक (Buoyant) प्रभाव के कारण यान्त्रिक ऊतको की आवश्यकता नही होती । अतएव ये अल्प या अविकसित रह जाते है। लिग्नीभवन (Lignification) कम या बिलकुल नही होता, इसलिए ये पौधे नरम व कोमल रह जाते है। यान्त्रिक ऊत्तको के विकास न होने से वल्कुट मे हरित ऊतक (Chlorenchyma) अधिक पाया जाता है जो प्रकाश सश्लेषण मे सहायक होता है ।

(iv) वायु प्रकोष्ठों की अधिकता – अन्य पादपो की तरह जलोद्भिदो को श्वसन के लिए ऑक्सीजन एव प्रकाश सश्लेषण के लिए कार्बन-डाई-ऑक्साइड की आवश्यकता होती है । इसके अतिरिक्त इन पादपो की पत्तियो मे रध्र अल्प-विकसित अथवा अनुपस्थित होते है । जल की सतह पर तैरने वाली पत्तियो पर ये दोनो सतहो पर पाये जाते है अत: इन पादपो मे अल्प वातन (Poor supply of air) की समस्या का समाधान वल्कुट (Cortex) मे वायु कोष्ठो (Air chambers) के विस्तृत विकास द्वारा किया गया है । इन वायु-कोष्ठो से पौधो मे उत्प्लावकता (Buoyaney) बढ़ जाती है तथा पादप हल्के होकर तैरते रहते है । पादप के विभिन्न भागो जैसे जड़, तना व पत्तियो के वायु-कोष्ठ आपस मे जुडे रहते है जिससे कि गैसे सम्पूर्ण पौधे मे आ जा सके । वायु-कोष्ठ आपस मे एक या दो परत (Layers) की मोटी हरित ऊतको (Chlorenchymatous) के कपाटो द्वारा विभक्त होते हैं । ये वायु-कोष्ठ इन पादपो के प्रत्येक भाग यहाँ तक कि फलो (जैसे–कमल) मे भी पाये जाते हैं । अत वायु-कोष्ठ इन पादपो को तैरने मे सहायता करते है, गैसो के सग्रहण एव वितरण मे मदद करते है तथा फलो के प्रकीर्णन (Dispersal) मे सहायक होते है ।

(v) सवहन ऊत्तकों की कमी – जलोद्भिद पादपो के चारो ओर जल विद्यमान रहता है तथा इन पादपो का प्रत्येक भाग जल–अवशोषण करने मे सक्षम होता है अत: इन पादपो मे सवहन ऊत्तको की विशेष आवश्यकता नही होती है, इसलिए इनमे सवहन ऊत्तक अल्प विकसित होते है । दारू (Xylem) तथा फ्लोएम (Phloem) मे से दारू अधिक अल्प विकसित होते है । प्राय इसके स्थान पर एक केन्द्रीय गुहिका होती है जिसके चारो ओर फ्लोएम ऊत्तक होता है । दारू मे वाहिकाओं (Vessels) का अभाव होता है । इनके फ्लोएम मे प्राय समोद्भिद (Mesophytic) पादपो की अपेक्षा चालनी नलिकाये (Sieve tubes) छोटी होती है तथा मृदुतक कोशिकाऐं अधिक पायी जाती है ।

जलोद्भिद मे द्वितीयक वृद्धि नही पाई जाती है। जो पादप प्लवमान या निमग्न होते है प्राय उनकी पत्तियो मे पर्णमध्योतक (Mesophyll), खभ ऊत्तक (Palisade tissues) तथा स्पजी मृदूत्तक (Spongy parenchyna) मे विभेदित नही होता। वे पौधे जिनके भाग जल की सतह से बाहर होते है उनमे यह विभेदन स्पष्ट होता है।

कार्यिकी अनुकूलन –

(i) जलोद्भिदो मे पारसरणी दाब (Osmotic pressure) बहुत कम होता है । यही कारण है कि इन पौधो को जब जल के बाहर निकालते है तो ये शीघ्र ही कुम्हला (Wilt) जाते है ।

(ii) निमग्न पौधो मे वष्पोत्सर्जन वस्तुत, नही होता है किन्तु जल का उत्सर्जन, जल रन्धो (Hydathodes) द्वारा बिदुस्राव (guttation) क्रिया से होता है ।
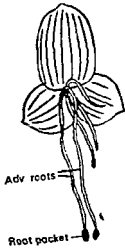
1. लेम्ना
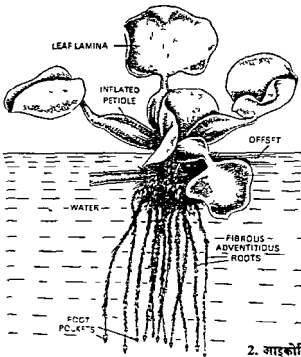
चित्र 7.3 : स्वतन्त्र प्लवमान जलोद्‌भिद्
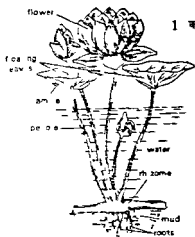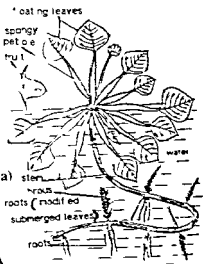
चित्र 7.4 : स्थिर प्लवमान जलोद्भिद्

7.5 : निलम्बित जलोद्भिद्
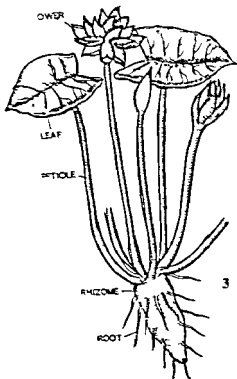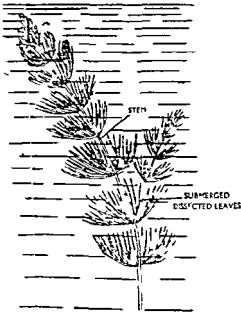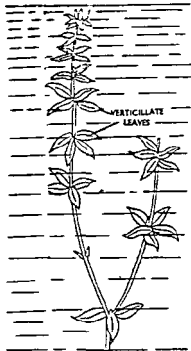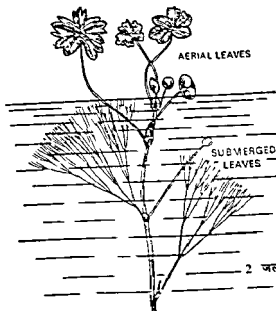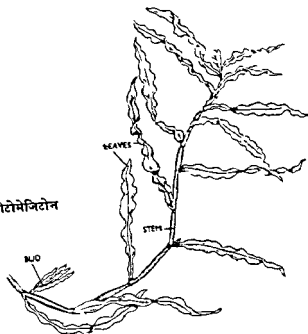
LEAVES
STEM
BUD
1 स्थिर निमग्न – पोटोमेजिटोन
AERIAL LEAVES
SUBMERGED LEAVES
2 जल स्थलीय पादप – रेनेनकुलस

चित्र 7 6 :

(iii) इन पौधो को एक समान अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने के कारण इनमे कायिक प्रवर्धन (Vegetative propogation) अधिक होता है। यह क्रिया प्राय: खडन (Fragmentation) जैसे – इलोडिया (Elodea) या उपरि भूस्तारी (Runner), जैसे – आइकोर्निया, द्वारा होता है।

जलोद्भिद पादपों का वर्गीकरण –

इन पादपो को इनके जल, वायु तथा मृदा से सबन्ध के अनुसार निम्न समूहो मे विभाजित किया गया है –

(1) स्वतंत्र प्लवमान (Free floating plants) – ये पादप स्वतत्र रूप से जल की सतह पर तैरते हैं। इनकी जड़े जलाशय के पैदे मे स्थिर नही होती। अत. इनका सम्बन्ध वायु तथा जल से ही रहता है, उदाहरण – लेम्ना *(Lemna)*, आइकोर्निया *(Eichhornia)*, अजोला *(Azolla)*, वुल्फिया *(Wolfia)*, साल्विनीया *(Salvinia)*, पिस्टिआ *(Pistia)* आदि।

(2) स्थिर प्लवमान (Rooted floating plants) – इन पादपो की जड़े जलाशयो के पेंदे की मृदा भूमि मे लगी रहती हैं अत. ये पादप स्थिर रहते हैं। इनकी पत्तियाँ तथा पुष्पीय स्तभ जल की सतह पर रहते हैं। इन पादपो का सम्बन्ध भूमि, जल एव वायु तीनो ही से रहता है। उदाहरण – कुमुदनी *(Nymphea)*, कमल *(Nelumbium)*, सिंघाडा *(Trapa)*, मार्सीलिया *(Marsilea)* आदि।

(3) निलम्बित पादप (Suspended plants) – ये पादप पूर्णरूप से जल मे ही डूबे या निमग्न रहते है तथा इनकी जडे जलाशय के पेंदे की मृदा मे स्थित नही होती अत: इनका सम्पर्क केवल जल से ही रहता है, उदाहरण– नाजास *(Najas)*, युट्रीकुलेरिया *(Utricularia)*, सिरेटोफिलम *(Ceratophyllum)* आदि।

(4) स्थिर निमग्न (Anchored submerged) – ये वे जलोद्भिद पादप है जो जल मे निमग्न रहते हैं तथा उनकी जड़े जलाशय के पैदे की मृदा मे स्थित रहती है, अत: इनका सम्पर्क जल व भूमि दोनो से रहता है तथा वायुमडल से नही रहता। उदाहरण-- हाइड्रिला *(Hydrilla)*, पोटोमोजिटोन *(Potamogeton)*, वेलिसनेरिया *(Vallisnaria)* आदि।

(5) जलस्थलीय पादप (Amphibious plants) – इन पौधो का कुछ भाग जल तथा शेष भाग वायु मे रहता है। ऐसे पादप जल के किनारे अथवा दलदल मे उगते हैं अत: इन पादपो मे जलीय एव स्थलीय दोनो ही प्रकार के अनुकूलन होते हैं। उदाहरण--साइप्रस *(Cyprus)*, सिरपस *(Scirpus)*, रेननकुलस *(Ranunculus)*, टाइफा *(Typha)*, इलियोकेरिस *(Eleocharis)*, लिमनोफिला *(Limnophila)*, रूमेक्स *(Rumex)* आदि।

मरूद्भिद (Xerophytes) --

मरूद्भिद शुष्क आवासो के पादप हैं। शुष्कता के दो कारण हो सकते हैं (i) अपर्याप्त अवशोषण (ii) अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन या दोनो ही। जल अवशोषण मे कमी यदि जल की वास्तविक कमी के कारण है तो इस अवस्था को भूमि की भौतिक शुष्कता (Physical dryness) कहते हैं। इसके अतिरिक्त यदि भूमि मे जल की पर्याप्त मात्रा हो

चित्र 7 7 गुदेदार मरुद्भिद

लेकिन उसे अवशोषित करने मे पादप को कठिनाई हो जैसे – जल मे लवणो की अधिक मात्रा का होना या कम ताप के कारण जल का बर्फ के रूप मे होना आदि तो भूमि की उस अवस्था को क्रियात्मक शुष्कता (Physiological dryness) कहते है ।

मरूद्भिद ऐसी परिस्थितियो मे अपना जीवन सक्रिय रखते है जहाँ जल की आय के लिए परिस्थिति प्रतिकूल व व्यय के लिए अनुकूल हो, अर्थात् जहाँ भूमि मे भौतिक जलाभाव हो तथा वायुमडलीय परिस्थितियाँ वाष्पोत्सर्जन मे अधिकता लाती हो । ऐसे क्षेत्रो मे जहाँ वर्षा कम मात्रा मे होती हो तथा जल शीघ्र ही बह जाता हो व वाष्पण अधिक होता हो या बलुई पहाड़ियो और टीब्बो पर जहाँ शीघ्र अन्त स्रवण (Percolation) तथा तीव्र आतपन (Intense insolation) होता हो शुष्क आवासो के उदाहरण है ।

मरूद्भिद् लम्बी अवधि के शुष्क अनावृष्टि काल मे भी जीवित रह सकते हैं क्योकि इनमे जलाभाव की अत्यधिक सहिष्णुता होती हैं । जलाभाव या शुष्कता की परिस्थितियो के कारण इन पौधो को स्वय के उपयोग हेतु बहुत ही कम जल उपलब्ध होता हैं । ऐसी स्थिति मे इन पौधो के लिये जीवन यापन करना एक विवशता है ।

मरूद्भिदों के प्रकार –

शुष्क आवासो में केवल वे ही पादप अपना जीवन यापन कर सकते है जो जल को कम से कम खर्च करे या जिनमे जलाभाव सहन करने की क्षमता हो । पादपो मे उपस्थित शुष्कता प्रतिरोधी क्षमता के आधार पर मरूद्भिद निम्न प्रकार के होते है ।

(1) जलाभाव पलायनी पौधे (Drought escaping) – ये पादप अल्पकालिक (Ephemerals) होते है । इनकी जीवन अवधि कुछ सप्ताह तक सीमित होती है । ऐसे पादप अपना जीवन-चक्र वर्षा ऋतु मे प्रारम्भ कर शुष्क ऋतु के प्रारम्भ होने तक पूर्ण कर लेते हैं । ऐसे पादप शुष्क ऋतु बीज अवस्था मे बिता देते है । इस तरह से इन पादपो मे जलाभाव का प्रभाव बहुत कम होता है । अत इन्हे जलाभाव पलायनी (Drought escaping) कहते हैं । वर्षा ऋतु मे भूमि शाकीय, एक वर्षीय पादपो से ढक जाती है । शरद ऋतु के आते-आते ये पादप अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते है और बीज के रूप मे भूमि मे बिखर जाते हैं । ऐसे पादप जलाभाव पलायनी पादप कहलाते है । उदाहरण– टेफरोसिया परफुरिया *(Tephrasia purpurea)*, केसिया टोरा *(Cassia tora)*, ट्रिबुलस टेरिस्टिस *(Tribulus terrestis)*, इन्डीगोफेरा *(Indigofera)*, एकाइरेन्थस *(Achyranthus)*, प्युपेलिया *(Pupalia)* आदि ।

(2) गुदेदार मरूद्भिद (Succulent plants) अर्थात् जलाभाव प्रतिरोधी (Drought resistant) पादप – इन पादपो को मॉसलोद्भिद भी कहते है । ये सरल होते हैं । इन पादपो मे मोटी भित्ती वाले ऊत्तको की अपेक्षा पतली भित्ती वाले मृदूतक (Parenchyma) अधिक होते है । इन कोशिकाओं मे पेन्टोजन्स (Pentosans) की मात्रा अधिक होने के कारण इनमे जल परिबद्ध (Water retain) करने की क्षमता अधिक होती है । ये पदार्थ और जीवित कोशिकाओं मे नाइट्रोजनी यौगिक (Nitrogenous *compounds*) दोनो मिलकर जीवद्रव मे अत्यधिक जलयोजन (Hydration) पैदा करते हैं जिससे सरसता (Succulence) उत्पन्न होती है ।
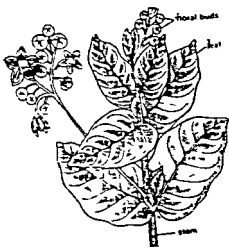
1. आक में गुदेदार एवं मोम युक्त पत्ती

2. एस्पेरेगस में क्लेडोड

3. शीघ्र पाती पर्ण वाला केर का पौधा

4. कन्टकमय पत्ती वाला सोलेनम नाइग्रम

चित्र 7.8 : जलाभाव सहिष्णु पादप
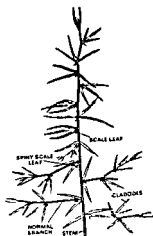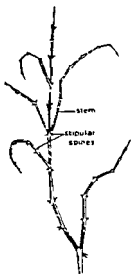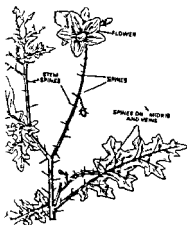
सरस पौधे दो प्रकार के होते है –

(i) **स्तम्भ सरस** (Stem succulents) -- जैसे कैक्टस (Cactus) तथा कैक्टस सदृश्य यूफोर्बिया, नागफनी *(Opuntia)* आदि । इनमे स्तम्भ सरस होता है तथा पर्ण लघुकृत (reduced) अथवा सूल सदृश (Spine like) होते हैं । इन पादपो मे जल सरस स्तम्भ मे सुरक्षित जल के रूप मे सचित रहता है । ऐसे पादपो मे प्रकाश सश्लेषण का कार्य स्तम्भ द्वारा होता है । इनमे स्तम्भ पर स्थित रन्ध्र सख्या मे कम व लगभग बन्द रहते हैं, अतएव ये पौधे कई वर्षों तक सचित जल के सहारे जीवित रह सकते है । रन्ध्रो के बन्द रहने के कारण वाष्पोत्सर्जन के साथ साथ प्रकाश-सश्लेषण भी न्यून रहता है । अत: इन पौधो मे वृद्धि दर बहुत धीमी होती है । इन पौधो मे रन्ध्र प्राय· रात मे खुलते हैं और दिन में बन्द रहते है । इस प्रक्रिया से रात मे श्वसन क्रिया द्वारा अम्ल उत्पन्न होते हैं । इन अम्लो का प्रगामी अपघटन जब दिन मे सूर्य के प्रकाश से होता है तो उससे कार्बन-डाई-ऑक्साइड बनती है जो रन्ध्र बन्द होने के कारण बाहर नही जा सकती और प्रकाश सश्लेषण मे प्रयुक्त हो जाती है । वाष्पोत्सर्जन व प्रकाश - सश्लेषण की गति मन्द होने के कारण इन पौधो मे परासरणी दाब (Osmotic pressure) कम होता है ।

(ii) **पर्ण सरस** (Leaf succulents) -- जैसे एलो या कुमारी या ग्वारपाठा *(Aloe)*, अगेव *(Agave)*, युक्का *(Yucca)*, ब्रायोफिलम *(Bryophyllum)* आदि । इन पादपो मे पर्ण सरस तथा स्तम्भ लघुकृत होता है ।

(3) अमॉसलीय या असरस मरूद्‌भिद (Non-succulent xerophytes) अर्थात् जलाभाव सहिष्णु पादप (drought endurers) – इस वर्ग मे आने वाले पादप वास्तविक मरूद्‌भिद होते हैं जिनमे बहुवर्षीय शाक, काष्ठीय झाडियाँ तथा छोटे वृक्ष सम्मिलित हैं । इन पादपो मे अनेक आकारिकीय, आन्तरिक एव कार्यिक लक्षण पाये जाते हैं जिससे वे लम्बी अवधि की शुष्क अवस्था को सहन कर जाते हैं । ऐसे पादपो के मुख्य उदाहरण – कैर *(Capparis decidua)*, ऑक *(Calotropis procera)*, बुइ *(Aerva tomentosa)*, खेजड़ा *(Prosopis cineraria)*, बबूल *(Acacia niloтica)*, फोग *(Calligonum polygonoides)*, साल्वेडोरा ओलीआइडीज *(Salvadora oleoides)*, खीप *(Leptadenia pyrotechnica)*, बेर *(Zizyphus jujuba)*, केज्युराइना *(Casuarina equisetifolia)*, कनेर *(Nerium odorum)*, सामा घास *(Psamma)* आदि ।

मरूद्‌भिदों में पारिस्थितिक अनुकूलताऐं –

शुष्क आवासो मे केवल वही पौधे जीवित रह सकते है जो प्राप्य जल को कम खर्च करे या जलाभावसह (Drought resistant) हो । मरूद्‌भिदो मे इन परिस्थितियो को सहन करने के लिये अनेक अनुकूलन पाये जाते हैं जो निम्नलिखित है ।

(अ) आकारकीय अनुकूलन –

1. मूल –

(i) मूलतत्र अत्यधिक विकसित होता है ।

(ii) जड़े भूमि मे गहराई तक जाती है तथा मूल की शाखाओं का मृदा मे विस्तृत जाल फैला रहता हैं ।
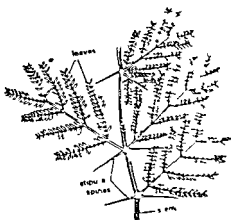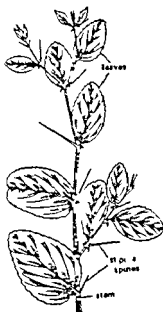
चित्र 7.9 मरुद्भिदो में कटको की उपस्थिति

(iii) जड़ो की अत्यधिक वृद्धि के कारण जड़ एव प्ररोह की लम्बाई का अनुपात 3 से 10 तक का हो जाता है ।

(iv) इनमे मूल रोम प्रचुर मात्रा मे पाये जाते है तथा मूल गुहिकाये सुविकसित होती है ।

2. स्तम्भ –

(i) वायव या भूमिगत होता है । भूमिगत स्तम्भ ग्वारपाठा *(Aloe)*, अगेव *(Agave)* आदि मे होता है ।

(ii) वायवीय स्तम्भ की शाखाऐ आपस मे सटी रहती है जैसे सिट्रुलस कोलोसिन्थस *(Citrullus colocynthes)* ।

(iii) तने पर अत्यधिक बहुकोशिकीय रोम पाये जाते है, जैसे – आँक *(Calotropis)* ।

(iv) कुछ पादपो मे स्तम्भ कटको मे परिवर्तन हो जाते है जैसे– सोलेनम जेन्थोकार्पम *(Solanum xanthocarpum)*, यूफोर्बिया स्पलेन्डेन्स *(Euphorbia splendens)* ।

(v) कुछ पादपो मे स्तम्भ पर्णाभ स्तम्भ (Phylloclade) मे रूपान्तरित हो जाता है जैसे रसकस *(Ruscus)*, कोकोलोबा *(Cocoloba)* आदि ।

3. पर्ण –

(i) अनेक मरूद्भिद पादपो मे पर्ण आशुपाती (Caducous) होती है जैसे कैर *(Capparis)* व खीप *(Leptadenia)* या कटक या शूल मे रूपान्तरित हो जाती है जैसे – नागफनी *(Opuntia)* ।

(ii) पर्ण का आकार प्राय: छोटा होता है जैसे – बबूल *(Acacia)*, खेजड़ा *(Prosopis)* तथा उनकी सतह चक्मकदार होती है जिससे प्रकाश परावर्तित हो जाता है जैसे –कनेर ।

(iii) पर्ण की सतह पर मोम (Wax) की परत होती है ।

(iv) कुछ मरूद्भिद पादपो जैसे – सामा (Samma), पोआ मे पर्ण जन्माभाव के समय गोलाई मे लिपट जाती है जिससे ऊपरी सतह जिन पर रन्ध्र होते है लिपटे पर्ण की आतरिक सतह बन जाती है और रन्ध्र सुरक्षित रहते हैं । यह प्रवृत्ति बुलीफार्म कोशिकाओं (Bulliform cells) के द्वारा होती है जो पर्ण के अधिचर्म मे पाई जाती है । (चित्र 7.10-2) ।

(ब) आन्तरिक संरचना की अनुकूलताएं (Anatomical adaptations) –

ये अनुकूलताऐं मुख्यत. जल के व्यय को कम करने के लिए ही होती हैं ।

(i) अधिचर्म पर लिग्निन व क्यूटीन की मोटी परत पाई जाती है व कभी कभी मोम व सिलिका का जमाव भी पाया जाता है । अधिचर्म पर विभिन्न प्रकार के रोम पाये जाते है । इन सभी से वाष्पोत्सर्जन मे कमी आ जाती है ।
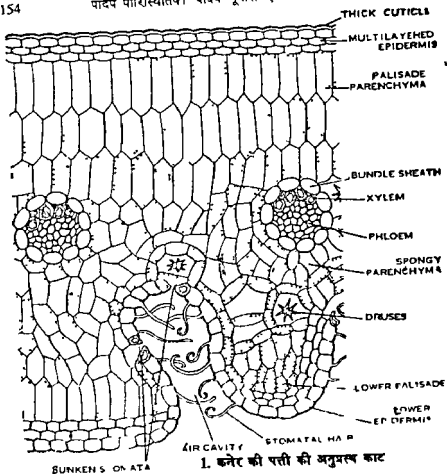
1. कनेर की पत्ती की अनुप्रस्थ काट
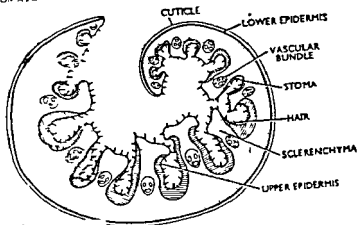
2 सेमा घास की पत्ती की अनुप्रस्थ काट

चित्र 7 10 मरुद्भिदों की आन्तरिक सरचना

(ii) अधिचर्म अनेक परतो मे होती है तथा इसकी कोशिकाऐं लिग्निकृत होती है, उदाहरण– कनेर ।

(iii) रध्र गहरे परत मे व्यवस्थित रहते है जिससे ये शुष्क हवा के सम्पर्क मे नही रहते एव गर्तीय रन्ध्र से वाष्पोत्सर्जन मे कमी आ सके ।

(iv) रध्रो की सख्या एक इकाई क्षेत्रफल मे अधिक होती है ।

(v) अधश्चर्म (Hypodermis) प्राय दृढोतकीय ऊत्तको की बनी होती है जो यात्रिक सहायता (Mechanical support) प्रदान करती है ।

(vi) बल्कुट मे रेंनिन तथा लेटेक्स वाहिकाओं की उपस्थिति ।

(vii) पर्ण मे पर्ण मध्योत्तक पूर्णरूप से खम्भाकार और स्पजी मृदुतक मे विभेदित होता है । खम्भ ऊत्तक मात्रा मे अधिक होते हैं ।

(viii) सवहनी अवयव (Conducting elements) अपेक्षाकृत लम्बे, बड़े व मात्रा मे अधिक होते है । सवहन पूल की सख्या बढ़कर एक जाल सा बना लेती है । दारू (Xyem) की मात्रा फ्लोएम (Phloem) की तुलना मे अधिक होती है जिससे पौधो मे जल सवहन मे रूकावट न्यूनतम रह जाती है । वाहिकाऐं (Vessels) लम्बी व बडी हो जाती है ।

(ix) इन पादपो मे द्वितीयक वृद्धि के कारण कार्क व छाल पाई जाती है । जलाभाव के कारण छाल की मोटाई बढ़ जाती है ।

(ग) कार्यिकी अनुकूलन (Physiological adaptations)

मरुस्थली आवासो मे सौर विकीरण (Solar radiation) तथा भूमि मे जल का वास्तविक अभाव दो मुख्य कारक है जो इन पादपो मे उपरोक्त विशेष अनुकूलन उत्पन्न करते है । प्राय: यह धारणा रही है कि मरुद्भिदो मे वाष्पोत्सर्जन की दर निम्न होती है। मेक्सिमोव (Maximov) ने इस धारणा को त्रुटिपूर्ण सिद्ध किया है । वास्तव मे सरस (Succulents) पादपो को [illegible] मरुद्भिदो मे वाश्पोत्सर्जन की दर बहुत अधिक होता ह । इन पादपो की पर्ण सतह के एक इकाई क्षेत्रफल मे प्राय: रन्ध्र सख्या मे अधिक होते हैं किन्तु इन पादपो मे पर्ण का आकार कम होता है । अत: समोद्भिद पादपो की तुलना मे रध्रो की कुल सख्या इनमे कम होती है। द्विबीजपत्री पौधो मे रन्ध्रो की बहुलता (Stomatal frequency) पर्णाधार से पर्ण शिखर तथा मध्य-शिरा (Midrib) से परिधि (Periphery) की ओर बढ़ती है अर्थात् जो भाग जल के स्रोत से अधिक दूर होता है उस क्षेत्र के एक इकाई क्षेत्रफल में रन्ध्रों की सख्या सबसे अधिक होती है । इन पादपो मे रन्ध्र दिन मे अधिक समय तक खुले रहते है । इससे प्रकाश-सश्लेषण बढ़ता है । अत जल के अवशोषण तथा ऊपर की ओर अभिकर्षण (pulling) मे प्रकाश सश्लेषण व वाष्पोत्सर्जन दोनो ही सहायक होते है ; क्योंकि इनके कारण कोशिकाओं का परासरणी सान्द्रण (Osmotic concentration) एव चूषण बल (Suction force) बढ़ जाता है । इसके अतिरिक्त वाष्पोत्सर्जन की तीव्रता गर्मी के प्रभाव को भी कम करने मे सहायक होती है ।

इन पादपो मे म्लानी (wilting) की स्थिति मे भी जीवद्रव मे क्षति-प्रतिरोधी शक्ति अधिक होती है। यह शक्ति वाष्पोत्सर्जन की अधिकता से उत्पन्न अधिक परासरणी-दाब से सम्बन्धित है।

मरुद्भिद शीघ्रता से नही मुरझाते। मुरझाने से पूर्व ये अपने जलाश की 8% से 25% तक की हानि को सहन कर सकते है।

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मरुद्भिदो मे जलाभाव सहिष्णुता मुख्यत उनके जीवद्रव्य के निम्न लिखित विशेष क्रियात्मक गुणो के आधार पर करनी चाहिये।

1 कोशिका द्रव्य की अधिक परासरण-सान्द्रता।
2 जीव-द्रव्य के जलरागी (Hydrophilic) कोलॉइडो की जल को बद्ध करने का गुण।
3 अत्यधिक निर्जली-करण की स्थितियो मे अनुत्क्रमणीय स्कदन (irreversible coagulation) का प्रतिरोध।
4 केटलेजस (Catalases), परॉक्सीडेसेज (Peroxydases) तथा स्टार्च (starch) को जल अपघटन (Hydrolyses) करने वाले एन्जाइम एमाइलेज (Amylases) का अधिक सक्रिय होना।
5 जीव-द्रव्य की पराणधार प्रक्रियाऐं चालू रखने की क्षमता।

लवणोद्भिद (Halophytes) --

आपने पढा है कि मरुद्भिद (Xerophytes) मरुस्थलो के विशिष्ट पादप है जहाँ शुष्क स्थिति गर्म तथा शुष्क जलवायु तथा मृदा के (Physical dryness) भौतिक जलाभाव के कारण होती है। पृथ्वी पर मरु अवस्था (xerism) का कारण शुष्कता (aridity) के अतिरिक्त कुछ और भी हो सकता है, जैसे– समुद्र-तट पर या लवणीय झीलो के आस पास का वातावरण भौतिक रूप से नम होते हुये भी मरु होता है [illegible] कारण भूमि या जल मे लवणो की अधिक मात्रा का होना होता है। इसके कारण पौधो को जल-अवशोषण मे कठिनाई का [illegible] है तथा पौधे क्रियात्मक जलाभाव (physiological dryness) का अनुभव करते है। समुद्र जल मे जहाँ लवणो की मात्रा प्राय 3 5% होती है कुछ विशेष स्थान जैसे राजस्थान की लवणीय झीलो मे लवण की मात्रा 10% से 15% तक हो सकती है। ऐसी भूमि क्रियात्मक रूप से शुष्क (physiologically dry) भूमि कहलाती है। लवणमय आवासों मे उगने वाले पादपो को लवण मृदोद्भिद कहते है। मेक डोगल (Mac Dougl, 1914) ने लवणीय मृदा व लवणीय दलदली स्थानो पर पाये जाने वाले पादपो को लवणमृदोद्भिद कहा है। भारत मे समुद्री किनारो के अतिरिक्त राजस्थान मे साभर, पचपद्रा, डीडवाना की लवणीय झीले लवणमृदोद्भिदो के मुख्य आवास है।

लवणमृदोद्भिदों के प्रकार-

विभिन्न वैज्ञानिको ने ऐसे पादपो के अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये है। वाईजेल (Waisel, 1972) के नवीनतम वर्गीकरण के अनुसार लवणमृदोद्भिद निम्न प्रकार के होते हैं।

1. आभासी लवणमृदोद्भिद (Pseudo halophytes)-- ये पादप लवणीय मृदा से बचने वाले, अल्प जीवी होते है ।

2. यूहेलोफाइट्स (Euhalophytes)

(अ) लवण प्रतिरोधी (Salinity resistant)

(1) लवणता से बचाव करने वाले (Salinity evading) -- इन पादपो मे लवण न तो ग्रहण होता है न ही सग्रहित होता है जैसे राइजोफोरा *(Rhizophora)*, प्रोसोपिस *(Prosopis)* आदि ।

(ii) लवण स्रवण करने वाले (salt secreting)-- इन पादपो मे लवणो का विशेष ऊतको मे सग्रहण तथा स्रवण होता है; उदाहरण– एट्रीप्लेक्स *(Atriplex)*, टेमेरिक्स *(Tamarix)* आदि ।

(iii) लवणता सहने वाले (Salinity enduring)-- लवण की अधिक मात्रा को सहन करने वाले पादप जैसे सूडा *(Suaeda)*, आदि ।

(ब) लवण की आवश्यकता वाले पादप

(i) अविकल्पी (obligate)-- इस वर्ग के पादपो को जीवन की आवश्यकता हेतु लवण आवश्यक होता है । जैसे सेलीकोर्निया *(Salicornia)*

(ii) विकल्पी (Facultative) : ये वो पादप है जिनकी वृद्धि लवण की उपस्थिति मे अधिक होती है । उदाहरण – सूडा *(Suaeda)* ।

समुद्र के किनारे दलदली जलाक्रात लवणीय स्थानो पर पायी जाने वाली वनस्पति को मेग्रोव वनस्पति कहते हैं ।

इसके मुख्य उदाहरण हैं सोनिरेसिया ऐसिडा *(Sonneratia acida)*, राइजोफोरा म्यूक्रोनेटा *(Rhizophora mucrunata)*, एलरोपस रेपेन्स *(Aleuropus repens)*, एविसिनिया ऑफिसिनेलस *(Avicennia officinalis)* आदि ।

राजस्थान के मरूस्थल लवणीय क्षेत्र (लवणीय झीलो) मे पाये जाने वाले मुख्य लवणमृदोद्भिद के उदाहरण हैं – चीनोपोडियम एलबम *(Chenopodium album)*, हेलोजाइलोन सेलिकोर्नियां *(Haloxylon salicorneum)*, सूडा फ्रूटीकोसा *(Suaeda fruticosa)*, सालसोला फोइटिडा *(Salsola foetida)*, टेमेरिक्स आर्टिकुलेटा *(Tamarix articulata)* ।

लवणमृदोद्भिद के अनुकूलन

क्रियात्मक जलाभाव के कारण लवणमृदोद्भिदो मे सुस्पष्ट मरूद्भिदी लक्षण निम्न है–

1. इनकी जड़े कम गहरी होती है तथा मृदा के ऊपरी स्तर मे फैली रहती है।
2. इनकी पत्तियाँ मोटी तथा सरस व गूदेदार होती है ।
3. इनकी पत्तियो की वाह्य – त्वचा पर क्यूटिन की मोटी परत होती है तथा इनमे खम-ऊत्तक (Palisade tissues) सुविकसित होते है ।
4. इनमे परासरणी दाब बहुत उच्च होता है ।

neumatophore
PNEUMATOPHORES
LENTICELS
HORIZONTAL ROOTS

1 मेन्ग्रोव (राइजोफोरा) में श्वसन मूल
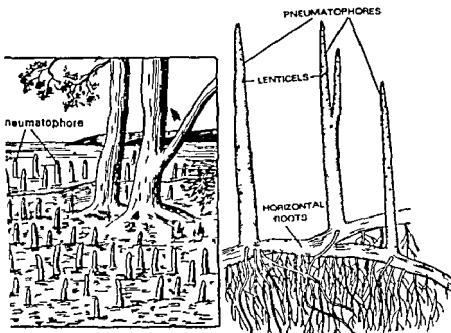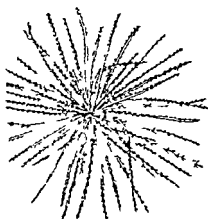
2 एक्वीनोफेक्स का पुष्पक्रम

3 बीबीपेरी अंकुरण

चित्र 7 11 लवण मृदोद्भिद
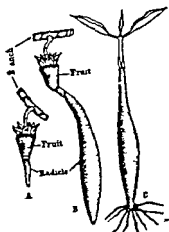
समुद्री किनारे पर मिलने वाले पादप विशेष प्रकार के वन बनाते है जिन्हे मेंग्रोव वन कहते है। मेंग्रोव वन वाले स्थलो की पारिस्थितिकी अवस्थाएँ विशेष प्रकार की होती है जैसे –

(i) यहाँ वर्षा अधिक होती है तथा सदैव बादल छाये रहने से वातावरण मे आर्द्रता अधिक होती है।
(ii) यहाँ का तापक्रम पूरे वर्ष लगभग एकसा रहता है।
(iii) यहाँ की भूमि सदैव जलक्रात, बलुई व लवणीय मृदा-युक्त होती है।

इन पारिस्थितिक अवस्थाओं के कारण ऐसे स्थानो पर छोटे, सदाहरित वृक्षो का घना जगल पाया जाता है। इन मैग्रोव (Mangrove) पादपो की निम्न लिखित मुख्य विशेषताएँ हैं।

(अ) आकारिकीय अनुकूलताऐं (Morphological Adaptation) –

(1) पादप स्वभाव मे छोटे वृक्ष, झाडी या शाकीय होते हैं।
(2) इनकी जडे प्राय भूमि मे कम गहराई तक जाती है। इसके अतिरिक्त राइजोफोरा जैसे पौधो मे यात्रिक सहयोग (Mechanical suppport) के लिए पादपो की वायव शाखाओं से स्तम्भ मूल (Stilt roots) उत्पन्न होती है।
(3) कभी-कभी यात्रिक सहायता के लिए स्तम्भ के भूमि के पास वाले स्थान से अपस्थानिक जडे अधिक सख्या मे निकल कर जटाओं की तरह फैल जाती है। इन्हे वप्र या पुश्ता जडे (Buttresses) कहते हैं।
(4) दलदली मृदा मे पानी की मात्रा अधिक होने के कारण ऑक्सीजन का अभाव रहता है अत इन पादपो, जैसे– राइजोफोरा, मे श्वसन के लिए जडो की कुछ शकुनुमा, ऋणात्मक गुरुत्वानुवर्ती (Negative geotropic) शाखाएँ ऊपर की ओर वृद्धि कर दलदली भूमि से ऊपर निकल आती है। इन जडो के शीर्ष पर एव उसके निकट अनेक सूक्ष्म रन्ध्र या लेन्टिसेल्स होते है जिनके द्वारा ऑक्सीजन की पूर्ति होती रहती है। इन्हे न्यूमेटोफोर कहते हैं।
(5) पत्तियाँ छोटी, चिकनी, मोटी एव मासल होती है।
(6) फल एव बीजो पर वायु प्रकक्षो के कारण वे प्राय भार मे हल्के होते है जिससे वे आसानी से फैल सके तथा जल द्वारा इनका प्रकीर्णन हो सके।
(7) इन पादपो मे एक विशेष अनुकूलन होता है जिसे विविपेरी (Vivipary) कहते है। इसका अर्थ है कि इन पौधो के बीज मातृ-पौधो पर ही अकुरित हो जाते हैं। उदाहरण– राइजोफोरा (Rhizophora)। इस पादप मे बीज का अकुरण फल के भीतर ही प्रारम्भ हो जाता है तथा फल उस समय मातृ पौधे पर ही लगा होता है। मूलाकुर फल से निकल कर नीचे की ओर लटका रहता है (चित्र 7 11–3)। जब बीजपत्राधार 50 से 60 से० मी० लम्बा हो जाता है तब नवोद्‌भिद् (Seedling) ऊर्ध्वाधर स्थिति मे ऐसे नीचे गिरता है कि मूलाकुर ठीक सीधा कोचड मे घुस जाये। कुछ ही समय
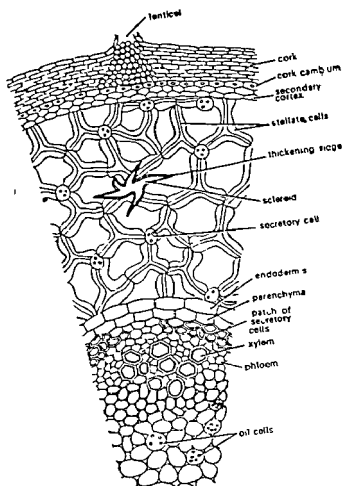
चित्र 7.12 लवण मृदोद्भिद की आतरिक सरचना

राइजोफोरा की अवस्तम्भ मूल की अनुप्रस्थ काट

पश्चात् वह जड व प्राकुर मे परिवर्धित होने लगता है । इस प्रकार के अकुरण को विविपेरी (Vivipary) कहते है । यह कैसूला *(Casulla)* राइजोफोरा *(Rhizophora)*, एवीसीनिया *(Avicennia)* आदि पादपो मे पाया जाता है।

(ब) आतरिक सरचना की अनुकूलताऐं –

1 मूल मे कार्क अनेक परतो का होता है । वायु प्रकोष्ठ उपस्थित होते है । मज्जा की कोशिकाओं मे तेल व टेनिन होता है व लिग्निन का जमाव होता है ।

2 स्तम्भ मे उपत्वचा की मोटी परत होती है । बल्कुट के बाहरी क्षेत्र मे वायु प्रकोष्ठ होते है । बल्कुट की कोशिकाओं मे तेल टेनिन तथा केल्सियम-ऑक्सलेट के कण तथा दृढ़पटल कोशिकाऐं होती है । मज्जा मे प्रकोष्ठ तथा टेनिन युक्त कोशिकाऐं पायी जाती है ।

3 पत्तियो की सरचना पृष्ठाधरी पर्ण की भाँति होती है । इनकी कोशिकाओं मे भी टेनिन व तेल भरा रहता है । इनमे श्लेष्मा कोशिकाऐं भी पाई जाती है । इनमे लवण ग्रन्थियाँ भी उपस्थित होती है जो लवण स्रावित करती है।

अध्याय : 8

राजस्थान की प्राकृतिक वनस्पति

(Vegetation of Rajasthan)

क्षेत्रफल के आधार पर राजस्थान भारतवर्ष का दूसरा सबसे बडा प्रान्त है जो कि समस्त राज्यो मे म एतिहासिक व भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजस्थान राज्य का क्षेत्रफल 132147 वर्ग मील या 3,42,214 वर्ग कि० मी० है इस प्रकार इस प्रान्त का क्षेत्रफल भारत के कुल क्षेत्रफल का 10 43% है जनसख्या के आधार पर इस प्रान्त का देश के समस्त राज्यो मे नवा स्थान है (देश की कुल जनसख्या का 5%)। राजस्थान विश्व के महानतम् मरुस्थीलय इलाको की पूर्वी सीमा बनाता है। यह मरुस्थल अफ्रीका के पश्चिमी किनारे से प्रारम्भ होकर सहारा, अरब के कुल भाग, दक्षिणी ईरान, बलूचिस्तान और पाकिस्तान के कुछ भाग से होता हुआ राजस्थान के 'थार मरुस्थल' तक आता है। राजस्थान भारत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र मे स्थित है, जो कि 23°30' और 30° 12' उत्तरी अक्षास व 69°30' और 78°17' पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला हुआ है। राजस्थान राज्य की उत्तर से दक्षिण तक की लम्बाई 870 km तथा पूर्व से पश्चिम तक का फैलाव 828 km है और इस प्रकार राजस्थान की सीमाओं की आकृति एक पतग के समान है, इसके उत्तरी क्षेत्र मे गगा नगर, दक्षिण मे बासवाडा, पूर्व मे भरतपुर और पश्चिमी मे जैसलमर खण्ड स्थित है।

कृष्णन (Krishnan, 1952) के मतानुसार राजस्थान जुरासिक (Jurassic), क्रिटेशियस (Cretaceous) व ईओसिन (Eocene)काल मे समुद्र मे डूबा हुआ था और सम्भवत तृतीयक (Tertiary) काल मे समुद्र से ऊपर उठा। ऐतिहासिक काल मे आज का यह मरुस्थलीय प्रदेश एक दलदली भू भाग था और यहाँ पर काफी अच्छे सघन वन थे। जिनमे हाथी, गेण्डे (Rhinoceros) आदि रहते थे। धीरे-धीरे कालान्तर मे यहाँ की जलवायु-आर्द्रता (Humidity) मे कमी आती गई और लगभग 1000 A.D मे यहाँ मरुस्थलीय वातावरण प्रकट होने लगे।

चम्बल, बनास, काली सिध, पार्वती (पूर्वी और उत्तर पूर्वी क्षेत्र), लूनी (पश्चिमी क्षेत्र) और माही (दक्षिणी क्षेत्र) राजस्थान प्रान्त की प्रमुख नदियाँ है। इन नदियो का जल अन्त मे क्रमश बगाल की खाडी और अरब सागर मे गिरता है।

किसी भी प्रान्त की पारिस्थितिकी के अध्ययन हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण कारको का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि ये कारक उस क्षेत्र की जैव सम्पदा (Biological wealth) को प्रभावित करते है, ऐसे कारको को पारिस्थितिक कारक कहते है। राजस्थान राज्य की वानस्पतिक सम्पदा को प्रभावित व नियन्त्रित करने वाले मुख्य कारक निम्न हैं –

(1) भौगोलिक व स्थलाकृतिक कारक (Geographical and Topographical factors)

(2) जलवायु कारक (Climatic factor)

(3) मृदा कारक (Edaphic factor)

(4) जैविक कारक (Biotic factor)

(1) भौगोलिक व स्थलाकृतिक कारक (Geographical and Topographical factors)--

राजस्थान की स्थलाकृतिक मे अरावली पर्वत श्रृखलाओं का अत्यधिक महत्त्व है। अरावली पर्वत श्रृखला की उत्पत्ति दक्षिण मे गुजरात के चम्पोनेर जिले मे हुई है और यह पर्वत श्रृखला राजस्थान को कर्णवत् (Diagonal) रूप मे दो भागो मे विभक्त करती है और अरावली की पर्वत श्रेणियाँ उत्तर मे दिल्ली तक फैली है। अरावली के पश्चिम मे मरूस्थलीय व अर्द्ध मरूस्थलीय मैदान है तथा पूर्व मे मध्यवर्ती उच्च भूमि है।

अरावली पर्वत श्रृखला की औसत लम्बाई 692 km तथा उँचाई 918 meter है और यह सम्पूर्ण राजस्थान के 9.3% भाग मे फैली है। अरावली पर्वत की सर्वोच्च चोटी माऊण्ट आबू मे स्थित गुरु शिखर 1727 मीटर ऊँची है।

अरावली के उत्तर पश्चिम का भाग (जो कि राजस्थान के क्षेत्रफल का 3/5 भाग है) थार का मरूस्थल है। यह भाग रेतीला, कम उपजाऊ व सूखा है। इस क्षेत्र ने कहीं कहीं पर चट्टानो के उभार दिखाई देते हैं। इस क्षेत्र मे श्री गगा नगर, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, चूरू, झुन्झनू, जोधपुर, नागौर, सीकर जिलो के शुष्क भू भाग है। उत्तरी क्षेत्र मे गगानगर तथा बीकानेर व जोधपुर सम्भागो मे इन्दिरा गाधी नहर के बनने से जलवायु शनै: शनै. परिवर्तित हो रही है। उत्तर पश्चिमी क्षेत्र की प्रमुख नदी 'लूनी नदी' है जो कि पुष्कर से निकलकर कच्छ की खाडी मे गिरती है। इस क्षेत्र मे साभर झील, पचभद्रा व डीडवाना जैसी खारे पानी की झीले भी स्थित है जिनमे से साभर झील सबसे बडी है। इन झीलो के पानी से नमक बनाया जाता है। साभर झील से भारत के कुल उत्पादन का 8 7% नमक प्राप्त होता है।

अरावली के दक्षिण पूर्वी भाग (जो कि राजस्थान के क्षेत्रफल का 2/5 भाग है) के भू क्षेत्र (भरतपुर, सवाई माधोपुर व कोटा) मे वर्षा ज्यादा होने के कारण हरे भरे क्षेत्र हैं। दक्षिण और दक्षिण पश्चिमी दिशा मे बासवाड़ा, डूगरपुर, उदयपुर, सिरोही और चित्तौडगढ़ जिले आते है जो कि हरे भरे, अच्छी जलवायु वाले एवम् वनो की बाहुल्यता वाले क्षेत्र है। इस क्षेत्र की मुख्य नदियाँ चम्बल व बनास है और मीठे पानी की झीलो मे जयसमद, राजसमद, नदसमद, फ़ाई सागर आदि प्रमुख है।

(2) जलवायु कारक (Climatic factors) –

किसी भी क्षेत्र की प्राकृतिक वन सम्पदा सबसे अधिक प्रभावित उस क्षेत्र मे पाये जाने वाली जलवायु से होती है। राजस्थान की जलवायु वर्ष भर मे अधिकाश समय शुष्क रहती है क्योंकि इस प्रान्त मे अपेक्षाकृत कम वर्षा, उच्च ताप व तेज हवाएँ चलती है। जलवायु कारक के प्रभावो को निम्न बिन्दुओं के अधीन देखा जा सकता है –

(a) तापमान (Temperatare)– इस राज्य मे मौसम चक्र निम्न प्रकार चलता है –

ग्रीष्म ॠतु – मार्च से जून

वर्षा ॠतु – जुलाई से अक्टूबर

शरद ॠतु – नवम्बर से फरवरी तक

राजस्थान के उत्तर व उत्तर पश्चिमी क्षेत्र मे गर्मी का सर्वाधिक प्रकोप रहता है और इस क्षेत्र मे उच्चतम गर्मी व सर्दी युक्त जलवायु उत्तरी उष्ण कटिबन्धीय मरूस्थल

(North Tropical Desert) के समान है। इसके विपरीत दक्षिणी व पूर्वी क्षेत्रो मे तापक्रम पहाड़ियो और वनो के कारण कम हो जाता है। राजस्थान मे उच्चतम तापमान 50°C तक गगानगर मे ग्रीष्मऋतु मे पहुँच जाता है। राजस्थान मे तापमान का विस्तार (Temperature Range) शीतऋतु मे 0 से 25°C व ग्रीष्मऋतु मे 25 -- 50°C तक रहता है। कभी कभी शीतऋतु मे उत्तरी भागो मे तापक्रम जनवरी माह मे हिमाँक बिन्दु तक भी चला जाता है। राजस्थान मे शीत व ग्रीष्मऋतु मे पाये जाने वाले इस अत्याधिक तापक्रम विस्तार के कारण पश्चिमी क्षेत्र (जोधपुर, बाडमेर, बीकानेर, जैसलमेर) की प्राकृतिक वनस्पति मरूद्भिदी प्रकार की है जबकि दक्षिणी क्षेत्र (उदयपुर, सिरोही, बासवाडा) मे पर्ण पाती वन पाये जाते है।

(b) **वर्षा तथा आर्द्रता (Rainfall and Humidity)** – राजस्थान मे वर्षा काफी अनिश्चित व अनियमित होती है। राजस्थान मे औसत वर्षा 30-35 cm तक होती है। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र मे वर्षा 10 cm या इससे भी कम होती है किन्तु दक्षिण पूर्व मे वर्षा 100 cm से अधिक होती है। राज्य मे सर्वाधिक वर्षा माऊण्ट आबू (150 cm) व सबसे कम जैसलमेर (16 cm) मे होती है।

वर्षा की मात्रा के आधार पर विश्वास और राव (Bisvas and Rao, 1953) ने राजस्थान को निम्न तीन भागो मे विभाजित किया है –

(i) 5" से 10" वर्षा वाले क्षेत्र – जैसलमेर व बाडमेर का कुछ क्षेत्र
(ii) 10" से 20 वर्षा वाले क्षेत्र – जोधपुर व बीकानेर
(iii) 20" से 30" वर्षा वाले क्षेत्र – जयपुर, उदयपुर, अलवर, कोटा आदि क्षेत्र

राजस्थान राज्य के औसत आँकड़ो से यह निष्कर्ष निकलता है कि इस प्रान्त मे पश्चिमी से पूर्व की ओर एवम् उत्तर से दक्षिण की ओर वर्षा की औसत दर बढ़ती है। वर्षा की इस विषमता के कारण पश्चिमी राजस्थान के भू भाग मे जल स्तर काफी नीचे है वायु मे आर्द्रता और वनस्पति की न्यूनता के कारण यह क्षेत्र मरूस्थलीय है।

शीत व ग्रीष्म ऋतु मे बहने वाली हवाऐं प्राय: शुष्क होती है, किन्तु वर्षा ऋतु मे वायु मे आर्द्रता पाई जाती है। वायु मे आपेक्षिक आर्द्रता सर्वाधिक जुलाई से सितम्बर के मध्य रहती है व निम्नतम ग्रीष्मऋतु मे मई व जून माह मे रहती है।

वायुमण्डलीय आर्द्रता के आधार पर सरूप (Sarup, 1952) ने राजस्थान को तीन भागो मे विभाजित किया --

(i) दक्षिण व दक्षिण–पूर्वी भाग – जिसमे काफी वनस्पति पाई जाती है और यह क्षेत्र अरावली पर्वत श्रृखलाओं तक फैला है।
(ii) दक्षिण और दक्षिण पूर्वी भाग के समानान्तर पश्चिमी क्षेत्र – जहाँ मरूस्थलीय पौधे पाये जाते है।
(iii) उत्तर पश्चिमी शुष्क भाग जहाँ की भूमि अनउपजाऊ है वनस्पति नही के बराबर है।

(c) **हवा एवम् आँधियाँ (Wind and Storms)** -- राजस्थान के सिर्फ कुछ पर्वतीय क्षेत्रो को छोडकर पूरे प्रान्त मे आँधियो का प्रकोप बना रहता है। पश्चिमी राजस्थान मे दक्षिण पश्चिम दिशा से निरन्तर 9 10 मील प्रतिघण्टा की गति से हवाऐं चलती रहती है। इन हवाओं की गति ग्रीष्मऋतु मे 70 मील प्रति घण्टा तक भी हो सकती है जिसके परिणाम स्वरूप गर्म धूल भरी आँधी चलती है और इस प्रकार रेत के टीले एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर निरन्तर अग्रसर होते रहते है, इसे बालू का स्तूप प्रयाग (Sand dune marching) भी कहते हैं। दक्षिण राजस्थान मे हवाओं व आँधियो की गति इतनी तीव्र नहीं होती है और मृदा भी रेतीली न होने व वनस्पति से ढकी होने के कारण आँधी का इतना प्रकोप नही पाया जाता हैं। इन क्षेत्रो मे अरावली पर्वत श्रृंखलाऐं भी एक प्राकृतिक अवरोध उपस्थित करती है। पूर्वी राजस्थान मे हवा की गति काफी कम होती है।

(3) मृदा कारक (Edaphic factors) –

तम्हाने (Tamhane, 1952) ने राजस्थान की मृदा को दो प्रकारो मे विभक्त किया है –

(i) *अरावली पर्वत के उत्तर पश्चिमी क्षेत्रो मे पाई जाने वाली रेतीली बालू मृदा (Sandy soil) जिसमे विलयशील लवणो की मात्रा अधिक होती है।*

(ii) *अरावली पर्वत के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र मे पाई जाने वाली तुलनात्मक रूप से उपजाऊ बलुई दोमट (Sandy loam), मृतिका दोमट (Clay loam) व मृतिका मृदा (Clay soil)।*

राजस्थान के उत्तर, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र मे पाये जाने वाले मरूस्थलीय क्षेत्र की मृदा अनुपजाऊ है किन्तु दक्षिण व दक्षिण-पूर्व का भाग उपजाऊ है। इस दोनो भागो के मध्य अरावली पर्वत श्रेणी एक प्राकृतिक सीमा बनाती है। अरावली के द्वारा विभाजित राजस्थान के दक्षिण भाग मे विभिन्न प्रकार की लाल, पीली व काली उपजाऊ मृदा पाई जाती है। इस मृदा मे पर्याप्त जैविक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ विभिन्न पोषक तत्व तथा जल धारण क्षमता होती है। भूमि मे भूमिगत जलस्तर अधिक गहरा नही होता व इस क्षेत्र मे अनेको झीले तथा पर्याप्त बाँध पाये जाते हैं जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र हरा भरा वनस्पति व वनो से आच्छादित रहता हैं। दक्षिण राजस्थान मे स्थित कोटा व बासबाड़ा क्षेत्र मे काली मिट्टी पाई जाती है जो कि उपजाऊ है, पूर्वी राजस्थान के अलवर व भरतपुर क्षेत्र मे दोमट (Loam) मृदा, जयपुर व अजमेर के भागों में रेतीली दोमट (Sandy loam) एवम् *पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर, बाड़मेर क्षेत्रो में (Sandy) मृदा पायी जाती है।*

मृदा मे विभिन्न प्रकार के कण पाये जाते है। पश्चिमी राजस्थान की मृदा मे इन कणो का प्रतिशत निम्न प्रकार होता है –

मोटी बालू (Coarse sand)	=	94 75%
बारीक बालू (Fine sand)	=	. 1.21%
गाद (Silt)	=	1 62%
मृतिका (Clay)	=	2 42%

मृतिका व गाद की मात्रा कम होने से मृदा की पोषक तत्वो को रोकने और जल धारण क्षमता अत्यन्त कम हो जाती है। अधोभूमि जल (Sub soil water) बहुत कम मात्रा मे पाया जाता है। जल स्रोत सिर्फ वर्षा ही है जो कि राजस्थान के अधिकाश स्थानो पर बहुत कम होती है। कुछ स्थानो पर गड्ढो मे पानी भर जाता है जो कि वनस्पति के लिए जल स्रोत बनते है। इस क्षेत्रो की वनस्पति मरुद्भिद प्रकार की होती है।

मृदा pH (Soil pH) – मृदा pH अधिक होता है, ऐसा विश्वास किया जाता है कि कच्छ की खाडी से पश्चिमी हवाओं के लवण (NaCl) के कण उडकर आते है। राजस्थान मे प्रवेश करते करते इन हवाओं का वेग कम हो जाने के कारण लवण मिश्रित धूल कण गिर जाते है और वर्षा जल के साथ लवणीय झीलो मे पहुँच जाते है। कम वर्षा एवम् अधिक वाष्पन के कारण भूमि से भी लवण बाहर की ओर आते है। इस प्रकार इन क्षेत्रो की वनस्पति मे लवण मृदोद्भिद प्रकार की वनस्पति का प्रादुर्भाव होता है।

(4) जैविक कारक (Biotic factors) –

जैविक कारक के अन्तर्गत सभी जीवित प्राणियो की क्रिया कलापो का वनस्पति पर प्रभाव सम्मिलित है। पश्चिमी राजस्थान की अधिवाश लोक प्रजातियाँ ऊन व डेयरी उद्योग द्वारा अपना जीवन यापन करती है। इसके लिए वे भेड बकरियो व ऊँटो आदि को पालते है। पशु पालन के कारण मानव ने इन क्षेत्रो की वनस्पति पर इन पशुओं को अविवेक पूर्ण रूप से चराकर, वनस्पति को नष्ट कर दिया है इसके अतिरिक्त ये पशु अपने पैरो से वनस्पति को रोद कर भी नष्ट कर देते है। जिससे भूमि अस्थिर होकर अपना उपजाऊपन भी खो देती है। मानव ने अपने उपयोग व पशुओं के लिए सूखा चारा सग्रहित करने हेतु वनो की अनियमित व अविवेक पूर्ण कटाई करके भी वनस्पति को नष्ट किया है। पशु पालक Zizyphus व Prosopis cineraria की पत्तियो को सूखाकर पशुओ को खिलाते है व लकडी का प्रयोग ईधन के रूप मे करते है।

अरावली पर्वत श्रेणियो मे आदिवासियो द्वारा स्थानान्तर कृषि (Jhum cultivation) से भी वनो का अत्यन्त ह्रास हुआ है। बिल बनाकर रहने वाले प्राणी (Burrowing animals) वनस्पति के मूल तन्त्र को नष्ट कर देते है इनके अतिरिक्त दीमक (White ant), मरूस्थली टिड्डे (Desert Locust), जगली गिलहरी (Wild Squirrel), खरहे (Hare) आदि भी वनस्पति को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रभावित करते है।

राजस्थान की वनस्पति (Vegetation of Rajasthan)

राजस्थान प्रदेश अरावली पर्वत श्रृखला द्वारा दो क्षेत्रो मे विभाजित है –

(1) उत्तर पश्चिमी व (2) दक्षिण पूर्वी क्षेत्र। इन दोनो क्षेत्रो के पारिस्थितिक कारको मे भी भिन्नता होने के कारण प्राकृतिक वनस्पति मे भी विभिन्नता पाई जाती है। अत: राजस्थान की वनस्पति के अध्ययन को भी प्रमुख तौर पर दो भागो मे विभक्त किया गया है। उत्तर पश्चिमी व दक्षिण पूर्वी क्षेत्र की वनस्पति।

शिम्पर (Schimper) के वर्गीकरण के आधार पर ब्लेटर व हॉलबर्ग (Blatter and hallberg, 1921) ने पश्चिमी राजस्थान की वनस्पति को 'फॉर्मेशन्स' (Formations)

कहा जिसका नियन्त्रण पूर्ण तथा मृदा कारक (Edaphic factor) द्वारा होता है। ब्लेटर व हॉलबर्ग के वर्गीकरण मे निम्न 5 मुख्य 'फॉर्मेशन्स' है –

(1) जलीय (Aquatic) (2) रेतीले (Sandy) (3) ग्रेवल (Gravel) (4) चट्टानी (Rocky) (5) रुड्रल (Ruderals) इन फॉर्मेशन्स को छोटी इकाईयो जिन्हे 'समूह' (Association) कहा जाता है विभाजित किया गया है।

चैम्पियन (Champion, 1936) ने राजस्थान के वनो को निम्न चार प्रकार के वनो मे वर्गीकृत किया –

(1) 5b C_1 उत्तरी रेगिस्तानी कटीले वन
 (Northern Desert Thorn forest)

(2) 5b C_2 उत्तरी अकेशिया स्क्रब वन
 (Northern Acacia Scrub forest)

(3) 5b C_3 उत्तरी यूफौर्बिया स्क्रब
 (Northern Euphorbia Scrub)

(4) D Tr E_{10} इन्लैण्ड ड्यून स्क्रब
 (Inland Dune Scrub)

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रो का वानस्पतिक अध्ययन कई वैज्ञानिको ने समय समय पर किया है। पश्चिमी राजस्थान की वनस्पति का विस्तृत अध्ययन सर्वप्रथम किंग (King, 1879), सुश्री मकाडम (Miss Macadam, 1890) व ब्लाटर और हालबर्ग (Blatter and Hallberg, 1918 व 1921) ने किया। इन के अलावा इस क्षेत्र का वानस्पतिक अध्ययन कुछ अन्य वैज्ञानिको ने भी किया है जिनमे प्रमुख – सरूप (Sarup, 1951, 1952 व 1958), सॉखला (Sankhla, 1951) व्यास (Vyas, 1955), सरूप व व्यास (Sarup and Vyas, 1958), पुरी व जैन (Puri and Jain, 1961) व मेहर होमजी (Meher Homji, 1955) आदि है।

इसी प्रकार पूर्वी राजस्थान का वानस्पतिक अध्ययन मुले व रत्नम (Mulay and Ratnam, 1950), रत्नम व जोशी (Ratnam and Joshi, 1952), नैयर (Nair 1956), व्यास (1962, 1963, 1964 व 1965) आदि ने किया।

दक्षिण पूर्वी राजस्थान का वानस्पतिक सर्वेक्षण व्यास व रामदेव (Vyas and Ramdeo, 1964), व्यास (Vyas, 1965), रामदेव (Ramdev, 1965), अग्रवाल (Agarwal, 1971), गर्ग (Garg, 1972), राणावत (Ranawat, 1973), श्रीमाल (Shrimal, 1973) आदि ने किया है।

अरावली पर्वत श्रृखला की सर्वोच्च चोटी माऊण्ट आबू की वनस्पति का अध्ययन सूतारिया (Sutaria, 1940), सरूप (Sarup, 1952), रायजादा (Raizada, 1954) व जैन (Jain, 1962) ने किया है।

राजस्थान के जलस्रोतो मे पाये जाने वाली जलीय वनस्पति का अध्ययन व्यास (Vyas, 1964 व 1968), व्यास व कुमार (Vyas and Kumar, 1968), धाकड (Dhakar,

1978), जैन (Jain, 1979), साँखला (Sankhla, 1981, 1982, 1989, 1990, 1991), साखला व व्यास (Sankhla and vyas, 1982), बिल्लौरे (Billore, 1982), पालीवाल (Paliwal, 1984, 1988 व 1989) आदि ने किया है।

राजस्थान की वनस्पति का विवरण निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत दिया जा सकता है –

(1) राजस्थान के वन (Forests of Rajasthan)
(2) *पहाड़ी वनस्पति (Vegetation of Hills)*
(3) घाटियो की वनस्पति (Vegetation of Valleys)
(4) घासस्थल (Grasslands)
(5) रेतीले क्षेत्रो की वनस्पति (Vegetation of Sandy areas)
(6) *जलीय वनस्पति (Aquatic Vegetation)*

(1) राजस्थान के वन (Forests of Rajasthan) – चेम्पियन के वन वर्गीकरण के अनुसार राजस्थान मे सात मुख्य प्रकार के वन पाये जाते है – (Fig 8 1)

(a) **शुष्क सागवान वन (Dry Teak forests)** – शुष्क सागवान वन लगभग 2000 वर्ग मील क्षेत्र मे फैले है व मुख्यतया बासवाड़ा वन मण्डल मे पाये जाते है। सागवान वन सामान्य रूप से विशुद्ध वन के रूप मे भी पाये जा सकते है किन्तु कभी कभी मिश्रित वन के रूप मे भी पाये जा सकते है। सागवान (Tectona grandis) के साथ पाये जाने वाली अन्य प्रमुख प्रजातियाँ –*Diospyros melanoxylon, Anogeissus latifolia, Aegle marmelos, Terminalia tomentosa, Lannea coromandelica* आदि है।

(b) **Anogeissus Pendula वन** – राजस्थान का यह मुख्य प्रकार का वन है जो कि 10,200 वर्ग मील क्षेत्र मे फैला है व राजस्थान के कुल वन क्षेत्र का करीब 60% क्षेत्र इस प्रकार के वनो के अधीन है। *Anogeissus pendula* वन मुख्य रूप से दक्षिण पूर्वी राजस्थान मे पाये जाते है। इस प्रकार के वनो के साथ कभी कभी *Acacia senegal* व *Acacia leucophloea* के वृक्ष भी पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इन वनो मे *Acacia catechu, Diospyros melanoxylon, Zizyphus mauratiana, Bauhinia racemosa* आदि प्रजातियाँ भी पायी जाती है।

(c) **मिश्रित पर्णपाती वन (Mixed Deciduous forests)** – इस प्रकार के वन मुख्य रूप से उदयपुर वन मण्डल मे फैले है। कोटा, बूदी, बारॉ, चित्तौड़गढ़ व सिरोही वन मण्डल के कुछ क्षेत्रो मे भी इस प्रकार के वन पाये जाते है। इस प्रकार के वन के द्वारा आच्छादित कुल क्षेत्र लगभग 3500 वर्ग मील है। इस प्रकार के वन की मुख्य प्रजाति *Anogeissus latifolia* है जो कि विशेष तौर पर पहाड़ो पर पाई जाती है। पठारी व मैदानी क्षेत्र मे *Boswellia serrata, Cassia fistula Albizzia sp, Acacia catechu, Adina cordifolia, Terminalia tomentosa* आदि प्रजातियाँ पाई जाती है।

(d) **Boswellia serrata वन** – Boswellia serrata वन अरावली की ऊपरी पर्वतीय शिखरो पर विशुद्ध वन क्षेत्र के रूप मे पाये जाते है। इस प्रकार के वन मुख्यतया
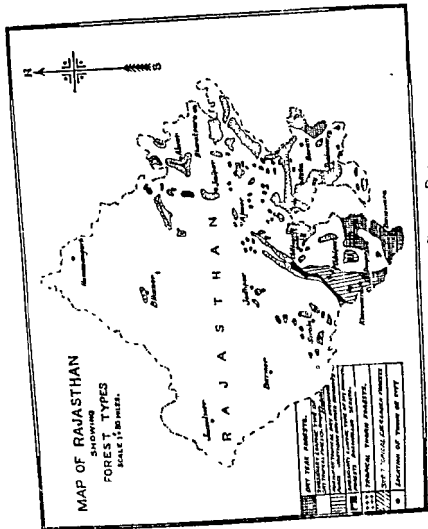
चित्र 8.1 राजस्थान के वनों का मानचित्र

अलवर, चित्तौडगढ, उदयपुर, सिरोही, अजमेर, जयपुर व जोधपुर क्षेत्र मे पाये जाते है व करीब 1000 वर्गमील क्षेत्र मे फैले है। इन वनो की मुख्य प्रजातियाँ *Lannea coromandelica, Sterculia urens* है। इनके अतिरिक्त *Emblica officinalis* व *Anogeissus latifolia* विभिन्न अनुपात मे इस वनो मे पाये जाते है। Black clay

(e) **Butea Monosperma वन** -- *Butea monosperma* काली मृतिका मृदा की मुख्य प्रजाति है व व्यावहारिक रूप से सभी घाटियो मे पाई जाती है। सामान्य रूप से यह प्रजाति विशुद्ध रूप से पाई जाती है किन्तु कभी कभी *Acacia leucophloea* व *Zizyphus mauratiana* आदि के साथ मिश्रित रूप से भी पाई जाती है। इस प्रकार के वन के अन्तर्गत पाये जाने वाला वन क्षेत्र राजस्थान के कुल वन क्षेत्र की तुलना मे नगन्य सा है।

(f) **Tropical Thorn forest** -- इस प्रकार के वन मैदानो मे, निचले स्तर के पहाडी ढलानो और उतार चढ़ाव वाले जोधपुर, जयपुर व अजमेर वन मण्डल के क्षेत्रो मे पाये जाते है जहाँ पर वार्षिक वर्षा 250 mm से 500 mm के मध्य होती है ये वन काफी विवृत (Open) होते है और इन वनो मे पाये जाने वाली सामान्य प्रजातियाँ -- *Prosopis spicigera Zizyphus xylocarpa, Acacia jacquemontii, Capparis decidua, Balanites aegyptica, Acacia arabica* आदि है। यहाँ वहाँ *Euphorbia nivulia* और *Calotropis* की प्रजातियो के क्षुप (Shrub) भी पाये जाते है।

(g) **Subtropical Evergreen forests** -- इस प्रकार के वन माऊण्ट आबू के चारो ओर 3500 से 5500 फीट की ऊँचाई वाले क्षेत्रो मे पाये जाते है व इनका क्षेत्रफल भाग 20 वर्ग मील के लगभग है। इस क्षेत्र के ढलानो पर *Mangifera indica* और *Syzygium cumini Flacourtia indica, Bauhinia purpurea, Crataeva religiosa* आदि प्रजातियाँ सामान्य रूप से पाई जाती है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख ध्यानाकर्षित करने वाली प्रजातियाँ *Carrisa apaca, Jasminum humile, Rosa moschata, Girardiana heterophylla* व *Orchid Aerides crispam* आदि है।

(2) **पहाड़ी वनस्पति (Vegetation of Hills)** -- पश्चिमी राजस्थान मे पहाड़ियाँ छोटी छोटी व कम ऊँचाई वाली है। इन पहाडियो की वनस्पति प्रमुख प्रजातियाँ *Euphorbia, Grewia, Capparis, Cordia, Anogeissus* व *Maytinus* है।

पूर्वी राजस्थान की मृदा कुछ बेहतर है, पहाडियाँ अधिक ऊँची है, यहाँ वर्षा भी अधिक होती है। इन सभी कारणो से इस क्षेत्र की वनस्पति पश्चिमी राजस्थान की वनस्पति से बेहतर है व पश्चिमी राजस्थान मे पाई जाने वाली सभी प्रजातियो के अतिरिक्त *Boswellia, Terminelia, Bauhinia, Bombax* की प्रजातियाँ प्रमुख है। इस क्षेत्र मे वृक्षो की तुलना मे क्षुप प्रजातियाँ *Capparis, Zizyphus, Mallotus, Helictris, Maytenus* अधिक हैं। अलवर वन मण्डल क्षेत्र मे हिमालय क्षेत्र की *Mitragyna, Randia, Woodfordia, Gmelina* जैसी प्रजातियाँ पाई जाती है, व्यास (Vyas, 1962)।

दक्षिणी राजस्थान की मृदा मृतिका (Clayey) प्रकार की है इस क्षेत्र की पहाड़ियो की ऊँचाई अधिक है व वर्षा भी अधिक होने के कारण इस क्षेत्र मे सघन वनस्पति पाई

जाती है। यहाँ पर वृक्षो की बहुलता है व क्षुप विलुप्त हो गये है। इस क्षेत्र मे निम्न प्रजातियाँ के वृक्ष प्रमुखता से पाये जाते है – *Salmelia, Gmelina Madhuca, Cordia Butea, Terminelia, Tectona, Anogeissus, Diospyros* ।

(3) **घाटियों की वनस्पति (Vegetation of Valleys)** - राजस्थान मे लम्बी लम्बी पर्वत श्रृखलाऐ एक दूसरे के समानान्तर फैली है जिसके कारण उनके बीच मे घाटियाँ (Valleys) बन गई है। ये घाटियाँ (1) खुली (2) ठण्डी व छायादार हो सकती है।

(1) विवृत और खुली (Open and Exposed) घाटियो की बहुवर्षीय प्रजातियाँ *Acacia nilotica Butea monosperma Balanites aegyptica, Adhatoda vasica, Capparis zeylanica* आदि है।

(2) ठण्डी व छायादार घाटियो (Cold and Shaded valleys) मे *Butea monosperma, Madhuca indica Grewia flavescens, Mitragyna parvifolia* व *Dendrocalamus strictus* आदि के वृक्ष पाये जाते है।

(4) **घास स्थल (Grasslands)** – पुरी (Puri, 1960) के मत मे राजस्थान के घास स्थल मरुद्मिदी घास स्थल (Xerophilous grasslands) श्रेणी मे आते है। व्यास (Vyas, 1964) ने पूर्वी राजस्थान के अलग-अलग स्थानो के घास स्थलो का अध्ययन करके निम्न समुदायो की पहचान की –

	घासस्थल समुदाय (Grassland community)	**आवासस्थल** (Habitat)
1	Bothriochloa – Aristida	शुष्क पहाड़िया
2	Heteropogon – chrysopogon	पहाड़ी ढलान
3	Dichanthium – Cenchrus	चट्टान मिश्रित स्थान
4	Dendrocalamus – Saccharum– Vetiveria	नम घाटियाँ
5	Cenchrus – Eragrostis – Dichanthium	रेतीले मैदान
6	Dichanthium –Cynodon	रेतीले दोमट मैदान
7.	Saccharum –- Cynodon – Eragrostis	रेतीले नदी के पेटे
8	Arthraxon - Vetiveria	दलदली स्थान

व्यास (1964) ने पूर्वी राजस्थान के अलवर क्षेत्र के घास स्थलो व चरागाहो का अध्ययन करते वक्त वहाँ के चरागाहे क्षेत्रो मे सम्भावित अनुक्रमण प्रवृति (Succession trend) का वर्णन किया है। जिसे पृष्ठ 172 पर रेखांकित किया गया है।

(5) **रेतीले क्षेत्रों की वनस्पति (Vegetation of Sandy areas)** – जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर व अलवर और जयपुर के कुछ भागो मे रेतीले मैदानी क्षेत्र पाये जाते हैं। इन रेतीले मैदानी क्षेत्रो की वनस्पति को निम्न दो प्रकारो मे विभक्त किया जा सकता है –

(1) वे पौधे जो कि वर्षा जल पर निर्भर रहते है – इस प्रकार के पौधे वर्षा ऋतु मे प्रथम वर्षा के साथ ही उग आते हैं व शीघ्र ही अपनी जीवन चक्र पूर्ण कर लेते हैं। जैसा कि *Mallugo, Gissikia* ।

पहाड़ी क्षेत्रों में अनुक्रमण प्रवृत्ति
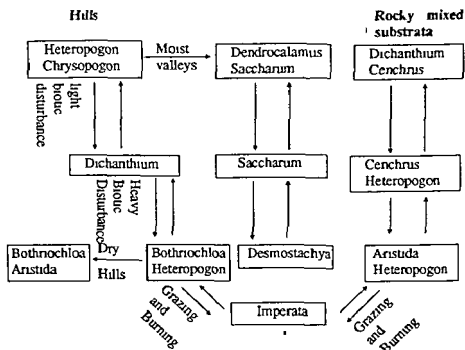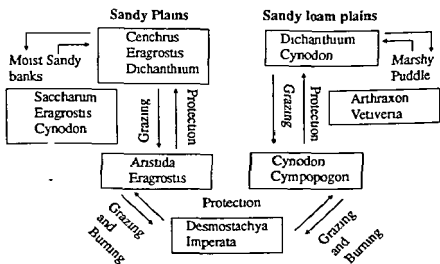
(ii) वे पौधे जो कि मृदा जल पर निर्भर रहते है – इस प्रकार के पौधो का मूल तन्त्र (Root system) सुविकसित होता है व जल अवशोषण हेतु मूल काफी लम्बी होती है। इन पौधो मे मरुद्भिदी अनुकूलन (Xerophytic Adaptation) पाये जाते है।

मृदा कारक के आधार पर इन रेतीले मैदानो की वनस्पति का अध्ययन निम्न तीन बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

(i) **एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ने वाले रेतीले टीलों की वनस्पति (Vegetation of moving sand dune areas)** – ऐसे टीले पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर बाड़मेर व बीकानेर क्षेत्रो व पिलानी और शेखावटी क्षेत्र मे पाये जाते है। इन क्षेत्रो मे पाये जाने वाले पौधो मे *Calligonum polygonoides Leptadaenia pyrotechnica Alhagi camelorum Calotropis procera* आदि मुख्य है।

(ii) **स्थिर टीलों वाले क्षेत्रों की वनस्पति (Vegetation of stable sand dunes)** – इस प्रकार के टीलो पर *Prosopis spicigera Tecomella undulata Acacia senegal Capparis decidua Calotropis procera* आदि प्रजातियो के पौधे पाये जाते हैं।

(iii) **स्थिर रेती वाले क्षेत्रों की वनस्पति (Vegetation of areas with stabilized sand)** – इन क्षेत्रो की प्रमुख प्रजातियाँ – *Acacia senegal Prosopis spicigera Capparis decidua Acacia nilotica Zizyphus numularia Maytenus senegalensis* आदि है।

(6) **जलीय वनस्पति (Aquatic vegetation)** – जलीय वनस्पति को Weaver व Clements (1929) ने तीन वृहद् पादप समूहो मे वर्गीकृत किया है। इन समूहो मे सम्मिलित पौधो को जल वायु व मृदा सम्पर्क के आधार पर निम्न छ जीव रूपो (Life forms) मे विभक्त किया गया है –

(A) **प्लवमान जलोद्भिद (Floating Hydrophytes)** – इस प्रकार के पादप जल की सतह पर तैरते रहते हैं अत ये पौधे जल तथा वायु दोनो से सम्पर्क बनाये रखते हैं। इन पौधो को मृदा से सम्बन्ध के आधार पर दो भागो मे विभाजित किया गया है –

(i) स्वतन्त्र प्लवमान (Free floating) – इस वर्ग के पादप स्वतन्त्र रूप से जल की सतह पर तैरते रहते है और सिर्फ जल व वायु के सम्पर्क मे रहते है। जैसे –*Lemna Spirodella Eichhornia Azolla Pistia stratiotes* इत्यादि।

(ii) स्थिर प्लवमान (Anchored floating) इस श्रेणी के पौधे प्लवमान स्थिति मे तो रहते है किन्तु इनकी मूल जलाशय के पैंदे मे कीचड मे धसी रहती है। अत इन पौधो का सम्पर्क जल वायु तथा मृदा तीनो से रहता है। जैसे कि *Nelumbium Nymphaea Victoria regia Apomogeton Trapa natans Marselia* आदि।

(B) निमग्न जलोद्भिद (Submerged Hydrophytes) – ऐसे जलीय पादप जल सतह के नीचे यानि कि पूर्ण रूप से जल में डूबे रहते हैं अत. इनका वायु से सम्पर्क नहीं रहता है । निमग्न जलोद्भिद भी दो प्रकार के होते हैं –

(iii) निलम्बित निमग्न (Suspended Submerged) – इस श्रेणी के पादप मात्र जल के सम्पर्क में रहते हैं और पानी में निमग्न अवस्था में तैरते रहते हैं जैसे कि *Ceratophyllum demersum, Potamogeton pectinatus, Najas minor, Utricularia stellaris, Utricularia flexuosa* आदि ।

(iv) स्थिर निमग्न (Anchored Submerged) – इस वर्ग के पादपों का अधिकांश हिस्सा मृदा व जल के सम्पर्क में रहता है । ऐसे पौधे जड़ों के द्वारा एक ही स्थान पर स्थिर रहते हैं । इस वर्ग के पौधों के पुष्प जल सतह के कुछ ही ऊपर निकले होते हैं । इस वर्ग में *Hydrilla verticillata, Vallisneria spiralis, Potamogeton crispus, Potamogeton nodosus* आदि सम्मिलित हैं ।

(C) जल स्थलीय जलोद्भिद (Amphibious Hydrophytes) – इस समूह के पादपों का कुछ भाग जल तथा शेष भाग वायु में होता है एवम् ये पौधे स्थलीय व जलीय दोनों प्रकार के अनुकूलन प्रदर्शित करते हैं । जल स्थलीय जलोद्भिद भी दो प्रकार के होते हैं –

(v) जल से बाहर निकले जल स्थलीय पादप (Emergent Amphibious Hydrophytes) – इस समूह के पादपों की जड़ें तथा प्रकन्द पानी के नीचे कीचड़ में रहते हैं और प्ररोह तन्त्र का निचला हिस्सा पानी में डूबा रहता है जबकि शेष भाग वायव होता है जैसे – *Limnophila heterophylla, Scirpus erectus, Paspalidium geminatum, Sagittaria sagittifolia, Ranunculus aquatilis* आदि ।

(vi) दलदली पादप (Marsh plants) – इस श्रेणी के पादप जलीय आवासों के किनारों पर व दलदली आवास में पाये जाते हैं इनका जीवन अशत: समोद्भिद (Mesophytes) पौधों के समान होता है जैसे कि – *Typha, Phragmites, Herpestis monniera, Polygonum, Alternanthera sessilis, Rumex dentatus, Eclipta prostrata* आदि ।

जलाशयों के मध्य के गहरे क्षेत्रों से किनारों के उथल क्षेत्रों की ओर आने पर प्रमुख प्रजातियाँ निम्न प्रकार से बदलती हैं –

Vallisneria	→	Utricularia	→	Ceratophyllum
Potamogeton	→	Hygroryza	→	Polygonum
Marsilea	→	Ammania	→	Alternanthera
Herpestis.				

खण्ड (ब) पादप भूगोल (Phyto-Geography)

अध्याय : 9

पादप भूगोल-परिचय

(Phyto–Geography, An introduction)

ससार मे किसी भी दो जगह की वनस्पति पुर्णतया समान नही होती । निकटस्थ जगह की वनस्पति मे भी कुछ भिन्नता अवश्य ही पाई जाती है । पादप भूगोल हमे पौधो के वर्तमान और अतीत मे भौगोलिक वितरण के सम्बन्ध मे ज्ञान कराता है । वास्तव मे यह सजीव भूगोल का अध्ययन है । विश्व मे पौधे कहाँ कहाँ पाये जाते है ? क्या इन पौधो का उद्भव उसी स्थान पर हुआ है या अन्यत्र से वहाँ पहूँचे है ? आदि ऐसे अनेक प्रश्न है जिनका उत्तर पादप भूगोल के माध्यम से दिया जा सकता है । पादप के भौगोलिक वितरण की वर्तमान स्थिति को ज्ञात करना तो अपेक्षाकृत सरल है परन्तु सामान्यतया इस वितरण की व्याख्या करना कठिन व विवादास्पद है । जब से मनुष्य ने कृषि कार्य प्रारम्भ किया है उसने उपयोगी पौधो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना और ऊगाना प्रारम्भ किया, तभी से पादप वितरण प्रकार भी अत्यधिक प्रभावित हुआ है । मानव घटक ने पौधो पर अपनी निर्भरता के कारण प्रकृति के सतुलन व पादप वितरण को बहुत प्रभावित किया है । अतः पादप भूगोल के अध्ययन मे मनुष्य के इतिहास का ज्ञान होना भी आवश्यक है । पर्यावरणीय कारक पौधो के वितरण को सबसे अधिक प्रभावित करते है । इसके अतिरिक्त आकारिकी, आनुवाशिकी आदि विषयो का ज्ञान भी आवश्यक है । इस प्रकार पादप भूगोल पारिस्थितिकी के सन्निकट और बहु आयामी है ।

पादप भूगोल की परिभाषा, प्रकार एवम् संक्षिप्त इतिहास :-- विश्व मे भिन्न भिन्न स्थानो के पौधो और जन्तुओ के प्रकार, उनकी उत्पति, वितरण आदि पहलुओ के वैज्ञानिक अध्ययन को जैव भूगोल (Bio–geography) कहते है तथा इसी दृष्टिकोण से पादपो के अध्ययन को पादप भूगोल (Plant geography or Phyto geography) कहा जाता है । पादप भूगोल के अध्ययन को दो प्रमुख भागो मे बाँटा जा सकता है ।

(i) **पादपी पादप भुगोल (Floristic Phyto– Geography)** -- यह पौधो के वर्गीकरण से सम्बन्धित है । इसमे जाति, प्रजाति या कुल के वितरण का अध्ययन होता है ।

(ii) **वानस्पतिक पादप भूगोल (Vegetational Phyto– geography)** -- इसमे वनस्पति समुदायो के वितरण का अध्ययन होता है । अठारहवी शताब्दी के अन्त तक पादप भूगोल पृथक विषय न हो कर प्रकृति अध्ययन का ही एक अग था उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे विश्व के विभिन्न भागो मे पौधो का विस्तृत सग्रह किया गया और पादप सूचियाँ (Flora) प्रकाशित की गई । इस तरह पादपो के वितरण सम्बन्धी प्रारम्भिक ज्ञान समुदायो के विवरणो तक ही सीमित रहा । इसक श्रेय वान हम्बोल्ट (1805), मेयेन (1836) डे कैन्डोल (1855) आदि को है । वान

हम्बोलट को पादप भूगोल का पिता कहा जाता है । इन अध्ययनो मे जलवायु कारक के अतिरिक्त पौधो के पूर्व इतिहास, प्रवास और मृदा कारक के प्रभावो पर भी विचार किया गया । डे कैन्डोल ने सर्वप्रथम पौधो के जीवाश्मिक इतिहास के ज्ञान की आवश्कता पर बल दिया था । यद्यपि उस समय तक डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित व प्रकाशित नही हुआ था परन्तु डे कैन्डोल ने जातियो के विकास की समावना व्यक्त कर दी थी । जिनके आधार पर उनके वितरण की व्याख्या की जा सकती थी । बाद के वर्षो मे पौधो के नामकरण , विकास सिद्धान्त के प्रतिपादन, जीवाश्मो के अध्ययनो और भूवैज्ञानिक सिद्धान्तो के विकास के बाद इस शताब्दी के प्रारम्भ मे व्याख्यात्मक (Interpretive) पादप भूगोल का विकास हुआ । इसी बीच विवरणात्मक (Descriptive) पादप भूगोल का भी विकास हुआ । इस प्रकार वर्तमान मे पादप भूगोल के अध्ययन को दो प्रमुख क्षेत्रो मे विभाजित किया जाता है । प्रथम वर्णात्मक या स्थैतिक (Descriptive or Static Phytogeography) । यहाँ स्थैतिक शब्द का प्रयोग वनस्पति के लिये प्रयुक्त करना उचित नही है क्योंकि यह चरम अवस्था मे भी गतिक तत्र है तथा वातावरण के साथ सदैव एक गतिक सतुलन मे रहती है । इस क्षेत्र मे समुदायो के अध्ययन के अतिरिक्त पादप सगठन की समानताओ के आधार पर पादपी प्रान्तो या मण्डलो (Floristic Provinces or Floristic Regions) की स्थापना की गई । द्वितीय व्याख्यात्मक या गतिक या विश्लेषणात्मक (Interpritive or Dynamic or analytical Phyto-geography) पादपभूगोल – इसके अन्तर्गत किसी स्थान पर पाई जाने वाली वनस्पति या पादप समुदाय का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है । उस क्षेत्र मे प्राप्त वनस्पति वहाँ क्यो और कैसे आई उनका उद्‌विकास एवम् विस्तारण कैसे हुआ होगा आदि प्रश्नो का विचार कर वर्तमान वितरण की व्याख्या की जाती है । इसी काल खण्ड मे पारिस्थितिकी सिद्धान्तो के साथ साथ पादप भूगोल के सिद्धातो का भी प्रतिपादन हुआ । इनमे ग्राइस बाख (1872), ड्रूड (1890) शिम्पर (1898), गुड (1947,1964) के नाम उल्लेखनीय है । आधुनिक पादप भूगोल शास्त्रियो मे वुल्फ (1943), केन (1944) गुड (1964) टरिल (1953), पालुनिन (1960) आदि का नाम प्रमुख है ।

पादप भूगोल का क्षेत्र या विस्तार

पादप भूगोल मे पौधो के वितरण की व्याख्या करना सदैव कठिन तथा विवादास्पद रहा है । इसके लिये बहुसेत्रिय विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है जैसे वितरण सम्बन्धी समस्याओं के अध्ययन के लिये प्रथम वितरण का वास्तविक अध्ययन आवश्यक है जो कि विश्व के विभिन्न पादप सगठन के अध्ययन से ज्ञात किया जाता है । इसमे विश्व के समस्त पादपो को सूचीबद्ध करना सम्मिलित है । यह अत्यन्त कठिन व दुरह कार्य है । वर्तमान व अतीत मे वितरण की व्याख्या करने के लिये सम्बन्धित जाति या प्रजाति का पारिस्थितिकीय अध्ययन करना आवश्यक होता है । प्रत्येक पौधे की कुछ विशिष्ट पर्यावरणीय आवश्यकताऐं होती है । पर्यावरण के विभिन्न कारको के प्रति इनकी सहनशीलता का निर्धारण आनुवाशिकी

के आधार पर होता है। अतः इसमे आनुवांशिकी (Genetics) का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इस तरह वितरण क्षेत्र का पर्यावरण उस पौधे की सामान्य वृद्धि के अनुकूल होता है परन्तु इनका यह आशय कदापि नही है कि अन्य क्षेत्रो का पर्यावरण उस पौधे की वृद्धि के अनुकूल नही है। इसके लिये हमे विभिन्न भौगोलिक स्थलो के पर्यावरण का विस्तृत ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसके साथ साथ पौधे के अतीत का इतिहास और जातिवृतीय सबन्धो का अध्ययन भी आवश्यक होता है। जीवाश्मो के अध्ययन से पादपो के पुर्वजो का पता लगा कर, पूर्वकाल मे हुए प्रवासो आदि के अनुमान से वर्तमान मे वितरग के प्रकार की व्याख्या की जाती है। इसके लिये अतीत का हर पहलु से अध्ययन एवम् ज्ञान का होना आवश्यक है। यह निर्विवाद एवम् शाश्वत सत्य है कि पादप भूगोल के अध्ययन मे पारिस्थितिकी अध्ययन की आवश्यकता अनुभूत होती है। इस विज्ञान की सीमाए अनन्त है तथा इसके अध्ययन के लिये विज्ञान की अन्य शाखाओं का समावेश करना भी आवश्यक है। इसके गहन एवम् विस्तृत अध्ययन के लिये वनस्पति शास्त्र की अन्य शाखाओ जैसे वर्गीकी, आकारिकी, कार्यिकी, आन्तरिक सरचना, आनुवांशिकी विकास इत्यादि के अलावा भौतिकी, रसायन, भूगर्भ तथा मौसम विज्ञान आदि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है।

अध्याय : 10

भारत के पादप भौगोलिक क्षेत्र
(Phyto-Geographical Regions of India)

विवरणात्मक पादप भूगोल (Descriptive plant geography) का अध्ययन क्षेत्र विभिन्न जलवायु प्रदेशो के विश्लेषण तथा विभिन्न पादप समुदायो के भौगोलिक वितरण से सबन्धित है। किसी स्थान का पादप जात (Flora) तथा वनस्पति (Vegetation), उस स्थान के विशिष्ट लक्षणो को परावर्तित (Reflect) करती है। पादप जात से हमारा तात्पर्य उस क्षेत्र मे पाई जाने वाली पादप जातियो, प्रजातियो के नामो, लक्षणो तथा वितरण से है, जबकि उस क्षेत्र की वनस्पति के अन्तर्गत पादप समूहो के सगठन, आकार, विस्तार, उद्भव, आवरण (Cover), आधार आवरण (Basal cover), विकास आदि बिन्दुओं के अध्ययन पर बल दिया जाता है। वस्तुत: यह पादप समुदायो के दृष्टिगत प्रकारो से सबन्धित है अर्थात् उपस्थिति, वनस्पति का प्रकार – वन (जिसमे अधिसख्य पादप वृक्ष होते है) या घास स्थल (जिसमे अधिसख्य पौधे घास के साथ कुछ क्षुप व शाक होते है) या मरुस्थल इत्यादि जैसा हैं। जलवायवीय कारक के घटक मुख्यत. तापमान व वर्षा किसी प्राकृतिक वास (Habitat) की वनस्पति के विकास तथा वितरण को प्रधानत प्रभावित करते है। अत: वर्णनात्मक पादप भूगोल के अध्ययन मे जलवायु का ज्ञान विषय को अच्छी तरह समझने मे सहायक होता है।

समान्यत. पादप भौगोलिक क्षेत्र, भौतिक भौगोलिक क्षेत्र से साम्य रखते है।

यहाँ हम भारत की जलवायु का सक्षिप्त अध्ययन करेगे।

भारत एक सुनिश्चित एवम् सुस्पष्ट भौगोलिक इकाई है। यहाँ की जलवायु की विभिन्नता तथा विषमता इसकी भूआकृतिक विविधता तथा अत्यधिक विस्तार का परिणाम है। भारत के उत्तर मे स्थित हिमालय पर्वत श्रृखलाऐं सदैव हिमाच्छादित रहते हुए ध्रुव प्रदेश की जलवायु का आभास देती है। पूर्व मे स्थित चेरापूजी विश्व का सर्वाधिक वर्षा वाला भूभाग रहा है तो पश्चिमी राजस्थान के कुछ मरुस्थलीय प्रदेश एकदम शुष्क है। दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट क्षेत्र अत्यधिक आर्द्र तथा गर्म होने से सघन वन क्षेत्रो से आच्छादित है। गगा के मैदानी भूभाग आर्द्र एवम उपजाऊ है। जलवायु की इसी विविधता तथा प्राकृतिक प्रवास बाधक के कारण यहाँ विविध प्रकार की वनस्पति का अद्भुत सगम हुआ है। विश्व जलवायु के वर्गीकरण के अनुसार भारत की जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है।

वर्षा के आधार पर भारत को चार जलवायवीय प्रदेशो (Climatic regions) मे विभक्त किया गया है। (चित्र 10 1)

भारत के जलवायवीय प्रदेश (Climatic regions of India)

1. **नम क्षेत्र (Wet zone) :** इस क्षेत्र मे 200 से० मी० से अधिक वर्षा होती है। इसके अन्तर्गत केरल, कर्नाटक, बम्बई के पश्चिमी तटवर्ती क्षेत्र, बगाल, बिहार, आसाम, मेघालय, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र, मध्य प्रदेश के कुछ भाग आते
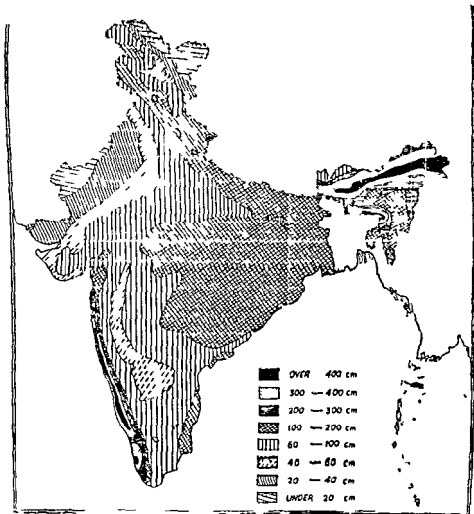
चित्र 10 1 : भारत की औसत वार्षिक वर्षा

है। इन क्षेत्रो मे प्राकृतिक वनस्पति उष्ण आर्द्र सदाबहार, उष्ण अर्ध सदाबहार तथा उष्ण नम पर्णपाती वनो की होती है।

2. **मध्यवर्ती क्षेत्र (*Intermediate zone*)** : इस क्षेत्र मे वर्षा 100 से० मी० से अधिक तथा 200 से० मी० से कम होती है। इसमे मद्रास, उत्तर प्रदेश पूर्वी मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू, पजाब, दक्षिणी उत्तर-पश्चिमी दक्कन के क्षेत्र सम्मिलित है। यहाँ अधिकाशत पर्णपाती वन पाये जाते है।
3. **शुष्क क्षेत्र (Dry zone)** : पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पजाब के कुछ भाग, देहली, गुजरात, पश्चिमी मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, दक्षिण आन्ध्र प्रदेश जहाँ वार्षिक वर्षा 50-100 से० मी० तक होती है। शुष्क क्षेत्र कहलाते है। यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति कटीले झाड़ (Thorny scrub) तथा अपेक्षाकृत नम स्थानो मे शुष्क पर्णपाती वनो की होती है।
4. **मरु क्षेत्र (Arid zone)** : इस क्षेत्र के अन्तर्गत विशाल मरुस्थलीय व अर्ध मरुस्थलीय क्षेत्र, पजाब का दक्षिण-पश्चिमी भाग, पश्चिमी राजस्थान, उत्तर पश्चिमी *गुजरात, दक्षिण सिंध के मैदान आते है जहाँ 50 से० मी० से भी कम वार्षिक* वर्षा होती है। जिनमे प्राकृतिक वनस्पति कटीले वनो की होती है।

भारत के पादप भौगोलिक क्षेत्र या भारतीय वनस्पति क्षेत्र (Phytogeographical regions of India or Botanical regions of India):

भारत मे पादप भौगोलिक अध्ययनो का प्रारम्भ हुकर ने 1855 मे अपनी पुस्तक "फ्लोरा इडिका" से किया। इसमे उस समय के ब्रिटिश इडिया को नौ पादपी प्रान्तो (Floral or Botanical provinces) मे विभक्त किया गया तथा यहाँ पाये जाने वाले पादपी तत्वो (Floristic elements) का भी विशद् विश्लेषण किया गया परन्तु बाद के सौ वर्षों मे इस पादप सूची का नवीनीकरण नही किया जा सका। मेहर होम जी और *मिश्रा (1973) ने उपलब्ध प्रकाशनो के आधार पर तब तक के अध्ययनो की समीक्षा* प्रस्तुत की। पादप सगठन स्वरूप, भूआकृति (Physiography) तथा जलवायु के आधार पर वैज्ञानिको ने पादपो को कुछ पादपी प्रान्तो मे विभाजित किया है। जिनमे हुकर (1855), *क्लार्क (1998), प्रेज, (1908) चटर्जी (1939), रोजी (1955) तथा लेग्रिस (1963)* के नाम उल्लेखनीय है। रोजी ने भूआकृतिक, जलवायु तथा प्रवास मार्गों के अध्ययन के आधार पर भारत को 22 पादपी प्रान्तो मे विभक्त किया है हालाकि पादप भौगोलिक दृष्टि से चटर्जी (1939) का वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। चित्र 10.2 से 10.5 तथा सारणी 10.1 मे इन वर्गीकरणो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। भारत के वर्तमान भौगोलिक आधार (पाकिस्तान, लका व बर्मा के अतिरिक्त) पर सामान्यत आठ पादपी प्रान्तो या वानस्पतिक क्षेत्रो (Botanical regions) मे बाटा जाता है (चित्र 10.6)। इस पादपी प्रान्तो के मुख्य वानस्पतिक समुदाय निम्न प्रकार है।

1. **पश्चिमी हिमालय (Western Himalayas)** : पूर्व मे उत्तर प्रदेश के कुमाऊ से पश्चिम मे कश्मीर तक फैले इस भूभाग मे तापमान बहुत कम रहता है। यहाँ

सारणी 10.1 भारत के पादपी प्रांत

क्लार्क	हुकर	चटर्जी	रोजी
1 पश्चिम हिमालय	2 पश्चिम हिमालय	8 पश्चिम हिमालय	18 उत्तर पश्चिम हिमालय, भारतीय मरुस्थल
2 भारतीय मरुस्थल	3 सिंध का मैदान	3 सिंध का मैदान	13 सिंध
			14 रजवाड़ा
			15 पंजाब
			12 गुजरात
3 मलाबार	5 मलाबार	2 मलाबार	1 मलाबार (लंका सहित)
			2 कोंकण
			3 कर्नाटक
4 सीलोन (श्रीलंका)	7 सीलोन और मालद्वीप		4 मैसूर
			5 दक्कन पठार
			6 खानदेश
			7 बरार
			8 उड़ीसा
5 कोरोमंडल	6 दक्कन पठार	1 दक्कन	11 मालवा
6 गंगा का मैदान	4 गंगा का मैदान	4 गंगा का मैदान	16 ऊपरी गंगा का मैदान
			10 बुंदेलखंड
			9 बिहार
			17 बंगाल
7 पूर्वी हिमालय	1 पूर्वी हिमालय	6 पूर्वी हिन्मालय	20 पूर्वी हिमालय
			21 उत्तर-पूर्वी भारत
		7 मध्य हिमालय	19 मध्य हिमालय
8 बर्मा	8 बर्मा	5 आसाम	
9 आवा		9 ऊपरी बर्मा	
10 पेगू		10 निचला बर्मा	
11 मलाया प्रायद्वीप	9 मलाया प्रायद्वीप		

चित्र 10.2

भारत के पादपी प्रान्त (क्लार्क के अनुसार)

चित्र 10.3

भारत के पादपी प्रान्त (हुकर के अनुसार)
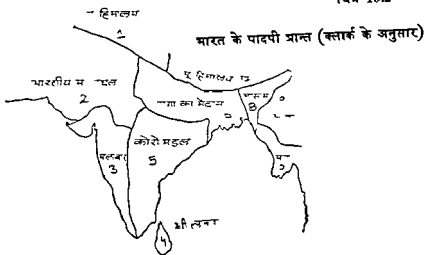
चित्र 10.4

भारत के पादपी प्रान्त (चटर्जी के अनुसार)
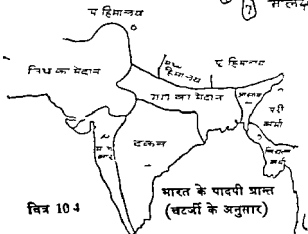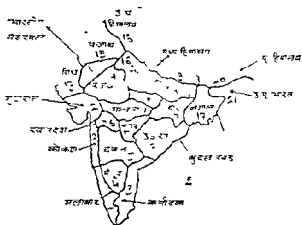
चित्र 10.5 : भारत के पादपी प्रान्त (रोजी के अनुसार)

चित्र 10.6 : भारत के वानस्पतिक प्रदेश

चित्र 10.7 : पश्चिमी और पूर्वी हिमालय पर ऊँचाई के अनुसार वितरण
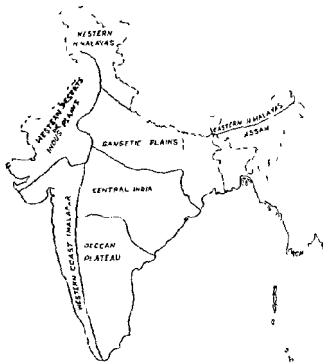
औसत वार्षिक वर्षा 100 से 200 से० मी० तक होती है । इसकी मात्रा पश्चिमी की ओर अपेक्षाकृत कम होती जाती हैं । ऊँचाई के अनुसार यहाँ पर तीन प्रकार के अनुक्षेत्र पाये जाते है ।

(क) अधो पर्वतीय अनुक्षेत्र (Sub-montane zone) : यह 300 से 1500 मीटर की ऊँचाई तक फैला, तराई और शिवालिक पर्वत श्रृखलाओं से युक्त हिमालय क्षेत्र है । यहाँ की जलवायु उष्ण तथा उपोष्ण वनो के उपयुक्त हैं । यहाँ प्रमुखत आर्द्र तथा नम स्थानो पर यूजीनिया जैम्बोलेना, शोरिया रोवस्टा, डैल्बर्जिया सीसो (शिशम) आदि, अपेक्षाकृत नम स्थानो पर ब्युटिया मोनोस्पर्मा, अकेशिया कटेचू, फ्राइकस ग्लोमरेटा आदि तथा अधिक शुष्क स्थानो पर जिजिफस, कैरिसा (करौंदा), अकेशिया, मैलोटस के वृक्ष तथा गूदेदार यूफ्रोर्बिया पहाड़ी ढलानो पर ऊगते हैं । 1000 मीटर से ऊपर चीड़ के वृक्ष पाये जाते है । इसके अलावा एनोगाइसस, डेन्ड्रोकेलेमस, सालमेलिया मेलेबेरिका, टर्मिनेलिया, स्टीरियोस्पर्मम, एडिना इत्यादि के वृक्ष भी पाये जाते है ।

(ख) शीतोष्ण अनुक्षेत्र (Temperate zone) : 1500 से 3500 मीटर की ऊँचाई तक फैले इस क्षेत्र मे पर्वतीय शीतोष्ण वन पाये जाते है । जिनमे मुख्य रूप से पाइनस एक्सेलसा, पाइ० जिरारडियाना (चिलगोजा), पाइ० रोक्सबर्घी, क्वेरकस इनकाना, क्वे० डाइलाटेटा, क्वे० सेमीकार्पीफोलिया, सीड्रस देवदारा (देवदार), एबीस पेन्ड्रो, पिसिया मोरिंडा, क्युप्रेसस टाऊलोसा, टैक्सस बकेटा आदि है ।

(ग) अल्पाइन अनुक्षेत्र (Alpine zone) : 3500 मीटर की ऊँचाई से ऊपर हिम रेखा (5000 मीटर) तक के क्षेत्र मे छोटे-छोटे वृक्ष तथा झाड़ियाँ पाई जाती है तथा हिम रेखा (Snow line) के आसपास के क्षेत्र मे केवल शाकीय पौधे पाये जाते हैं । इस अनुक्षेत्र की जलवायु को अल्पाइन जलवायु कहा जाता है । 3500 मीटर से ऊपर की ऊँचाई मे वृक्ष नही पाये जाते । अत इसे वृक्ष रेखा (Timber line) कहते है (चित्र 10 7) । 4000 से 5000 मीटर के क्षेत्र मे घास के मैदान मिलते है । इनमे मुख्य रूप से रोडोडेन्ड्रान केम्पेनुलेटम, बटूला युटिलिस और जूनिपेरस के छोटे वृक्ष तथा प्रिमूला, पोलीगोनम, सैक्सीफ्रागा, ऐल्ट्रागेलस, जिरैनियम आदि के शाकीय पौधे पाये जाते हैं ।

2. पूर्वी हिमालय (Eastern Himalayas) : यह पादपी प्रान्त पश्चिमी हिमालय के पूर्वक्षेत्र से लेकर पूर्वांचल मे अरुणाचल प्रदेश तक फैला हुआ है । उत्तर मे तिब्बत तथा दक्षिण मे बगाल तक विस्तृत इस क्षेत्र मे पश्चिमी हिमालय की तुलना मे अधिक वर्षा तथा तापमान होता है । बर्फ भी बहुत गिरती है । यहाँ पर हिम रेखा 5,500 मीटर की ऊँचाई पर होती है । ऊँचाई के आधार पर इसे भी तीन अनुक्षेत्रो मे बाटा जाता है ।

(क) उष्ण अधो पर्वतीय अनुक्षेत्र (Tropical sub montane zone) : लगभग 1800 मीटर तक की ऊँचाई के इस गर्म और आर्द्र भू भाग मे उष्ण अर्ध सदाबहार (Tropical semi evergreen) तथा नम पर्णपाती (Moist deciduous) वन पाये जाते हैं । इनमे मुख्य रूप से एलबीजिया प्रोसेरा, शोरिया रोबस्टा, ऐन्थोसिफैलस

कदबा (कदम), लैगरस्ट्रीमिया पार्वीफ्लोरा, सिड्रेला टूना, आर्टोकार्पस चपलाशा, बाहीनिया, स्टीरियोस्पर्मम आदि के अलावा बाँस की प्रमुख प्रजाति डेन्ड्रोकेलेसम के पादप पाये जाते है।

(ख) **शीतोष्ण अनुक्षेत्र (Temperate zone) :** पूर्वी हिमालय के इस 1800 मीटर से 3800 मीटर की ऊँचाई तक विस्तारित क्षेत्र मे शीतोष्ण पर्वतीय वन पाये जाते हैं। इन वनो मे कम ऊँचाई वाले क्षेत्र मे क्वेरकस (ओक), माइकोलिया, सिमप्लोकोस, केस्टेनोपासिस, पाइरस, सिड्रेला, यूजीनिया आदि तथा अधिक ऊँचाई वाले ठण्डे प्रदेशो मे अनेक शकुधारी वृक्षो की जातिया जैसे जूनिपेरस, क्रिप्टोमेरिया, एबीस, सुगा और पिसिया तथा बाँस की प्रजाति एरुडिनेरिया आदि की विभिन्न जातियाँ पाई जाती है। और अधिक ऊँचाई पर रोडोडेन्ड्रान पाया जाता है।

(ग) **अल्पाइन अनुक्षेत्र (Alpine zone) :** पूर्वी हिमालय के 3800 मीटर की ऊँचाई से हिम रेखा (Snow line) तक प्राय: जूनिपेरस तथा रोडोडेन्ड्रान की झाड़ियाँ, और अधिक ऊँचाई पर शाकीय पादप तथा घास के मैदान है।

पूर्वी हिमालय क्षेत्र को प्राय भारतीय, जापानी तथा चीनी प्रकार की वनस्पतियो का सगम स्थल माना जाता है।

3 **सिन्ध का मैदान (Indus plains) :** इस पादप भौगोलिक क्षेत्र मे पश्चिमी पजाब, हरियाणा के मैदानी भाग, पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी गुजरात तथा कच्छ की खाड़ी सम्मिलित है। पाकिस्तान मे यह क्षेत्र सिन्ध और पजाब तक फैला है। इस अनुक्षेत्र मे तापक्रम की अधिकता तथा वर्षा की कमी (70 से० मी०) के कारण यहाँ उष्ण कटीले वन पाये जाते है। उत्तरी पजाब तथा दक्षिणी राजस्थान के अरावली की घाटियो वाले नम क्षेत्र मे यह वन कुछ सघन होते है। इसमे उपोष्ण प्रदेश (Sub tropical) के वन भी मिल जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में केवल 10-15 से० मी० तक ही वर्षा होती है। ऐसे प्रमाण मिले है कि 2000 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र मे सघन वन थे। यहाँ नदी भी प्रवाहित होती थी परन्तु जलवायवीय तथा मानवीय कारणो से यह क्षेत्र शनै शनै शुष्क एवम् मरुस्थलीय हो चला है। यहाँ मुख्य रूप से अकेशिया अरेबिका, अके० सेनेगल, अके० ल्युकोफ्लोया, प्रोसोपिस स्पीसीजेरा, प्रोसोपीस जूलीफ्लोरा, सालवेडोरा ओलिआयडिस, साल० परसिका, कैपेरिस एफिल्ला, टैमरिक्स डायोका, टैम० अरटिकुलाटा, एनागाइसस पेन्डूला, एलबीजिया, यूफोर्बिया, ग्रीविया, केलोट्रोपिस, पैनिकस ऐन्टिडोटेल, ट्रिबूलस टेरेस्ट्रिस, स्वेडा फ्रूटीकोसा आदि पादप जातियाँ है।

4. **गंगा के मैदान (Gangatic plains) :** उत्तर प्रदेश, बिहार, बगाल तथा उड़ीसा के कुछ भाग तक फैले इस विस्तृत भू भाग की जलवायु मे समान्य वर्षा तथा जलोढ़ (Alluvial) मृदा के कारण यह क्षेत्र विभिन्न वनस्पतियो तथा खेती के लिये अत्यन्त उपजाऊ है। यहाँ पूर्वी क्षेत्र मे पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। इन प्रदेशो मे उष्ण नम या शुष्क पर्णपाती वन पाये जाते है। पूर्वी प्रदेशो (बगाल तथा बिहार) मे वर्षा की अधिकता के कारण घने जगल पाये जाते है

जबकि गगा - ब्रह्मपुत्र के डेल्टा मे समुद्र तटीय क्षेत्र जो दलदली तथा लवण सतृप्त है मैन्ग्रोव वनस्पति पाई जाती है । सुन्दरवन क्षेत्र इसी प्रकार का क्षेत्र है । यहाँ मुख्य मैन्ग्रोव वनस्पति रहाजोफोरा म्यूक्रोनेटा, एकैन्थस इलीसिफोलियम, एवीसीनिया अल्बा, सीरीयाप्स राक्सबर्घी, सोनेरेसिया एपैटेला आदि है । उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाको मे डैल्बर्जिया सीसो, अकेशिया, शोरिया रोबस्टा, टैमरिक्स आदि के वृक्ष पाये जाते है । अपेक्षाकृत शुष्क दक्षिण-पश्चिमी उत्तर प्रदेश मे कैपेरिस, अकेशिया, सैकरम इत्यादि के पादप बहुतायत मे पाये जाते है । पूर्वी उत्तर प्रदेश के विंध्याचल पर्वत श्रेणियो मे पर्णपाती वन पाये जाते है जिनमे मुख्यत· ब्युटिया मोनोस्पर्मा (ढ़ाक), डायोस्पाइरोस मिलेनोजाइलोन (तेन्दूपत्ता), टर्मिनेलिया अर्जुना (अर्जुन), मधुका इडिका (महुआ), कार्डिया मिक्सा (लसौडा), अकेशिया कटेचू (खैर), बुकनेनिया लेन्जन (चिरौंजी), एम्बलिका अफिसिनैलिस (ऑवला), स्टरकूलिया यूरैन्स, फाइकस बेन्गालेनसिस, फाइ० रेलिजियोसा, अजाडिरेक्टा इडिका, फ्लेकूर्शिया रेमचाई इत्यादि पादप जातियाँ है । झाडीदार पादपो मे जिजिफस, राइटिया टिन्कटोरिया, कैरिसा स्पाइनेरम, इग्जोरा, वुडफोर्डिया आदि मुख्य है । घास मे हेटेरोपोगोन, एरिस्टिडा, इरेग्रास्टीस, डाइकैन्थियम आदि मुख्य है ।

5. **मध्य भारत (Central India)** : गगा के मैदान और दक्षिण के पठार के बीच के इस वानस्पतिक प्रदेश के अन्तर्गत मध्य प्रदेश, उड़ीसा तथा उत्तरी गुजरात के कुछ भाग आते है । सामान्य तापमान तथा वर्षा की अधिकता (150 मी० से 200 से० मी०) के कारण यहाँ टेक्टोना ग्राडिस (टीक) के सघन पर्णपाती वन पाये जाते है । जिनमे ब्युटिया मोनोस्पर्मा, मधुका इडिका (महुआ), मेन्जीफेरा इन्डिका (आम), बोस्वेलिया सिरेटा (सालर), टर्मिनेलिया टोमेन्टोसा, डायोस्पाइरोस मिलेनोजाइलोन, एनागाइसस लेटीफोलिया, फाइकस ग्लोमरेटा, फाइलेन्थस लेगरेस्ट्रोनिया आदि के वृक्ष भी बहुतायत मे पाये जाते है । मध्य भारत के अपेक्षाकृत शुष्क क्षेत्रो मे जैविक विक्षोम (Biotic disturbances) तथा जनसख्या दबाव (Population pressure) के कारण कटीले वन तथा घास के मैदान पाये जाते है जिनमे मुख्यत· कैरिसा, माइमोसा, जिजिफस, अकेशिया, ब्युटिया आदि की जातियाँ है ।

6. **मालाबार या पश्चिमी तट (Malabar or West coast)** : यह वानस्पतिक प्रदेश उत्तर मे दक्षिणी गुजरात से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक के इस पर्वतीय भू भाग मे अत्यन्त वर्षा के कारण - उष्ण नम सदाबहार (Tropical moist ever green), एकदम पश्चिम मे अर्ध सदाबहार (Semi ever green), प्रायद्वीप के भीतरी अर्थात् पूर्वी भाग मे उपोष्ण या शीतोष्ण पर्वतीय सदाबहार (Sub tropical or Montane temperate evergreen), नीलगिरी की पर्वत श्रृखलाओं पर तथा बम्बई तथा केरल के तटवर्ती क्षेत्रो मे मैन्ग्रोव वन पाये जाते है । इस क्षेत्र मे पाई जाने वाली प्रमुख वनस्पतियाँ डिप्टेरोकार्पस, सिड्रिला, टेक्टोना, स्टरकूलिया, डैल्बर्जिया, माइकेलिया, डेन्ड्रोकेलेमस, बेम्बूसा आदि है ।

7. **दक्षिण पठार (Deccan Plateau)** : यह वानस्पतिक प्रदेश मध्य भारत के दक्षिण मे तथा मालाबार के पूर्व मे स्थित भारतीय प्रायद्वीप का विस्तृत सूखा एवम् पथरीला भू भाग है । यहाँ लगभग 100 से० मी० वर्षा होती है । यहा के उष्ण शुष्क पर्णपाती वन तथा कटीले वनो की टेक्टोना ग्राडिस (टीक) प्रधान वनस्पति है । इसके अतिरिक्त बोस्वेलिया सिरेटा, हार्डविकिया बाइनेटा, सिड्रेला टूना, सायमिडो फेब्रीफूगा, यूफोर्बिया निरीफोलिया, कैपेरिस, फाइलैन्थस, ग्रीवीया, फ्रिनिक्स इत्यादि जातियाँ भी मुख्यत पाई जाती है ।

8. **आसाम (Assam)** : इस पर्वतीय क्षेत्र मे तापमान तथा आर्द्रता की अधिकता के साथ-साथ सर्वाधिक वर्षा वाला क्षेत्र (चेरापूजी 1000 से० मी० से अधिक) होने से यहाँ उष्ण सदाबहार या उपोष्ण नम पर्वतीय वन पाये जाते है । इसके अतिरिक्त शकुधारी पादपो के वन पाये जाते है । इस वनो मे प्रमुख रूप से डिप्टेरोकार्पस, माइकेलिया, स्टरकुलिया, लैगरस्ट्रोमिया डेन्ड्रोकेलेमस, केलेमस, एल्सटोनिया, शोरिया इत्यादि जातियो के अतिरिक्त, थीमिड़ा, फ्रेगमाइटिस आदि घास तथा कीटभक्षी मे नेपेन्थस भी पाये जाते है । इन वनो मे वर्षा, तापमान तथा आर्द्रता की अधिकता के कारण फर्न तथा अधिपादप (Epiphytes) की भी सख्या बहुत अधिक है ।

इसके अतिरिक्त अण्डमान द्वीप समूह के तटवर्ती क्षेत्रो मे मैन्ग्रोव वनस्पति की बहुलता है । द्वीप समूह के अन्दर वर्षा के अधिक्य के कारण सदाबहार वन पाये जाते है । यहाँ मुख्य रूप से डिप्टेरोकार्पस, राइजोफोरा, लैगरस्ट्रोमिया और टर्मिनेलिया की जातियाँ पाई जाती है ।

अध्याय : 11

पादप वितरण

(Plant Distribution)

पुष्पधारी पादपो की उत्पति, वितरण तथा असांतत्व वितरण की व्याख्या

पौधो के वर्तमान वितरण को समझने के लिये पौधो के विकास का सक्षिप्त इतिहास जान लेना विषय को समझने मे सहायक सिद्ध होगा । जैविक विकास के इतिहास का कालानुक्रम (Chronology) बहुत पुराना है । पौधो के विभिन्न वर्गो की पृथ्वी पर भिन्न भिन्न युगो मे प्रधानता रही है । हम यहाँ पर पुष्पधारी पादपो के भौगोलिक वितरण की सक्षिप्त विवेचना करेगे । वस्तुतः वर्तमान मे अन्य वर्गो के पादपो की सख्या पुष्पधारी पादपो की तुलना मे बहुत कम है । इस काल खण्ड मे पुष्पधारी पौधे वितरण क्षेत्र मे अन्य वर्गो के पादपो पर प्रभावी है । भूविज्ञान के अनुसार पृथ्वी के इतिहास को कुछ महाकल्पो, (Eras), कल्पो (Penods) और युगो (Epochs) मे उपविभाजित किया गया है । जिसे भूवैज्ञानिक समय मापक्रम (Geological Time Scale) कहा जाता है । जीवाश्मो के अध्ययन के आधार पर अनुमान है कि पुष्पधारी पौधो की उत्पति मीसोजोइक महाकल्प के क्रिटेशियस कल्प से लगभग दस से पन्द्रह करोड़ वर्ष पूर्व हुई होगी । नीचे दी गई तालिका मे सक्षिप्त भूवैज्ञानिक समय मापक्रम दर्शाया गया है ।

महाकल्प	कल्प	युग	समय वर्ष आज से पूर्व	
	क्वाटरनरी	होलोसीन (आधुनिक)	10–15 हजार	
		प्लाइस्टोसीन (हिमकाल)	± 10 लाख	एन्जियोस्पर्म का युग
सीनोजोइक या टरशियरी		प्लायोसीन		
		मायोसीन		
	टरशियरी	ओलीगोसीन		
		इओसीन		
		पेलियोसीन	± 700 लाख	
		उत्तर		
	क्रिटेशियस	मध्य		
		निम्न	± 1350 लाख	
मीसोजोइक या सैकन्ड्री		उत्तर		जिम्नो-स्पर्म का युग
	जुरेसिक	मध्य		
		निम्न	± 1800 लाख	
		उत्तर		
	ट्रायेसिक	मध्य		
		निम्न	± 2300 लाख	

	परमियन		± 2800 लाख	टेरिडोफाइटा का युग
	कार्बोनिफेरस	पेन्सिलवेनियन	± 3450 लाख	
		मेसीसीपियन		
पेलियोजोइक	डीवोनियन		± 4050 लाख	
या	साइल्यूरियन		± 4250 लाख	
प्राइमरी	और्डोविसियन		± 5000 लाख	थैलोफाइटा का युग
	कैम्ब्रियन		± 6000 लाख	
प्रोटैरोजोइक एवम् आर्कियोजोइक	प्री कैम्ब्रियन		± 740000 लाख	

पुरा जलवायु और आवृतबीजी पादपो की उत्पत्ति

यह विश्वास किया जाता है कि विकास की वर्तमान अवस्था की प्रगति के लिये लगभग 45 खरब वर्ष का समय उपलब्ध होना चाहिये। पृथ्वी के इतिहास मे प्रत्येक महाकल्प का आरम्भ एक क्राति (Revolution) अथवा प्रलय (Cataclysm) से और उसका अन्त एक इसी प्रकार की अन्य क्राति से हुआ होगा। इन क्रातियो के कारण तीव्र भूवैज्ञानिक विक्षोभ (Geological Disturbances) रहे होगे, जिसके कारण प्रत्येक क्राति मे अधिकतर जीव नष्ट हो गये होगे और केवल कुछ ही शेष बचे जीवो से नये जीव विकसित (Evolve) हुए होगे। "प्रथम वृहत क्राति '(First Great Revolution) आर्कियाजोइक तथा प्रोटैरोजोइक के मध्य हुई मानी जाती है, इसी प्रकार "द्वितीय बृहत क्राति" (Second Great Revolution) प्रोटैरोजोइक व पेलियोजोइक के बीच, "एप्लैशियन क्राति " (Applachian Revolution) पेलियोजोइक व मीसोजोइक के मध्य तथा अन्त मे "रॉकी पर्वत क्राति " (Rocky Mountain Revolution) मीसोजोइक तथा सीनोजोइक के बीच हुई मानी जाती है जिसके अन्तर्गत रॉकीज (Rockies), हिमालय (Himalayas), एल्पस (Alps), तथा एन्डीज (Andies) जैसे पर्वतो का उद्‌भव हुआ था।

जीवाश्मो के अध्ययन से पुष्पधारी पौधो के विकास और उत्पति की समस्या का समाधान होता है। पुष्पधारी पौधो मे सम्मिलित किये जाने योग्य जीवाश्म निम्न क्रिटेशियस कल्प से पहले नही मिलते और इसके कुछ लाख वर्षों मे ही पृथ्वी पर इनके प्रधान वनस्पतियो के रूप मे विकसित हो जाने के प्रमाण प्रचुरता मे मिलते है। विकास के आधार भूत सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने के बाद यह सहज ही विश्वास नही किया जा सकता कि पुष्पधारी पादप लगभग अचानक ही तेजी से विकसित हो गये होगे और बाद के लाखो वर्षों मे इनमे विकास की गति अत्यन्त धीमी रही। विभिन्न पादप विदो के अनुसार (एडरवर्डस 1955, कामेल 1956, गुड 1964) निश्चय ही पुष्पधारी पादपो का विकास जुरेसिक कल्प मे प्रारम्भ हो चुका था। किन्ही विशेष भूवैज्ञानिक विक्षोभो के कारण इनकी विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओ के जीवाश्म उपलब्ध नहीं है। क्रिटेशियस और टरशियरी

कल्पो के सभी जीवाश्म किसी न किसी आधुनिक जाति या प्रजाति मे सम्मिलित किए जा सकते है। जीवाश्मो के अतिरिक्त पिछले कुछ हजार वर्षों पूर्व के पौधो का ज्ञान परागकणो के अध्ययनो से भी होता है।

ट्रायैसिक व जुरेसिक कल्पो के अन्तर्गत अधिकाश महाद्वीपीय क्षेत्र जलाशयो से ऊपर थे परन्तु क्रिटेशियस कल्प मे पुन॰ भूमि का पर्याप्त भाग पानी से ढक गया था। मीसोजोइक महाकल्प का अन्त रॉकी पर्वत क्राति के साथ हुआ था। आवृतबीजी पौधो के अधिकाश जीवाश्म हमे उत्तरी अमेरिका और यूरोप से प्राप्त हुए है। इसका सभावित प्रमुख कारण यही है कि उत्तरी गोलार्ध मे थल भाग अधिक है तथा इन्ही प्रदेशों मे वैज्ञानिक अध्ययन भी अधिक हुए है। किसी स्थान पर पाये जाने वाले जीवाश्मो की उपस्थिति का यह आशय नही होता कि ये पौधे उस कालखण्ड मे वही उगते होगे। समुद्रो के किनारे पाये वाले पौधो के समुद्री धाराओ द्वारा सुदूर स्थानो तक पहुँचने की सभावना तो रही ही होगी। जीवाश्मो से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर क्रिटेशियस और टरशियरी कल्पो मे जलवायु उष्ण या गर्म शीतोष्ण रही होगी और उस समय पुष्पधारी पौधो का तेजी से विकास हुआ। टरशियरी कल्प के उत्तरार्ध मे तापमान कम होना शुरू हो गया और इस कल्प के अन्त तक तापमान शून्य तक पहूँच चुका था। क्वाटरनरी के प्लास्टोसीन युग मे पृथ्वी के उत्तरी भागो मे हिम क्षेत्र दूर दूर तक फैले थे। इसलिए इसे हिम काल (Ice Age) भी कहा जाता है (चित्र 11 1)। तापमान मे वृद्धि का यह क्रम पिछले कुछ हजार वर्षो मे ही शुरू हुआ है।
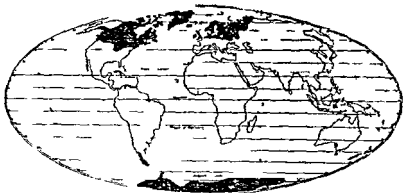
चित्र 11 1 प्लायस्टोसीन युग में पृथ्वी के हिमाच्छादित क्षेत्र (काला भूभाग)

क्रिटेशियस कल्प के पौधो के जीवाश्म, ग्रीनलैंड, उत्तरी अमेरिका और यूरोप मे अधिकता मे पाये जाते है जो कि उष्ण कटिबन्धो मे पायी जाने वाली प्रजातियो के समान है। टरशियरी कल्प के प्रारम्भ मे पेलियोसीन और इयोसीन युगो मे पुष्पधारी पौधो का अत्यधिक विस्तार हो चुका था। इन जीवाश्मो की प्राप्ति और अध्ययन के उपरान्त वहाँ की जलवायु के गर्म शीतोष्ण होने का अनुमान लगाया जाता है। इसी आधार पर ग्रीनलैंड की जलवायु भी इयोसीन काल मे शीतोष्ण रही होगी। इगलैंड मे इस काल मे पाये जाने वाले जीवाश्मो के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन्डो-मलाया प्रदेश के पादपो से समानता के कारण इओसीन काल मे इगलैड की जलवायु वर्षा बहुल उष्ण वनो के अनुकूल रही होगी। ओलिगोसीन काल मे भी जलवायु के उष्ण-शीतोष्ण ही बने रहने के प्रमाण मिलते है। अन्य अध्ययनो के अनुसार मायोसीन काल की जलवायु मिश्रित पर्णपाती वनो के उपयुक्त थी। इससे अनुमान लगाया जाता है कि मायोसीन मे तापमान कम होने लगा था और जलवायु शीतोष्ण या ठण्डी शीतोष्ण हो गई थी। इसके अतिरिक्त मायोसीन काल मे ही पृथ्वी मे भी भूवैज्ञानिक विक्षोभ हुए, ज्वालामुखी सक्रिय हुए और अनेक ऊँची पर्वत श्रखलाओ का उद्भव हुआ। प्लायोसीन काल के जीवाश्मो के अध्ययन से यह अनुमान लगाया गया है कि उस काल मे जलवायु मे तेजी से परिवर्तन हुए और दीर्घकाल से चली आ रही वनस्पति भी इस जलवायु परिवर्तन से अप्रभावित नही रही। टरशियरी कल्प मे बने उत्तरी अमेरिका के रॉकी पर्वत, ओलिगोसीन मे अपरदित (Eroded) हो गये थे, परन्तु मायोसीन मे यह पुनः ऊपर उठ गये थे। क्वाटरनरी कल्प को प्रायः "मनुष्य का समय " (The Time Of Man) कहा जाता है। अनुमान है कि क्रिटेशियस से टरशियरी कल्पो के अन्त तक पुष्पधारी पादपो की प्रजातियो और जातियो की सख्या मे क्रमशः वृद्धि हुई और शनै शनै वे पृथ्वी के वनस्पति समुदाय मे प्रधान हो गये। परन्तु इस काल मे ज्लवायु के प्रभाव के अन्तर्गत आकारिकी विभेदन नगण्य ही रहा। प्लायोसीन काल के अन्त तक जलवायु मे त्वरित परिवर्तन होने से बदलते पर्यावरण से सामन्जस्य स्थापित कर सकने वाली वनस्पति का भी तेजी से विकास हुआ। स्काटसबर्ग (1940) के मतानुसार टरशियरी कल्प मे दक्षिणी गोलार्ध की जलवायु भी गर्म शीतोष्ण रही होगी। भूवैज्ञानिक समय मापक्रम के अध्ययन के अनुसार क्वाटरनरी कल्प के प्रारम्भिक युग प्लास्टोसीन मे हिमनदन (Glaciation) के चार काल पाए जाते हैं। इसे हिमकाल (Ice Age) भी कहा जाता है क्योंकि उस काल मे पृथ्वी के अधिकाश बड़े भूभाग बर्फ से ढके हुए थे। इस काल मे जलवायु अत्यन्त ठडी रही और ध्रुवो के आसपास के क्षेत्र हिमाच्छादित रहे। लगभग सभी पर्वत श्रखलाऐ हिमनदो से ढकी थी इस कारण पादप विकास मे भी बाधा पहुँची। बाद के कालखण्ड मे इस बर्फ के हटने से यह भूमि क्षेत्र पुनः अनाच्छादित (Uncovered) हो गये थे। समुद्र में भी भारी कमी हुई जिससे समुद्रो का तल लगभग 100 मीटर नीचे चला गया था और भूमि के विभिन्न क्षेत्र जलाशयो से जुड़ गये थे। इस काल मे वातावरण इतनी तेजी से बदलता रहा कि पुष्पधारी (Angiosperms) पादपो के विकास की गति का इससे सामज्यस्य बनाए रखना लगभग असम्भव हो गया। इससे उस समय की परिस्थिति का यह आकलन करना कि तापमान लगातार हिमांक से सैकड़ो °C नीचे रहा होगा सही नही है। पैंक तथा बुकनर (1901–1909) के अध्ययनो

से ज्ञात होता है कि यूरोप मे कम से कम चार बार तापमान बढ़ा और लगभग आज के तापमान के समकक्ष जा पहुँचा था। इस समयान्तराल को अन्तरहिमानी काल (Inter glacial Period) कहा जाता है। विश्वास किया जाता है कि पिछला हिमानी काल (Glacial Period) आज से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व तक था। उपरोक्त विषय के विवेचन से स्पष्ट होता है कि क्रिटेशियस कल्प के प्रारम्भ मे ही पुष्पधारी पौधे आज की पृथ्वी के उत्तरी-ध्रुवीय प्रदेशो मे अपना आधिपत्य जमा चुके थे तथा क्वाटरनरी कल्प मे जलवायु परिवर्तन के साथ साथ वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुए और अब भी परिवर्तन के क्रम मे है।

वैसे पुष्पधारी पादपो की उत्पति के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी कहना असभव है परन्तु प्राप्त वैज्ञानिक साक्ष्यो के आधार पर विश्वास किया जाता है कि उनकी उत्पति मीसोजोइक महाकल्प मे क्रिटेशियस कल्प के समकक्ष मानी गई है। इन अध्ययनो से पूर्वकाल के प्रवासो का अनुमान लगा कर वर्तमान वितरण की व्याख्या मे सहायता ली जाती है। वैज्ञानिक काफी लम्बे अर्से से पृथ्वी के जल-थल प्रदेशो मे परिवर्तन का सदेह व्यक्त करते रहे है। हुकर (1861) के मतानुसार पादप वितरण को जल और स्थल की सापेक्ष स्थिति तथा ऊँचाई एवम् जलवायु मे परिवर्तनो ने अत्यधिक प्रभावित किया है। भू-आकृतिक तथा भौमिकीय अध्ययनो से ज्ञात होता है कि वर्तमान मे अनेक स्थलीय प्रदेश अतीत मे कभी जल निमग्न रहे होगे। इसी तरह यह भी विदित होता है कि सभी पर्वत शृखलाएँ पृथ्वी के जन्म से ही नही रही होगी। भू - आन्तरिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप इनका उद्भव हुआ होगा। पृथ्वी की आकृति मे हुए परिवर्तनो के बारे मे अनेक अवधारणाएँ व परिकल्पनाएँ समय सनय पर प्रस्तुत की गई है परन्तु इनमे सर्वाधिक मान्य परिकल्पना वैगनर (1912, 1924) ने "महाद्वीपीय विस्थापन का सिद्धान्त" (Theory of Continental Drift) के रूप मे प्रतिपादित की जिसकी पुष्टि कालान्तर मे अनेक अध्ययनो से प्रमाणित हो चुकी है।

महाद्वीपीय विस्थापन का सिद्धान्त :-

वैगनर (1924) के मूल सिद्धान्त के अनुसार पेलियोजोइक महाकल्प के प्रारम्भ मे सभी महाद्वीप एक विशाल स्थल खण्ड से जुडे थे जिसे पैंगिया (Pangaea) कहा गया। कालान्तर मे ये सभी महाद्वीप अलग अलग विखण्डीत हो कर विस्थापन द्वारा वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए (चित्र 11.2)। एक लम्बे अन्तराल तक ये महाद्वीप पृथ्वी पर अनियमित रूप से भटकते रहे, इसलिए इस सिद्धान्त को "भटकते महाद्वीपो"का सिद्धान्त भी कहा जाता है। वैगनर ने इस सिद्धान्त के पक्ष मे प्रमाण प्रस्तुत करते हुए भारत, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया मे परमियन कल्प के हिमानीकाल की चर्चा करते हुए बताया कि समय समय पर विषुवत रेखा और ध्रुवो की सापेक्ष स्थिति बदलती रही है। जिससे आज के ध्रुव प्रदेशो मे अतीत मे उष्ण जलवायु की उपस्थिति मानी गई (चित्र 11 3)। दक्षिण अफ्रीकी भू वैज्ञानिक डू टौइट (1937) ने वैगनर की अवधारणा को कुछ सशोधनो के साथ प्रस्तुत किया। डू टौइट के अनुसार पृथ्वी मे आरम्भ से ही दो विशाल भू खण्ड थे उत्तरी भू-खण्ड को लारेशिया (Laurasia) तथा दक्षिणी भू-खण्ड को गौण्डवाना

चित्र 11.2 · भूवैज्ञानिक इतिहास के विभिन्न कल्पों में विश्व के मानचित्र की स्थिति (वैगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त पर आधारित)
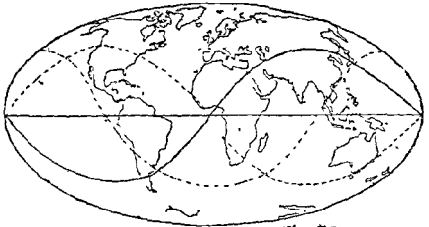
चित्र 11.3 : विषुवत रेखा और ध्रुवों की चार काल्पनिक स्थितियाँ

लैण्ड (Godwana Land) कहा गया। भारत, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका और अटार्कटिका के बीच जीवाश्मिक तथा भौमिकीय समानताओं के आधार पर उनके जुड़े हुए होने की परिकल्पना वैज्ञानिक इससे पूर्व ही कर चुके थे। पृथ्वी की सरचना का भौमिकीय अध्ययन महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धान्त को स्पष्ट करने मे अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। पृथ्वी की तुलना अर्ध उबले अण्डे से की है। इसमे ऊपरी लगभग कड़ी पर्त (Crust) के नीचे एक मोटा स्तर मेटल (Mantle) माना गया है। ऊपरी पर्त महाद्वीपो
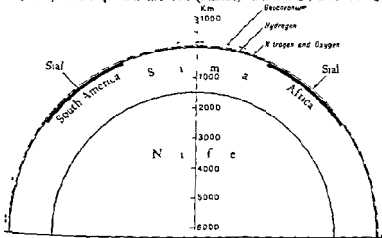
चित्र 11.4 : गोलार्ध के काट का चित्रांकन। सियाल और सीमा की स्थिति को दर्शाता (वेगनर 1922 से पुनर्चित्रित)

के नीचे 30 से 70 कि॰ मी॰ तक मोटी और समुद्र के नीचे लगभग 5 7 कि॰ मी॰ मोटी है। इसमे सिलिका और एल्यूमिनियम की अधिकता से इसे सियाल (sial) कहा गया है। मैटल गर्म और लोचदार पदार्थ है। जिसमे सिलिका और मैगनीशियम की अधिकता है। इसे सीमा (Sima) कहा गया है। मैटल के नीचे, पृथ्वी का कोर (Core) या नाइफ (Nife) निकिल और लौहे का बना है जो अत्यधिक गर्म और द्रव के समान है। सीमा (मैटल) की ऊपरी पर्त (कड़ी पर्त सियाल के नीचे) जो 1000 से 2000 कि॰ मी॰ मोटी हो सकती है अर्धद्रवीय एस्थेनोस्फियर (Asthenosphere) कही गई है (चित्र 11 4)। इस एस्थेनोस्फियर पर ही महाद्वीपो के तैरते रहने की परिकल्पना की गई है और तैरते रहने के कारण ही महाद्वीपो का विस्थापन सभव माना गया है।

अनेक प्रमाणो के आधार पर गौण्डवाना प्रदेश की सत्यता मे अब कोई सन्देह नही रह जाता। अब लगभग सभी वैज्ञानिक किसी न किसी रूप मे दक्षिण अफ्रिका, दक्षिण अमेरिका, भारत, अरेबिया, आस्ट्रेलिया व मेडागास्कर का दक्षिण ध्रुव प्रदेशो से निकट सबन्ध को स्वीकार करते है। पूर्वकाल कैम्ब्रियन से चले आये अवसादी (Sedimentary) निक्षेप और भू अभिनतिया आस्ट्रेलिया और दक्षिण ध्रुव प्रदेशो के जुड़े होने के स्पष्ट प्रमाण है। (चित्र 11 5) इस प्रकार *परमियन युग मे जुड़े हुए गौण्डवाना लैण्ड का* पेलियोजोइक महा कल्प के अन्त और मीसोजोइक
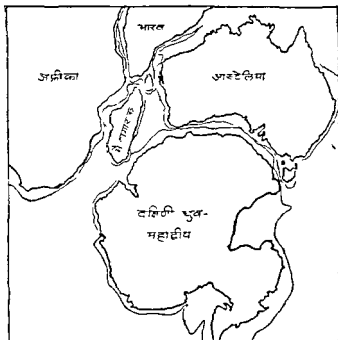
चित्र 11 5 मीसोजोइक महाकल्प मे गौंडवाना प्रदेश का चित्र। वर्तमान भूखण्डों के तटो का साम्य ध्यान देने योग्य है।

महाकल्प के प्रारम्भ मे विखण्डन शुरू हो चुका था। जुरेसिक कल्प मे अफ्रीका और अमेरिका जुडे थे तथा अनुमान है कि आस्ट्रेलिया, भारत और दक्षिण ध्रुव पृथक खण्ड के रूप मे विद्यमान थे। विश्वास किया जाता है कि क्रिटेशियस कल्प के साथ ही ये महाद्वीप अलग होना प्रारम्भ हो गये थे। इसी प्रकार लारेशिया के विखण्डन के परिणामत वर्तमान उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैण्ड व युरेशिया (यूरोप और एशिया) का निर्माण हुआ। शनै शनै इसी प्रकार विस्थापित होकर महाद्वीप वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुए। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर की ओर विस्थापित होकर, टेथिस समुद्र के ऊपर लारेशिया से टकराने के कारण सम्भवत हिमालय की पर्वत श्रृखलाओं की उत्पत्ति मानी गई है। इस तरह उत्तर मे हिमालय की पर्वत श्रृखलाओं का तथा दक्षिण मे भारतीय प्रायद्वीप (Indian peninsula) का निर्माण हुआ। टेथिस समुद्र के इस भाग की सकरी लम्बी पट्टी नवनिर्मित हिमालय पर्वत श्रृखलाओं मे मृदा अपरदन (Soil erosion) की क्रिया से उत्पन्न मिट्टी से भरती रही और इस प्रकार से भारतीय-गगा के मैदान (Indo-gangatic plain) की रचना हुई। महाद्वीपीय विस्थापन के सिद्धान्त की पुष्टि कालान्तर मे हुए अनेक अध्ययनो से प्रमाणित हो चुकी है। इन प्रमाणो मे पुरा चुम्बकत्व (Paleomagnetism) के अध्ययनो से प्राप्त प्रमाण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके अलावा समुद्र मे पाई गई पर्वत श्रृखलाऐं और उनमे पड़ी दरारे महाद्वीपीय विस्थापन को स्पष्ट परिलक्षित करती है (चित्र 11 6)। अफ्रीका और भारतीय गौण्डवाना प्रदेश की जीवाश्म वनस्पतियो मे समानता, महाद्वीपो के तटो मे समानता जैसे अफ्रीका का पश्चिमी तट के शैलो और अवसादी निक्षेपो मे समानता, ज्वालामुखीय भौमिकी मे समानता, समुद्र तल का अपेक्षाकृत कम आयु का होना, महाद्वीपो के पाये जाने वाले विवर्तनिक आकारो मे समानता तथा पुराजैविक प्रमाण आदि उपयुक्त अवधारणा की पुष्टि करते है। आधुनिक भौमिकी
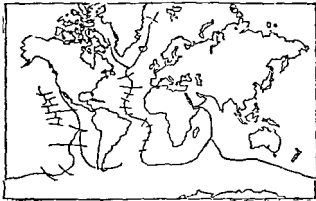
चित्र 11 6 समुद्र तल की पर्वत श्रृंखलाए और उनमे पड़ी दरारे (आड़ी रेखा)

अध्ययनों से पृथ्वी की सरचना का ज्ञान महाद्वीपीय विस्थापन को और अधिक स्पष्ट इगित करता है। अब भी वैज्ञानिक पृथ्वी के भूभाग का बहुत धीरे-धीरे विस्थापन मान रहे है। जिससे हिमालय अपनी ऊँचाई मे लगातार बहुत ही धीमी गति से बढ़ रहा है।

थल-सेतु सिद्धान्त :-- इस परिकल्पना के अनुसार सभी वर्तमान महाद्वीप पृथ्वी के आरम्भ से ही इसी स्थिति मे विद्यमान रहे है । समुद्रो के घटने और बढ़ने तथा भू भाग के घटने और निकलने के साथ ही इन महाद्वीपो की सीमाओं मे परिवर्तन हुआ परन्तु किसी प्रकार का महत्वपूर्ण महाद्वीपीय विस्थापन नही हुआ । इस अवधारणा के अनुसार सभी महाद्वीप विभिन्न काल मे स्थाई या अस्थाई थल सेतु (land bridge) द्वारा एक दूसरे से सबद्ध रहे हैं । हालाकि आजकल इस अवधारणा मे विश्वास नही किया जाता है ।

महाद्वीपो के निर्माण, विस्थापन आदि की प्रक्रिया से सबधित अनेक मत समय-समय पर प्रतिपादित किये गये है । इनमे बर्फ की मोटी पर्तों के बोझ से भूखण्डो के दबने और पर्वत श्रृखलाओं की उत्पत्ति तथा अत्यधिक कम तापमान के कारण गर्म स्तरो के ठण्डे होकर चटक कर अलग होने व महाद्वीपो के निर्माण आदि के अतिरिक्त पृथ्वी के आयतन मे वृद्धि के कारण ब्राह्य आवरण के फटने पर महाद्वीपो और समुद्रो की उत्पत्ति की अवधारणा भी रखी गई । वर्तमान मे वैज्ञानिक साक्ष्य व प्रमाणो के अभाव मे उक्त वर्णित अवधारणाओं का विशेष महत्व नही है ।

व्याख्यात्मक या गतिक पादप भूगोल

(Interpretive or dynamic phytogeography)

गुड़ (1931) ने असतत और विशेष श्रेणी वितरण को छोड़ कर सतत पादप वितरण की विवेचना के लिये महत्वपूर्ण सिद्धान्त "सहनशीलता का सिद्धान्त" (Theory of tolerance) प्रतिपादित किया था । एगलर (1872-1882), शिम्पर (1903, 1904) थोडे (1925) और सिलिस बेरी (1926) ने गुड़ से पहले ही जलवायु और पादप वितरण के अर्न्तसम्बन्धो की व्याख्या की थी । गुड़ का सिद्धान्त जलावायवीय प्रवासो के सिद्धान्त पर आधारित था । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जाति जलवायु और मृदा कारको की निश्चित सीमाओं मे ही अपना आस्तित्व बनाये रख सकती है और सफलतापूर्वक प्रजनन कर सकती है । ये सीमाऐं ही उस जाति की बाह्य पर्यावरण के प्रति सहनशीलता की सीमा दर्शाती है । जाति की सहनशीलता भी अन्य आकारिकीय गुणो के समान विकास के नियमो का पालन करती है । समान सहनशीलता की सीमाओं वाली जातियो का वितरण उनमे परस्पर स्पर्धा द्वारा निश्चित होता है । गुड़ के सहनशीलता के सिद्धान्त को बाद मे केन (1949, 1971), मैसन (1936), मैसन और स्टाइड (1954), लारैस (1951) ने विस्तारित किया । लारैंस (1951) ने सभी पादप भूगोलविज्ञो के विचारो को समाहित करते हुए 13 पादप भूगौलिक सिद्धान्त बनाये जिन्हे चार वर्गों मे रखा गया है ।

(अ) पादप-पर्यावरण सम्बन्धी सिद्धान्त :--

1 पादप वितरण प्राथमिक रूप से जलवायवीय कारको द्वारा नियत्रित होता है । अन्य कारक जैसे मृदा या जीव आदि द्वितीयक रूप से कार्य करते हैं तथा इनका प्रभाव जलवायु की अपेक्षा कम व्यापक होता है ।

2 मृदीय कारको मे, मृदा की सरचना, उत्पत्ति, रसायनिक और भौतिक गुण आदि का वहाँ की पादप वितरण पर जलवायु की तुलना मे गौण नियत्रण होता है ।

3. जैविक कारक जैसे रोगजनित पादप की उपस्थिति या अनुपस्थिति, किटाणु या अन्य जीव जन्तुओं का सहसघ इत्यादि भी पादप वितरण को प्रभावित करते है।

4. जलवायु जो अन्य कारको मे सबसे अधिक व्यापक है और पादप जात (Flora) के विकास मे मुख्य निर्धारक रहा है। जलवायु पूर्वकाल से वर्तमानकाल सदैव परिवर्तित होता रहा है। अत: वर्तमान पादप वितरण भी अशत: भूतकाल के जलवायु से नियत्रित रही है।

5. अतीत मे पृथ्वी पर स्थल एवम् समुद्र के सम्बन्ध परिवर्तनशील रहे हैं तथा स्थल क्षेत्रो की आकृति मे न्यूनाधिक परिवर्तन हुए है। इसलिये आज भिन्न-भिन्न स्थलो की वनस्पति कही कही मिलती-जुलती है क्योंकि समवत. अतीत मे स्थल आपस मे सबद्ध थे।

6. पर्यावरण सकलता (Holocoenotic) के सिद्धान्त पर कार्य करता है अर्थात *पर्यावरण के विभिन्न कारक जैसे जलवायु, मृदा, व जैवघटक का प्रभाव* सम्मिलित रूप से होता है, पृथक-पृथक नही और ये कारक आपस मे अन्योन्य क्रियारत रहते है।

(ब) पादप की अनुक्रिया सम्बन्धी सिद्धान्त

7 पादप के अस्तित्व व सफल प्रजनन सम्बन्धी जीवन क्रियाऐं जलवायवीय (Climatic), मृदीय और जैविक कारको की सीमाओं से निर्धारित होती है। *यह सीमाऐं उस कारक के प्रति जाति की क्रिया विशेष की सहनशीलता* को प्रदर्शित करती है।

8 *पादपो की वातावरण के कारको के प्रति सहनशीलता की सीमाए आनुवाशिक* गुणो के आधार पर निश्चित होती है।

9. *पादप की विभिन्न जीवन वृतीय अवस्थाओं मे कारको के प्रति सहनशीलता* की सीमाऐं भी भिन्न-भिन्न होती है पादप जीवन चक्र की कुछ अवस्थाओं मे वातावरण के कुछ कारकों के प्रति सहनशीलता की सीमा अत्यन्त सकुचित होती है और *यह सकीर्ण सीमा ही उस पादप के वितरण* को सबसे ज्यादा प्रभावित करती है।

(स) पादप-प्रवासन सम्बन्धी सिद्धान्त

10. *अतीत मे पादप जात (Flora) का वृहत स्तर पर प्रवास हुआ है और आज* भी सतत् रूप से हो रहा है। इसमे भूखण्ड की गति (Movement of land mass), हिमनदीकरण (Glaciation) और मनुष्य के कार्यों द्वारा प्रवास *(Through human activities) आदि मुख्य कारक है।*

11. सफल प्रवास पौधो के प्रकीर्णन अगो जैसे बीज, फल, डायस्पोर आदि द्वारा होता है तत्पश्चात् नये क्षेत्र मे इन प्रकीर्णन अगो के आस्थापन पर सम्पन्न होता है।

(द) पादप चिरस्थायीकरण तथा क्रमिक विकास सम्बन्धी सिद्धान्त

12 पादपो का सतत अस्तित्व प्रथमत उसकी जातियो के बराबर प्रवास द्वितीयक उनकी अनुकूलनशीलता और अपनी सन्तति को वाछित अनुकूलन मे सहायक गुणो को प्रदान करने की क्षमता पर निर्भर होता है ।

13 पादप जात (Flora) का विकास पादप प्रवास, जातियो के विकास और जलवायु मे होने वाले परिवर्तनो के वरणात्मक प्रभाव पर निर्भर करता है । सभी प्रवासी जातियो मे से कुछ ही उपयुक्त होती है । जिनका वरण प्रकृति अपनी चयनशीलता से करती है ।

गुड (1964) ने अपनी पुस्तक मे इन सभी पर्यावरणीय कारको का विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है ।

पादप वितरण के प्रकार

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि ससार मे सभी पादप या पादप समूहो का वितरण एक समान नही है । गुड (1964) ने अपनी पुस्तक "पुष्पधारी पादपो का भूगोल" मे *प्रमुख कुलो, प्रजातियो और जातियो के वितरण का विशद् विश्लेषणात्मक विवेचन किया* है । केन (1971) ने इस अध्ययन को क्षेत्र विज्ञान (Areography) कहा है । अध्ययन की दृष्टि से पादप वितरण को तीन प्रमुख प्रकारो मे विभक्त किया जाता है ।

1 सतत (Continuous)

2 असतत (Discontinuous)

3 विशेष क्षेत्री (Endemic)

पोलुनिन (1960) के अनुसार असतत वितरण का ही एक प्रकार प्रतिस्थ (Vicarious) और विशेष क्षेत्री वितरण का एक रूप अवशिष्ट (Relic) वितरण भी अलग माना जाता है । कुल का वितरण सतत होने पर भी जातियो और प्रजातियो का वितरण असतत या विशेष क्षेत्री हो सकता है ।

1. **सतत वितरण (Continuous distribution)** सतत वितरण का भावार्थ केवल विस्तृत वितरण से है । स्थलीय पादपो के लिए नदी-नाले, पहाड़, झीले और समुद्र आदि तो सातत्य (Continuity) मे बाधक (Barrier) होते है । इसके अतिरिक्त मृदा की विषमताऐ जैसे मृदा का अम्लीय, क्षारीय या ऊसर होना, मृदा मे सूक्ष्म जीवो का अभाव आदि भी सतत वितरण मे बाधक का कार्य करती है । अत केवल उन्ही वर्गको (Taxa) का वितरण सतत माना जाता है जो सभी महाद्वीपो मे *किसी जलवायु विशेष या सभी जलवायु क्षेत्रो मे पाए जाते है* (चित्र 11 7) । इसके चार प्रकार निम्न है –

(i) **विश्व व्यापी (Cosmopolitan) :--** जलवायु की विषमताओं तथा मृदीय भिन्नताओं के कारण कोई भी पादप या पादप समूह वस्तुत: विश्व व्यापी वितरण प्रकार का होता ही नही है । इस लिये विश्व व्यापी उन पादपो या पादप समूहो
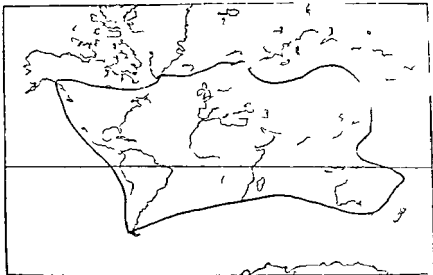
चित्र 11 7 पोलीगेलेसी कुल का अन्तरमहाद्वीपीय वितरण क्षेत्र

को कहते है जो पृथ्वी के लगभग सभी जलवायु प्रदेशो मे विस्तृत रूप से वितरित होते है। इस तरह का वितरण ग्रेमिनी कम्पोजिटी साइपरेसी और केरियोफिल्लेसी कुलो का होता है। उष्ण उपोष्ण और शीतोष्ण प्रदेशो मे विस्तृत वितरण वाले कुलो मे आरकिडेसी पेपीलियोनेसी (चित्र 11 8) लेबियेटी लिलिएसी बोरेजिनेएसी इत्यादि प्रमुख है। सोलेनम यूफोर्बिया पोलीगेला सिरपस ड्रासेरा यूट्रीकुलेरिया आदि प्रजातियो को विश्व व्यापी वितरण प्रकार मे रखा जाता है। वैसे जातियो मे किसी को भी विश्व व्यापी नही कहा जा सकता फिर भी निम्न को पोटेमोगेटान
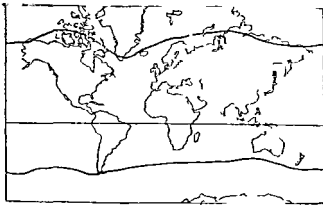
चित्र 11 8 पेपिलियोनेसी कुल का विश्व व्यापी वितरण क्षेत्र

क्रिस्पस, पोटेमोगेटान पेक्टीनेटस, चीनोपोडियम एलबम, साइनोडोन डेक्टाइलोन आदि को इस वितरण प्रकार के निकटम माना गया है।

(ii) **परिध्रुवीय (Circumpolar) :--** यदि पादप का वितरण ध्रुवो के अतिरिक्त ध्रुवो के पास सभी महाद्वीपो तक सीमित हो तो उसे परिध्रुवीय वितरण कहा जाता है। पोलुनिन (1959) के अनुसार दक्षिण ध्रुव पर लगभग कोई पुष्पी पौधा नही पाया जाता अत. यह विशुद्ध रूप से उत्तर ध्रुवीय है। सेक्सीफ्रागा अपोजिटीफोलिया, केरेक्स लेपोनिका, रेननकुलस नेवेलिम आदि मुख्य परि-ध्रुवीय जातियाँ है।

(iii) **परि-उत्तरी (Circumboreal) और परि-दक्षिणी (Circumaustral)-** उत्तरी या दक्षिणी गोलार्ध मे, सभी महाद्वीपो मे विस्तृत वितरण मे पाये जाने वाले पादप वितरण प्रकार को क्रमश: परि-उत्तरी या परि-दक्षिणी कहा जाता है। परि-उत्तरी प्रकार के वितरण के उदाहरण डायेएन्सिएसी, कोरिलेसी, मोनोट्रोपेसी, पोडोफिल्लेसी आदि कुल हैं। केवल दक्षिणी शीतोष्ण प्रदेशो मे वितरित कुलो मे प्रोटिएसी, क्युनोनिएसी आदि प्रमुख है तथा प्रजातियो मे डेन्थोनिया प्रमुख है।

(iv) **सार्व-उष्ण कटिबन्धी (Pantropical)** उष्ण कटिबन्धो मे विस्तृत वितरण वाले पादपो को सार्व-उष्ण कटिबन्धी कहा जाता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण पॉमी कुल है (चित्र 11 9)। कुछ मुख्य प्रजातियाँ बाहिनिया, डलबरजिया, डायोस्कोरिया, फ्राइलेन्थस, ओसिमस, कोरकोरस, कैसिया, माइमोसा आदि है। सार्व-उष्ण कटिबन्धी जातियो की सख्या अधिकाधिक है, लगभग 250 प्रजातियाँ उष्ण कटिबन्धीय है जिसमे से 135 पूर्णरूप से सार्व-उष्ण कटिबन्धी मानी जा सकती है। कुछ मुख्य सार्व-उष्ण कटिबन्धी कुल एस्क्लेपाइडेसी, अमेरीलिडेसी, अरेसी, अरिस्टोलेकिएसी, कुकुरबिटेसी, लोरेन्थेसी, टिलिएसी आदि है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि सतत वितरण मे असख्य पादप ऐसे भी है, जिन्हे उपरोक्त चार वर्गों मे से किसी एक वर्ग मे नही रखा जा सकता है क्योंकि अधिसख्य जातियाँ, प्रजातियाँ एक से अधिक जलवायु प्रदेशो मे पायी जाती है। अनेक परि-उत्तरी शीतोष्ण कुलो, प्रजातियो और जातियो का वितरण क्षेत्र उष्ण कटिबन्धो मे भी है तथा इसी तरह उष्ण कटिबंधी जातियो, प्रजातियो का परि-उत्तरी या परि-दक्षिण क्षेत्रो मे वितरण है।

2. **असतत वितरण (Discontinuous or disjunct distribution)-** जब किसी पादप जाति, प्रजाति या कुल का वितरण दो या दो से अधिक सुदूर स्थित क्षेत्र मे होता है तो इस प्रकार के वितरण को असतत वितरण कहा जाता है। इस तरह के वितरण मे क्षेत्रो की दूरी प्राय. इतनी अधिक होती है कि सामान्य प्रकीर्णन प्रक्रिया द्वारा इसकी व्याख्या नही की जा सकती है। पोलुनिन (1960) ने अपनी पुस्तक "परिचयात्मक पादप भूगोल" मे मुख्य चार प्रकार की असातत्यता बतलाई है।

(i) **छितरा (Diffuse)** जब पादप वितरण क्षेत्र कई छोटे छोटे भागो मे बटा हुआ हो।

(ii) **द्विक्षेत्री (Bipartite)** जब पादप वितरण एक ही गोलार्ध मे दो क्षेत्रो मे बटा हुआ होता है।

(iii) **द्विध्रुवीय (Bipolar)**: जब पादप वितरण उत्तरी और दक्षिण गोलार्धों मे विभाजित हुआ हो।

(iv) **तुंगी (Altitudinal)** : जब पादप वितरण दो भिन्न ऊँचाई के प्रदेशो मे वितरित हो तो इस तरह के असतत वितरण को तुंगी कहा जाता है।

कुछ मुख्य असतत वितरण निम्न प्रकार है।

1. **उत्तरी-ध्रुवीय पर्वतीय (Arctic-Alpine)**: इस तरह का वितरण उत्तरी ध्रुव, शीतोष्ण या उष्ण प्रदेशो के पर्वतो पर होता है। उदाहरणार्थ **सेक्सीफ्रागा, सेलिक्स, साइलीन** आदि।

2. **उत्तरी *अन्धमहासागरीय* (North Atlantic)**: इस तरह का असतत वितरण मुख्यत: उत्तरी अंधमहासागर के दोनो और होता है। उदाहरणार्थ **पोलीगोनम, जनकस, स्पाइरेन्थस** आदि।

3. **उत्तरी प्रशांत महासागरीय (North Pacific)**: जब पादप वितरण उत्तरी प्रशात महासागर मे दोनो ओर अर्थात पूर्वी एशिया तथा पश्चिमी उत्तरी अमेरिका मे हो। उदारणार्थ **निरियोडेन्ड्रोन, शंकुधारी पादप**।

4. **उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका (North-South America)**: जब पादप उत्तरी और दक्षिण अमेरिका मे समान जलवायु क्षेत्र मे वितरित हो। उदाहरणार्थ **लैरिया डाइवेरीगेटा** तथा **सारासेनिएसी** कुल के कुछ पादप।

5. **यूरेशियाई (Eurasiatic)**: जब असतत वितरण यूरोप तथा एशिया के सूदूर स्थानो मे हो तो इस तरह के वितरण को यूरेशियाई कहा जाता है। उदाहणार्थ **लियोरिस अल्टाइका, सीमिसीफ्युगा फीटिडा** आदि।

6. **भूमध्य सागरीय (Mediterranean)**: जब असतत वितरण भूमध्य सागर के आस-पास यूरोप, अफ्रीका और पूर्वी अमेरिका मे हो। उदाहरणार्थ **प्यूनिकेसी, सिस्टस, सेरेटोनिया, सिलिकुआ** आदि।

7. **उष्ण कटिबन्धी (Tropical)**: जब पादप उष्ण कटिबन्धो के दो या दो से अधिक क्षेत्रो मे वतरित हो -- जैसे

एशिया और मेडागास्कर मे -- **नैपेन्थिस**

एशिया और अफ्रीका मे -- **पेन्डेनस, कोफिया एरोबिका**

अफ्रीका और मेडागास्कर मे -- **वायोला एबीसीनिया**

अफ्रीका और अमेरिका मे -- **एनोना**

गौण्डवाना प्रदेशो मे (अमेरिका, अफ्रिका तथा एशिया में) (चित्र 11 10)-- **एडनसोनिया, लोबेनिया**

इन्डोमलाया (आस्ट्रेलिया और पोलीनेशिया) मे -- **एगेथिस डेक्राडियम**

चित्र 11.9 : पामी कुल का सार्व उष्ण कटिबंधी संतत वितरण क्षेत्र

चित्र 11.10 : लेसिथिडेसी कुल का असंतत क्षेत्र

8. **दक्षिण प्रशांत महासागरीय *(South Pacific)*:** जब असतत वितरण दक्षिणी प्रशात और दक्षिणी अमेरिका मे हो - उदाहरणार्थ **पेरनेटिया, लोरेलिया, ड्रेबे, ड्राइमिस** आदि ।
9. **दक्षिणी अंधमहासागरीय (South Altantic):** दक्षिणी अधमहासागर के दोनो और अर्थात मुख्यत शीतोष्ण प्रदेशो मे वितरित, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका मे वितरित – उदाहरणार्थ **एसलेपियास पोलिप्रमा, टेलेन्थरा** आदि ।
10. **दक्षिण ध्रुवीय (Antarctic):** दक्षिण ध्रुव प्रदेशो मे प्राय: जीवाश्म रूप मे तथा दक्षिण अमेरिका या न्यूजीलैण्ड या अन्य दक्षिणी द्वीपो मे – उदाहरणार्थ **नोथोफेगस**
11. **अन्तरामहाद्वीपीय (Intra Continental):** जब असतत वितरण एक ही महाद्वीप मे बहुत दूर बिखरे स्थानो मे हो उदाहरणार्थ – आस्ट्रेलिया मे **ड्रेसेरा**, यूरोप मे **रुबिया टेबोयसिया, रोडोडेन्ड्रोन पोन्टिकम** आदि ।

पादप जगत मे कुछ असतत वितरण इस प्रकार के है कि जिन्हे किसी भी वर्ग विशेष मे नही रखा जा सकता है जैसे केक्टेसी कुल का वितरण केन्द्र मुख्यत: अमेरिका होते हुए भी यह दक्षिण अमेरिका, मेडागास्कर, श्रीलका और भारत मे भी वितरित है। इसी तरह मैगनोलिएएसी कुल का वितरण प्रधानत. पूर्वी-उत्तरी अमेरिका और दक्षिण-पूर्वी एशिया मे है (चित्र 11 11) ।

2. असंतत वितरण की विवेचना व्याख्यात्मक पादप भूगोल के अन्तर्गत असतत वितरण की व्याख्या के लिये समय-समय पर विभिन्न मत व्यक्त किये गये । क्रोयजाट (1952) के मतानुसार भिन्न-भिन्न भागो मे समान वर्गको (Taxa) का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ होगा । इस विचारधारा को बहुजातिवृतीय विकास (Polyphylesis) कहा गया । अनुमानत: असतत वितरण भी किसी पूर्वज वश के आनुवाशिक पुनसयोजन के द्वारा
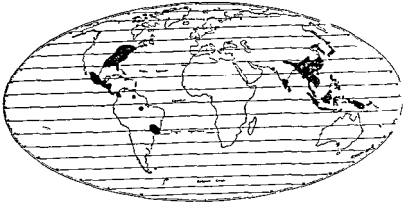
चित्र 11 11 मैगनोलिएसी कुल का असतत वितरण क्षेत्र

विभेदन (Differentiation) से स्वतत्र विकास के कारण सभव हुआ होगा । इस मत के समर्थन मे प्रतिस्थ (Vicarious) जातियो के वितरण की चर्चा की जाती है । प्रतिस्थ जाति किसी जाति की निकटस्थ जाति है जो जलवायवीय (Climatic) तथा मृदीय (Edaphic) विभिन्नताओं के कारण पायी जाती है । जो वस्तुत एक ही जाति के पारिस्थितिकीय प्रारूप हो सकती है ।

एक अन्य विचारधारा के अनुसार असतत वितरण की व्याख्या गौण्डवाना प्रदेश की अतीत मे उपस्थिति तथा समयान्तराल मे महाद्वीपीय विस्थापन के द्वारा की जा सकती है।

इसके विपरीत कुछ पादप भूगोल विद् पूर्व महाकल्पो मे थल सेतुओं (Land bridges) और पर्वत श्रृखलाओं (Mountain ranges) के सहारे विकिरण और प्रवास के विचार मे विश्वास करते है । उत्तरी अमेरिका और पूर्वी एशिया मे अनेक उभयनिष्ठ पादप प्रजातियाँ पायी जाती है । सभवत ये पादप प्रजातियाँ सीनोजोइक महाकल्प मे रॉकीज पर्वतो के सहारे प्रवास करके बेरिंग जलडमरुमध्य के बीच रहे थल सेतु से होकर एशिया मे प्रवेश कर गई ।

इसी तरह एक ही महाद्वीप मे बहुत दूर-दूर बिखरे असतत वितरण के लिये प्रवास बाधाओं और पूर्वकाल मे विस्तृत वितरण के अवशिष्ट क्षेत्रो (Relic areas) की परिकल्पना भी प्रस्तुत की गई ।

3 **विशेष क्षेत्रिय वितरण या विशेष क्षेत्रिता (Endemism)** सामान्यतया पादप या पादप समुदायो का विस्तार क्षेत्र भिन्न-भिन्न होता है । कुछ जातियाँ, प्रजातियाँ विस्तृत क्षेत्री होती है तो कुछ छोटे क्षेत्रो या क्षेत्र मे ही पायी जाती है । जब कोई कुल, प्रजाति या जाति किसी सीमित क्षेत्र मे ही वितरीत होती है तो इस प्रकार के वितरण को विशेष क्षेत्री (Endemic) कहा जाता है । गुड़ (1964) ने पादप वितरण की साख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए बतलाया कि पुष्पी पौधो की लगभग 15 प्रतिशत प्रजातियाँ सतत वितरण

क्षेत्र मे आती है जबकि शेष 85 प्रतिशत असतत एवम् विशेष क्षेत्री वितरण के अन्तर्गत आती है। विशेष क्षेत्री वितरण वाले कुलो की सख्या बहुत अधिक है। महासागरीय द्वीपो के पौधो मे विशेष क्षेत्री प्रजातियाँ और जातियाँ अधिसख्य पायी जाती है। हवाई द्वीप समूह और जुआन फर्नानडेज द्वीप समूह मे 85 प्रतिशत से अधिक पादप विशेष क्षेत्री है। मैडागास्कर द्वीप समूह मे समूचे वनस्पति क्षेत्र का 66 प्रतिशत, न्यूजीलैण्ड मे लगभग 72 प्रतिशत और सेंट हेलेना द्वीपो मे 85 प्रतिशत पौधे विशेष क्षेत्री है। गैलापोगोस द्वीपो मे 80 प्रतिशत से अधिक पादप विशेष क्षेत्री है। जिनके अध्ययन से डार्विन को अपने वरणात्मक विकास वाद के सिद्धान्त के लिये प्रमाण मिले थे। महासागरीय द्वीपो के अतिरिक्त विशेष क्षेत्री जातियाँ प्राय ऊँची पर्वत श्रृखलाओं मे भी बहुतायत मे पायी जाती है। वुल्फ (1943) ने बताया कि यूरोप के आल्पस (Alps) पर्वत पर लगभग 200 पादप जातियाँ विशेष क्षेत्री वितरण वाली है। इसी तरह केमरुन, पाइरीन, शैरैया, रुवेनजोरी, किनबालु आदि पर्वतमालाऐं इस तरह के वितरण के लिए विशेष उल्लेखनीय है। चटर्जी (1939) ने केवल हिमालय पर्वत पर 3169 द्विबीजपत्री पादप जातियो के विशेष क्षेत्री होने का अनुमान लगाया है जो पूरे हिमालय पर्वत श्रृखलाओं पर पायी जाने वाली द्विबीजपत्री पादप जातियो की सख्या का लगभग 23 प्रतिशत हैं। इसके अतिरिक्त अनेक जातियाँ विषमताओं के कारण विशेष क्षेत्री होती है जैसे जिंक, निकिल, क्रोमियम, मैगनीशियम, कैल्शियन आदि की अधिकता, मृदा का उसर होना, मृदा की विशेष रसायनिक सरचना इत्यादि। गुड (1964) ने अपनी पुस्तक मे विभिन्न पादप प्रान्तो मे विशेष क्षेत्री पौधो की लम्बी सूचियाँ प्रकाशित की है। विशेष क्षेत्री वितरण मे हम कुलो, प्रजातियो, जातियो की चर्चा करते हैं। कुलो के वितरण मे एक पूरे महाद्वीप मे पाये जाने वाले कुल को भी विशेष क्षेत्री कहा जाता है जबकि एक जाति विशेष का वितरण एक महाद्वीप मे होने पर या एक सी जलवायु मे एक ही अक्षांश मे स्थित महाद्वीपो मे होने पर विस्तृत वितरण क्षेत्र माना जाता है। अत अधिकाश विशेष क्षेत्री जातियाँ कुल हजार वर्गमील या केवल कुछ वर्गमील क्षेत्र मे ही वितरित होती है। यहाँ पर कुछ उदाहरण विभिन्न वर्गको के दिये जा रहे है जैसे डेजोनेरिएसी कुल (फिजी में), वारवेनेसी, हम्बर्टिएसी (मैडागास्कर में), आस्ट्रोवेलिएसी, ब्रूनोनिएसी, एकेनिएसी (आस्ट्रेलिया में), लेपीडोवोट्रिएसी, साइटोपेटलैसी, ग्नेडेसी (अफ्रीका मे) इत्यादि विशेष क्षेत्री कुलो के उदाहरण है। इसी तरह निम्न प्रजातियाँ कुछ क्षेत्र विशेष की विशेष क्षेत्री प्रजातियाँ है जैसे **कोक्सेला, डेक्टीलेन्थस, एन्टीलिना** न्यूजीलैण्ड), **मोनोकोकस, स्टेन्फोर्डिया, एम्बीडियस, डारवीनिया** (आस्ट्रेलिया), **कुण्डोसिया, इस्लेन्थस, केलाकेन्थस, क्लोरोजाइलोन, वेटेलोडियम, लीवुलिया** आदि (भारत)। विशेष क्षेत्री जातियो की सख्या बहुत अधिक है। **एकेशिया** और **यूक्लिपटस** की सैकडो जातियाँ **कैलिस्टेमोन, पेन्डेनस, कैजुराइना** की अनेक जातियाँ आस्ट्रेलिया की विशेष क्षेत्री हैं। इसी तरह **पोआ अल्टाईक, कराग्ना सींकलर, कोब्रेशिया टिबेटिका, माइरिकेरिया प्रोस्ट्रेटा, राईमूला फ्लोरिड़ी** तिब्बत की विशेष क्षेत्री जातियाँ हैं। **एगेल मार्मेलोस, क्रोटलेरिया नन्सिया, इन्डिगोफेरा टिक्टोरिया, पाइपर निग्रम, साराका इन्डिका, फाइकस बेंगलेन्सिस, ब्रुटिया मोनोस्परमा, शोरिया रोबस्टा** आदि (भारत मे)।

किसी भी जाति का वितरण क्षेत्र अनेक पारिस्थितिक कारको द्वारा नियन्त्रित होता है। यदि किसी जाति का परिस्थितिकी आयाम (Ecological amplitude) कम होता है तो उनका विस्तार भी सीमित क्षेत्र मे ही होता है। विशेष वातावरण के बाहर वह अपना अस्तित्व नही बना रख पाती है तथा अन्तसघर्ष करती हुई विलुप्त हो जाती है। विशेष क्षेत्री पादपो को सामान्यतया दो प्रकारो मे विभक्त किया जाता है।

(क) पुराविशेष क्षेत्री या एपी बायोटिक या अविशष्ट या सकुचित विशेष क्षेत्रिता (Paleoendemic or epibiotic or relics or contracting or retrogressive endemism) वे विशेष वर्गक जिनका पूर्वकाल मे विस्तृत विस्तार रहा है परन्तु शनै-शनै उनका वितरण सकुचित होकर अब कुछ क्षेत्र मे ही रह गया है।

(ख) नियोएन्डेमिक या माइक्रोएन्डेमिकया विस्तृत विशेष क्षेत्रिता (Neoendemic or Micro endemic or expanding or progressive endemism)-- ऐसी जातियाँ या प्रजातियाँ जिनका उद्‌भव नया है तथा वे अभी अपना वितरण क्षेत्र नही बढ़ा पाई है। जिनके विस्तरित होने की प्रबल सभावना है परन्तु वर्तमान मे वह विशेष क्षेत्री है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि विशेष क्षेत्री जातियाँ प्राचीन कल्पो के पौधो का अवशेष मात्र है। जो पृथ्वी मे हुए भूआकृतिक परिवर्तनो तथा महाद्वीपीय विस्थापन के कारण कुछ क्षेत्र विशेष तक ही सिमट कर रह गये है तथा कई कारणो से अपने वितरण क्षेत्र का विस्तार करने मे समक्ष नही हो पाए। इस मत के पक्ष मे **ट्रापा नेटेन्स, सिक्वोआ सेम्परवाइरेन्स, जिन्गो बाइलोबा** आदि पादपो के उदाहरण दिये जाते है। **ट्रापा नेटेन्स** का वितरण उत्तरी यूरोप व एशिया के कुछ भागो मे पाया जाता है और इन्ही क्षेत्र से इसके कई जीवाश्म (Fossil) भी मिले है। जो यह इगित करते है कि पूर्व काल मे यह जाति विस्तृत रूप से वितरित थी। इस तरह सिक्वोआ सेम्परवाइरेन्स के जीवाश्म भी पश्चिमी अमेरिका मे ही पाये जाते है। ये पेड निर्विवाद रूप से हजारो वर्ष पुराने है। डार्विन के वरणात्मक विकासवाद के सिद्धान्त मे विश्वास करने वाले वैज्ञानिक विशेष क्षेत्री जातियो को पुराविशेषी या अवशिष्ट जातियाँ ही मानते है। इस मत के अनुसार बाद के काल मे विकसित जातियाँ पर्यावरणीय कारको के अधिक अनुकूल रही होगी। इस कारण पुरानी जातियाँ बाद मे विकसित जातियो से स्पर्धा मे पिछड गई और सीमित क्षेत्र मे वितरित होकर रह गई होगी। वुल्फ (1943) ने प्रतिस्थ जातियो और विशेष क्षेत्री अवशिष्ट जातियो को पृथक किया। उनके अनुसार केवल वे ही जातियाँ या प्रजातियाँ पुराविशेष क्षेत्री कहलायेगी जो अपने पूर्वजो के आदिम गुणो से युक्त होगी। इस आधार पर अवशिष्ट जातियो को भी कई प्रकार से विभाजित किया जाता है – जैसे स्थानीय, भूआकृतिक, जलवायवी, मानवाद्‌भवी प्रवासी इत्यादि। इसलिये अवशिष्टवाद का निर्धारण उस जाति या प्रजाति के जीवाश्मो की उपलब्धता तथा उसके आदिम गुणो के आधार पर किया जाता है।

इसी क्रम मे केन (1944) ने "प्रजाति चक्र के सिद्धान्त" (Theory of generic cycle) का प्रतिपादन किया जो एक जातिवृतीय (Monophyletic) विकास पर आधारित है। इसने किसी जाति के विकास चक्र की तुलना व्यक्ति या व्यष्टि (Individual) के विकास क्रम से की गई है। इस तरह जाति के विकास की भी चार अवस्थाए मानी गई है क्रमश युवावस्था,

बाहुल्यता को इस के वितरण के लिये महत्वपूर्ण माना। होरा के मत के अनुसार प्लास्टोसीन काल मे सतपुडा, अरावली तथा विध्याचल पर्वत श्रेणियाँ आपस मे जुडी थी और इस तरह पूर्वी हिमालय से सह्याद्री प्रर्वत (पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग) तक एक सतत पर्वत श्रृखला थी। जो 5000-6000 फीट ऊँची रही होगी। इस क्षेत्र मे 250 से० मी० से अधिक वर्षा के कारण उष्ण सदाबहार वन रहे होगे। इस पर्वत श्रृखलाओं के कारण आसाम और पूर्वी हिमालय से छोटा नागपुर क्षेत्र तक ओर वहाँ से दक्षिण भारत तथा लका तक विध्य-सतपुडा-पश्चिमी घाट मार्ग से प्रवास सभव हुआ होगा। कालान्तर मे इस पर्वत श्रृखला के बीच-बीच मे नष्ट हो जाने से वितरण असतत हो गया होगा। आडेन (1949) तथा डे (1949) ने सतत सतपुडा पर्वत श्रृखला के अस्तित्व पर भूवैज्ञानिक आधार पर प्रश्न चिन्ह लगाया। लेग्रिस (1963) ने पश्चिन तट से होकर प्रवास की सभावना व्यक्त की और इसके लिये जलवायवीय, भूवैज्ञानिक तथा पुरावानस्पतिक प्रमाण भी प्रस्तुत किये। लेग्रिस के ही अनुसार प्रवास दक्षिण से उत्तर-पूर्व की और हुआ होगा। यह मार्ग आसाम को पश्चिमी घाट से बगाल, उडीसा की पर्वत श्रृखलाओं, पूर्वी घाट, मैसूर तथा नीलगीरी के द्वारा जोड़ता है। वर्तमान मे अधिकाश पादप भूगोलविदो के अनुसार प्लेस्टोसीन युग मे हिमनदीकरण के परिणामस्वरूप हुए जलवायु परिवर्तन ही असातत्य वितरण की सर्वोत्तम व्याख्या करते है।

पुष्पधारी पादपो की उत्पत्ति संबन्धी अवधारणा :

आवृतबीजी पादपो के उत्पति स्थान के सबन्ध मे तीन मत व्यक्त किए गये है तथा जलवायु परिवर्तन को आधार माना गया है। वस्तुत: कोई भी मत अपने आप मे परिपूर्ण नही कहा जा सकता है।

प्रथम अवधारणा के अनुसार पुष्पधारी पादपो की उत्पति उत्तरी ध्रुव प्रदेशो पर हुई होगी जहाँ से प्लास्टोसीन युग मे हिमनदीकरण होने से इनका दक्षिण की ओर प्रवास हुआ होगा। जीवाश्मो की बाहुल्यता तथा उत्तरी ध्रुव प्रदेशो मे जलवायु के उष्ण होने की सम्भावना से इस मत को समर्थन प्राप्त होता है इस मत को होलार्कटिक मत भी कहा जाता है।

द्वितीय मत के अनुसार पुष्पधारी पादपो की उत्पति एवम् विकास उष्ण कटिबन्धो मे हुआ होगा। गप्पी (1906), एक्सेलरोड (1952) और तख्ताजान (1957) ने इस मत का समर्थन किया। एक्सेलरोड ने क्रिटेशियस कल्प की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे विभिन्न अक्षाशो से प्राप्त जीवाश्मो का सख्यात्मक विश्लेषण कर निष्कर्ष व्यक्त किया कि आल्वियन काल के पहले 60°N अक्षाश से उत्तर मे पुष्पधारी पादप उपस्थित नही थे जबकि निम्न अक्षाशो पर कुछ पुष्पधारी पौधे पाये गये। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि आवृत बीजी पादपो की उत्पति सभवत. उष्ण कटिबन्धो वाले प्रदेशो मे हुई होगी तथा कालान्तर मे तीव्र गति से विकसित होकर वे उत्तरी आक्षाशो की ओर प्रवास करके वृहद स्तर पर वितरीत हो गये होंगे। एक्मेलरोड ने विश्वास किया कि इन पादपो का विकास पर्वत श्रृखलाओं मे हुआ होगा जहाँ उनके जीवाश्म बनने की अनुकूल परिस्थितियाँ नही थी। बाद मे पर्वतो से इन पादपो का मैदानी भूभाग मे प्रवास हुआ होगा। जहाँ उनके

(Culuvated plants) की उत्पत्ति अपेक्षाकृत नवीन होते हुए भी विस्तरण विस्तृत क्षेत्र मे है। पोलुनिन (1960) के अनुसार विशेष क्षेत्री जातियो विकास क्रम नवागन्तुक हो सकती है या अवशिष्ट है जिनका अतीत मे विस्तृत वितरण क्षेत्र रहा होगा। नई विकसित विशेष जातियो मे प्राय गुणसूत्र बडे होते है। ये विस्तृत परिस्थितिकीय आयाम वाली एव आक्रमक प्रवृति की होती है। इसके विपरीत अवशिष्ट जातियो में गुणसूत्र प्राय छोटे तथा परिस्थितिकीय आयाम सकुचित होता है।

भारत के विशेष क्षेत्री पादप और पादप सूची

भारत वर्ष निश्चय ही एक सुनिश्चित भौगोलिक ईकाई है जो कि भूमध्य रेखा के उत्तर मे लगभग 8°4" से० 37°6" उत्तरी अक्षाश रेखाओं तथा लगभग 68°7" से 97 °25" पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य अवस्थित है। यह तीन दिशाओं, दक्षिण पूर्व, पश्चिम से गहरे समुद्रो तथा उत्तर मे विश्व की सबसे ऊँची पर्वत श्रृखलाओं हिमालय तथा उत्तर पश्चिम मे शुष्क मरुस्थल जैसी प्राकृतिक प्रवास बाधाओं से घिरा है। मार्सडन के अनुसार विश्व की समस्त जलवायु का सम्मिश्रण अकेले भारत मे मिलता है। जैसा कि पूर्व मे उल्लेख किया गया है भारत अतीत मे गौण्डवाना प्रदेश का एक अश रहा है। महाद्वीपीय विस्थापन द्वारा हिमालय की ऊँची पर्वत श्रृखलाओं की उत्पति प्लायस्टोसीन युग से कुछ पहले ही हुई होगी ऐसी स्थिति मे भारतीय पादप जात की अपनी कोई निजी विशेषता नही है बल्कि आसपास के स्थानो के अतिरिक्त सूदूर स्थलो के पादपी तत्व भी इसमे पाये जाते है। भारत की विशेष भौगोलिक परिस्थिति एवम् जलवायु के कारण यहाँ भारतीय के अतिरिक्त भूमध्यसागरीय, अफ्रीकी, मलायाई, चीनी, आस्ट्रेलियाई व अमेरिकी पादप तत्व पाये जाते है। अनेक जातियो की उत्पति इस क्षेत्र से हुई है। भारत वर्ष मे पुष्पी पादपो की लगभग 21,000 जातियाँ पाई जाती है। यह विश्व का लगभग दस प्रतिशत है। टेरिडोफाइटा की लगभग 600 जातियाँ पाई जाती है। पुष्पी पादपो मे कोई भी कुल भारत वर्ष के लिये विशेष क्षेत्री नही है। आरकिडेसी 1700 जातियो के साथ सबसे बडा कुल है। अन्य प्रमुख बड़े कुल लेग्यूमिनोसी, ग्रेमिनी, रुबीएसी, यूफोर्बिएसी, एकेन्थेसी, लेबिएटी, कम्पोजिटी, साइपरेसी, आर्टिकेसी आदि है। चटर्जी (1939 व 1962) ने भारत तथा बर्मा के विशेष क्षेत्री पादपो का विस्तृत अध्ययन किया। चटर्जी के ही अनुसार द्विबीजपत्री पौधो की लगभग 11,124 जातियाँ जो 1831 प्रजातियो एव 173 कुलो मे वितरित है। इन जातियो मे लगभग 61 5% ब्रिटिश इडिया मे, सिलोन को छोड कर विशेष क्षेत्री है। जबकि द्विबीजपत्री प्रजातियो के लिये यह प्रतिशत केवल 7 3 है (अर्थात 1831 प्रजातियो मे से 134 प्रजातियाँ)। द्विबीज पत्री के 173 कुलो मे से 81 कुलो मे प्रत्येक कुल मे 20 से भी अधिक जातियाँ पायी जाती है। 20 से अधिक जातियो वाले कुलो मे से 27 कुलो मे 50 प्रतिशत से कम विशेष क्षेत्री पौधे पाये जाते है जबकि शेष 65 कुलो मे 50 प्रतिशत से अधिक विशेष क्षेत्री पादप जातियाँ पाई जाती है। द्विबीजपत्री मे सर्वाधिक विशेष क्षेत्री पौधे हिमालय मे 3169 जातियाँ (28 8%), दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप मे 2048 जातियाँ (18.2%) और बर्मा मे 1071 जातियाँ (9 6%) अन्त मे 4 9% द्विबीजपत्री जातियाँ पूरे भारतीय प्रायद्वीप (Indian subcontinent) मे विशेष क्षेत्री है।

भारत मे एक बीजपत्री पौधो मे 20% जातियाँ विशेष क्षेत्री है जिनमे से 1000 जातियाँ हिमालय मे तथा 500 जातियाँ दक्षिण भारत मे पायी जाती है ।

भारत के कुछ विशेष क्षेत्री पादप निम्न प्रकार है ।

प्रजातियाँ :--

केलाकेन्थस, हेप्लेन्थस, पेटेलोडियम, क्लोरोज्ञइलोन, मैकेनोप्सिस, हेमाफ्राग्मा, ब्लिफेरीस्टेना, कुडासिया, हिचेनिया, उटलेरिया, एक्फीकोम, डिटोसेरास, सीसुलिया, जेलानीडियम लेगेनान्ड्रा, हेलान्डिया डोडेकोनिया आदि ।

जातियाँ :--

डायोस्पाइरोस एबेनम, वैन्डा सीरुलिया, वाइटेक्स नेगुन्डो, केलोट्रोपिस जाइजेन्टिया, फाइकस इलास्टिका, बोम्बेक्स मेलेबेरिकम, स्ट्राबाइलेन्थस की जातियाँ, मेनेसाइलोन और हम्वोल्टिया की जातियाँ, डेन्ड्रोबियम नोबाइल, डेइरा मेटेल, पेनीसेटम, ग्लाइकम, गाइनोकोर्डिया ओडोरेटा, बायमोनिमा, आइपोमिया के अनेक जातियाँ, जैसीमीनम ग्राडीफ्लोरम, हिबिस्कस एबेलमोशकस, गोडीप्लोरा, कोराइफा अम्ब्रैकुलीफेरा, होम्स कोल्डिया सेग्वाइना, आर्टोकार्पस नोबेलिस, कोरकोरस केप्सुलेरिस, केरियोटा यूरेन्स, इलेटेरिया रेपेन्स, पाइपर लोगम, इल्युसाइन कोरा काना, लफ्फा इजीपटिका, फेरोनिया एलीफेन्टम, मुराया कोयनिगाई, प्टेरोकार्पस सेट लाइनम, सीसेमम इन्डिकम, ओराइजा कोआर्कटाटा आदि ।

भारत मे अधिसख्य विशेष क्षेत्री पादप तीन उपक्षेत्रो मे केन्द्रित है । हिमालय पर्वतक श्रृखलाऐ तिब्बत से गगा के मैदानो मे प्रवासित होने वाले पौधो के लिए बाधक (Barrier) रूप मे माना गया है । गगा की जलोढ (Alluvium) मृदीय मैदानो को भी प्रवास मे बाधा माना गया है । इस प्रकृतिक बाधाओं ने हिमालय क्षेत्र व दक्षिण भारत मे विषेष क्षेत्री पादपो के वृहद विकास मे मदद की है जबकि मैदानी भूभाग मे जनसख्या दबाव तथा जलवायु की समानता के कारण विशेष क्षेत्री पादपो के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है । लेग्रिस (1963) ने गगा की उष्ण जलोढ़ मृदा को प्राकृतिक बाधक के रूप मे स्वीकार नही किया । उनके अनुसार हिमालय व दक्षिण के पठारो मे विशेष क्षेत्री पादपो की बाहुल्यता का कारण इन दो भूभागो की जलवायु मे बहुत भिन्नता तथा शिवालिक पहाड़ियो की उपस्थिति है।

चटर्जी (1957) पुरी (1960) सेशागिरी राय(1961) ने भारतीय वनस्पति के वितरण से सबन्धित उल्लेखनीय कार्य किया है । इसी सदर्भ मे उन्होने भारतीय वनो मे वृक्षो के असातत्य वितरण को भी दर्शाया । भारत मे पश्चिमी-पूर्वी हिमालय, पूर्वी-उत्तरी भारत का मैदानी भूभाग, तथा दक्षिण-पश्चिम के पठार की वनस्पति मे काफी समानताए पायी जाती है परन्तु इनके बीच के प्रदेशो मे यही वनस्पति नही पाई जाती है जो असातत्य वितरण को प्रदर्शित करती है । इनमे मुख्य जातियाँ निम्न है ।

बिशोफिया जेवेनिका (Bischofia javanica), केरेलिया ब्रेकिएटा (Carallia brachiatta), सिड्रेला तूना (Cedrella toona), चिकरसिया टेबुलेरिस (Chickrassia tabularia), डिलेनिया पेन्टागाइना (Dillenia pentagyna), लेजर्सट्रीमिया फ्लासेरे जिनी

(Lagerstroemia Plosreginae), माइकेलिया चम्पाका (Michelia champaca), टैक्टोनो ग्रांडिस (Tectona grandis) और जाइलिया जाइलोकारपा (Xylia xylocarpa) ।

इस असातत्य वितरण की व्याख्या के लिए समय-समय पर भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किये गये। मैलिकोट और ब्लेन फोर्ड (1879) भारत मे असातत्य वितरण की व्याख्या के लिये हिमालय मे हिमनदीकरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्लास्टोसीन काल मे हिमालय मे हिमनदीकरण के कारण सम्पूर्ण भारत वर्ष का तापमान बहुत कम हो गया होगा जिससे हिमालयन वनस्पति दक्षिण वर्त प्रवास कर गयी और कालान्तर मे पुन तापमान बढ़ने की वजह से वे दक्षिण मे ही ऊँची पर्वत श्रृखलाओं पर चले गये होगे। बर्किल (1924) ने भी हिमनदीकरण को प्रवास का मुख्य कारक माना। इस विचार के अनुरूप हिमालय मे मलाया पादपी तत्व बहुत पुराना है तथा बगाल की खाडी या लका-दक्कन प्रवास मार्ग से प्रवासित हुआ और हिमकरण के बाद ये पौधे दक्षिण की ओर प्रवास कर गये जहाँ अनुकूल वातावरण रहा होगा। डे टेरा और पेटरसन (1939) ने कश्मीर के करेवा निक्षेप (Karewa deposits) के अध्ययन से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर बताया कि प्लास्टोसीन युग मे पाँच हिमशैल (Glacial) तथा चार अन्तर्हिमानी (Inter glacial) काल आये। जिससे ये हिमनद (Glacier) समुद्र से 4000-5000 फीट की ऊँचाई तक फैल गये। जिससे दक्षिण भारत मे तापमान बहुत नीचे चला गया होगा। जिससे हिमालयन पादप दक्षिण की और प्रवास कर गये होंगे। ब्लास्को (1971) ने हिमनंदीकरण के सिद्धान्त से असहमति व्यक्त करते हुए अन्तर्पर्वत श्रृखलाओं (Inter mountain) के मध्य वायु और पशु पक्षियो द्वारा सुदूर विकिरण का विचार रखा परन्तु आडेन और डे (1949) ने हिमनदीकरण व जलवायु परिवर्तन के सिद्धान्त का समर्थन किया। गुप्ता (1962) के मतानुसार पश्चिमी हिमालय मे तीव्र हिमनदीकरण के कारण भारतीय मलायाई पादप तत्व लुप्त हो गये तथा शनै शनै भूमध्य सागरीय शकुधारी पौधो का बाहुल्य हो गया। बिस्वास (1937) के अनुसार पश्चिमी हिमालय क्षेत्र मे प्लास्टोसीन युग मे तीव्र हिमनदीकरण के फलस्वरूप ओक-ल्युरेल पादप समुदाय की तरह की वनस्पति के स्थान पर शकुधारी पादपो का अधिपत्य हो गया जबकि पूर्वी हिमालय मे हिमनदीकरण अपेक्षाकृत कम होने तथा वर्षा अधिक होने से भारतीय-मलायाई तत्व बचे रह सके।

दूसरे मत के अनुसार हिन्द महासागर मे थल सेतुओं का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। इस मत के अनुसार मलेशिया, अडमान निकोबार द्वीप समूह, लका तथा दक्षिण भारत के मध्य महाद्वीपीय थल सेतुओ की कल्पना की गई। क्लार्क (1928) ने मलायाई तत्व की उपस्थिति का इस मार्ग द्वारा स्पष्टीकरण दिया। इसी तरह भारत, आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड के मध्य थल सेतुओं की परिकल्पना की गई। अफ्रीकी तत्वो की उपस्थिति के लिये मैडागास्कर, भारत व लका को जोडने वाले लेमुरिया महाद्वीप की कल्पना की गई। भूवैज्ञानिक प्रमाणो के अभाव मे थल सेतु सिद्धान्त को विशेष समर्थन प्राप्त नही हो सका।

होरा (1949) ने सतपुडा परिकल्पना के रूप मे सतत सीमा सिद्धान्त (Continuous range theory) प्रतिपादित किया। होरा ने तापमान (Temperature) कारक के कारण असतत वितरण के मत से असहमति व्यक्त करते हुए आद्रता कारक (Humidity) तथा वर्षा की

बाहुल्यता को इस के वितरण के लिये महत्त्वपूर्ण माना। होरा के मत के अनुसार प्लास्टोसीन काल मे सतपुडा, अरावली तथा विंध्याचल पर्वत श्रेणियाँ आपस मे जुडी थी और इस तरह पूर्वी हिमालय से सह्याद्री प्रर्वत (पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग) तक एक सतत पर्वत श्रृखला थी। जो 5000-6000 फीट ऊँची रही होगी। इस क्षेत्र मे 250 से० मी० से अधिक वर्षा के कारण उष्ण सदाबहार वन रहे होगे। इस पर्वत श्रृखलाओं के कारण आसाम और पूर्वी हिमालय से छोटा नागपुर क्षेत्र तक ओर वहाँ से दक्षिण भारत तथा लका तक विंध्य-सतपुडा-पश्चिमी घाट मार्ग से प्रवास सभव हुआ होगा। कालान्तर मे इस पर्वत श्रृखला के बीच-बीच मे नष्ट हो जाने से वितरण असतत हो गया होगा। आडेन (1949) तथा डे (1949) ने सतत सतपुडा पर्वत श्रृखला के अस्तित्व पर भूवैज्ञानिक आधार पर प्रश्न चिन्ह लगाया। लेग्रिस (1963) ने पश्चिम तट से होकर प्रवास की समावना व्यक्त की और इसके लिये जलवायवीय, भूवैज्ञानिक तथा पुरावानस्पतिक प्रमाण भी प्रस्तुत किये। लेग्रिस के ही अनुसार प्रवास दक्षिण से उत्तर-पूर्व की ओर हुआ होगा। यह मार्ग आसाम को पश्चिमी घाट से बगाल, उडीसा की पर्वत श्रृखलाओं, पूर्वी घाट, मैसूर तथा नीलगीरी के द्वारा जोड़ता है। वर्तमान मे अधिकाश पादप भूगोलविदो के अनुसार प्लेस्टोसीन युग मे हिमनदीकरण के परिणामस्वरूप हुए जलवायु परिवर्तन ही असातत्य वितरण की सर्वोत्तम व्याख्या करते है।

पुष्पधारी पादपो की उत्पति संबन्धी अवधारणा :

आवृतबीजी पादपो के उत्पति स्थान के सबन्ध मे तीन मत व्यक्त किए गये है तथा जलवायु परिवर्तन को आधार माना गया है। वस्तुत: कोई भी मत अपने आप मे परिपूर्ण नही कहा जा सकता है।

प्रथम अवधारणा के अनुसार पुष्पधारी पादपो की उत्पति उत्तरी ध्रुव प्रदेशो पर हुई होगी जहाँ से प्लास्टोसीन युग मे हिमनदीकरण होने से इनका दक्षिण की ओर प्रवास हुआ होगा। जीवाश्मो की बाहुल्यता तथा उत्तरी ध्रुव प्रदेशो मे जलवायु के उष्ण होने की सम्भावना से इस मत को समर्थन प्राप्त होता है इस मत को होलार्कटिक मत भी कहा जाता है।

द्वितीय मत के अनुसार पुष्पधारी पादपो की उत्पति एवम् विकास उष्ण कटिबन्धो मे हुआ होगा। गम्पी (1906), एक्सेलरोड (1952) और तख्ताजान (1957) ने इस मत का समर्थन किया। एक्सेलरोड ने क्रिटेशियस कल्प की प्रारम्भिक अवस्थाओं मे विभिन्न अक्षाशो से प्राप्त जीवाश्मो का सख्यात्मक विश्लेषण कर निष्कर्ष व्यक्त किया कि आल्बियन काल के पहले 60°N अक्षाश से उत्तर मे पुष्पधारी पादप उपस्थित नही थे जबकि निम्न अक्षाशो पर कुछ पुष्पधारी पौधे पाये गये। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया कि आवृत बीजी पादपो की उत्पति सभवत. उष्ण कटिबन्धो वाले प्रदेशो मे हुई होगी तथा कालान्तर मे तीव्र गति से विकसित होकर वे उत्तरी आक्षाशो की ओर प्रवास करके वृहद स्तर पर वितरीत हो गये होंगे। एक्सेलरोड ने विश्वास किया कि इन पादपो का विकास पर्वत श्रृखलाओं मे हुआ होगा जहाँ उनके जीवाश्म बनने की अनुकूल परिस्थितियाँ नही थी। बाद मे पर्वतो से इन पादपो का मैदानी भूभाग मे प्रवास हुआ होगा। जहाँ उनके

निकास और प्रवास की प्रबल सम्भावना से इनका तेजी से अनायास निस्तारण सभव हो गया और ये ध्रुव प्रदेशो की ओर प्रवासित हो गये । तख्ताजान ने भी इस विचार का समर्थन करते हुए आस्ट्रेलिया तथा पूर्वी एशिया (इण्डो-मलाया) मे इन की उत्पति को माना क्योंकि इन क्षेत्रो मे अब भी आदिम कुलो के पादपो का बाहुल्य है ।

तृतीय मत क्रोयजाट (1952) का है जिसके अनुसार पुष्पधारी पादपो की उत्पत्ति तथा विकास दक्षिणध्रुव प्रदेशो मे हुआ होगा तथा कालान्तर मे ये विभिन्न दशाओं से होकर उत्तर की और फैल गये होगे । इस मत को होलएन्टार्कटिक मत भी कहा जाता है । अनेक महत्वपूर्ण शीतोष्ण कटिबन्धी कुल जैसे क्यूनोनिएसी, फाइलेसिएसी, प्रोटिएसी, रेस्टिओनेसी, पिटोस्पोरेसी इत्यादि दक्षिण ध्रुव प्रदेशो मे ही सीमित है । इसके अतिरिक्त भी कुछ कुलो जैसे इलयोकार्पेसी, मोनीमिएसी, एस्केलोनिएसी आदि के पौधे उत्तरी गोलार्ध की तुलना मे प्रधानत दक्षिण गोलार्ध क्षेत्रो मे पाये जाते है । इसी तरह उत्तरी गोलार्ध के शीतोष्ण प्रदेशो मे वितरित पादपो की सख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है । महाद्वीपीय विस्थापन के पक्ष प्रस्तुत साक्ष्यो तथा उपरोक्त वितरण प्रमाण के आधार पर कहा जा सकता है कि पुष्पी पादपो का विकास इसी क्षेत्र मे हुआ होगा। हालाकि क्रोयजाट ने महाद्वीपीय विस्थापन, थल सेतुओं के सिद्धान्त तथा जलवायु का पादप विकास से अन्तर सबन्ध को नही स्वीकारा था । क्रोयजाट के अनुसार अतीत मे जल और थल के अनुपात मे अन्तर आया तथा पूर्वकाल मे दक्षिण ध्रुव प्रदेश बहुत विस्तृत था और अफ्रीका, अमेरिका भारत तथा आस्ट्रेलिया से सबद्ध था । कालान्तर मे कुछ स्थल भाग आचूर्णन (crumbling) के कारण समुद्र मे डूब गया । पुष्पी पादपो की उत्पत्ति जुरेसिक कल्प से पूर्व मानी गई है तथा जूरेसिक के अन्त तथा क्रिटेशियस के प्रारम्भ मे तीव्र प्रवासो की सभावना व्यक्त की गई । टरशियरी कल्प मे भी प्रवास गति अधिक रही और क्वाटरनरी के अन्त मे यह गति कम हो गई । क्रोयजाट ने पादप प्रवास के तीन मुख्य मार्ग बतलाए जिन्हे "पुष्पी पादपो के द्वार" (Gates of Angiospermy) कहा जाता है (चित्र 11 12) । ये इस प्रकार है ।

1 अफ्रीकी द्वार
2 पश्चिमी पोलीनेशियन द्वार
3 मैजेलेनियन द्वार

इसके अतिरिक्त अफ्रीका, रूस और अमेरिका को प्रवास के गौण केन्द्र भी माना जाता है ।

पादप प्रवासन और बाधक पादपी तत्वो (Floristic elements) के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे जाने की क्रिया को पादप प्रवासन (Plant migration) कहते है । जैसे-जैसे पृथक प्रवासन के बीच की दूरी बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उनके पादप सगठन मे भी भिन्नता आती जाती है । पादप प्रवासन पौधो के प्रकीर्णन अगो जैसे बीज, फल, डायस्पोर आदि द्वारा होता है तथा नये क्षेत्र मे इन प्रकीर्णन अगो के सफल आस्थापन पर पूर्ण होता है । कई ऐसे प्राकृतिक बाधक (Barriers) भी है जो इस वितरण मे बाधा पहुँचाते है । सफल प्रवासन कई कारको पर निर्भर करता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पादप वितरण को अत्यधिक प्रभावित करते है । इनमे मुख्य निम्न प्रकार से है ।
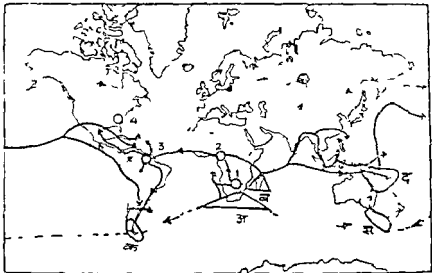
चित्र 11 12 क्रोयजाट के अनुसार प्रवास मार्ग और पुष्पी पौधों के द्वार।
अ , ब -- अफ्रीकी द्वार, स , द पोलीनेशियन द्वार,
क -- मैजेलेनियन द्वार।

1 वायु की आद्रता, वायु की दिशा, जल की धारा जल की लवणता, भूआकृति आदि।

2 चरने वाले पशुओं (Grazers) के सुदूर या आसपास के स्थलो से सतत आवागमन के दौरान अपनी ब्राह्य त्वचा तथा अपने गोबर के माध्यम से बीजो के वितरण को प्रभावित करते है।

3 प्रवासित पक्षियो के माध्यम से भी बीज जो उसके पैरो मे लगे कीचड़ से सलग्न होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानातरित हो जाते है।

4 मानव द्वारा उपयोगी बीज भण्डार व वितरण के साथ कभी-कभी अनजाने ही अन्य खरपतवारो के बीज भी अन्य स्थानो पर स्थानातरित हो जाते है या उपयोगी पादपो के वृक्षारोपण द्वारा भी बीज वितरण प्रभावित होता है।

कई अनुपयुक्त पर्यावरणीय कारको के कारण सभी प्रवासित बीजो का या डायस्पोर का सफल आस्थापन नही हो पाता है जैसे मृदीय pH, हानिकारक कीटो की उपस्थिति, सहभोजियो या परागण के लिए आवश्यक जीवो की अनुपस्थिति, पुष्पन व बीज उत्पादन के लिये आवश्यक दीप्ति कालिता का अभाव इत्यादि सफल प्रवासन तथा आस्थापन मे बाधक का कार्य करते है। वृहद् स्तर पर प्रवासन के लिए उत्पति केन्द्र तथा वितरण क्षेत्र के बीच बाधक का न होना एक आदर्श स्थिति होती है। इन बाधको की उपस्थिति से

कुछ पौधो का वितरण सीमित क्षेत्र मे ही सिमट कर रह जाता है जिसे असातत्यता कहा जाता है । कई ऐसे कारक भी है जो पादप वितरण को उत्प्रेरित करते है जैसे जाति का जनसख्या दबाव, खाद्यानो का अभाव, उपयुक्त होमियोस्टेसिस (Homeostasis) की कमी, नये उपयुक्त अनुकूल आदि ।

प्रवासन के लिए मुख्यत : चार प्रकार के बाधक है ।

1. **भूमि विशेषताऐं (Land features):** *ऊँची पर्वत श्रृखलाए, गहरी खाईयाँ, विस्तृत शुष्क मरुस्थल, शुष्क भूमि की उपस्थिति, उपयुक्त मृदा की अनुपस्थिति, लवणीय मृदा, उसर भूमि की उपस्थिति इत्यादि ।*
2. **समुद्र (Ocean):** *यह एक प्रमुख बाधक तत्व है । जिसके कारण द्वीप समूह के पादप प्रवासन नही कर पाते है तथा वहाँ के अधिसख्य पादप विशेष क्षेत्री श्रेणी में आ जाते है ।*
3. **जलवायवीय बाधक (Climatic barriers):** *विकास क्रम मे किसी वर्गक (Taxa) का जीवन चक्र तथा वितरण क्षेत्र मुख्यत: जलवायवीय कारको द्वारा नियत्रित होता है । प्रत्येक जाति जलवायु सम्बन्धी कारको की एक निश्चित सीमा मे ही अपना अस्तित्व बनाए रख सकती है और सफलता पूर्वक प्रजनन कर सकती है ।* किसी भी प्रदेश मे इन कारको के माध्य की अपेक्षा उनकी उत्कट सीमाओं का अधिक महत्व होता है । कुछ जातियाँ अपनी दीप्ति कालिता (Photo periodism) तथा ताप कालिता (thermoperiodism) के प्रति एकदम निश्चित होती है । आवश्यक ताप व प्रकाश के अभाव मे इनका पुष्पन तथा फलन प्रभावित होता है हालाकि इन परिस्थितियो मे वह अच्छी कायिकी वृद्धि तो कर सकती है । इसके अतिरिक्त भी पौधो की अनेक कार्यिकी क्रियाए प्रभावित होती है ।
4. **जैविक बल (Biotic forces):** कई तरह के जैविक बल भी प्रवासित डायस्पोर के अकुरण, आस्थापन आदि मे बाधक का कार्य करते है । कई प्राकृतिक समुदाय जैसे वन आदि इतने सघन होते है कि नवागन्तुक प्रवासित प्रजातियो या जातियो को अपने क्षेत्र मे अकुरित, आस्थापन, वृद्धि तथा प्रजनन नही करने देती है । सहभोजियो के अभाव मे भी वितरण प्रवाहित होता हैं । सुगधित (Aromotic) पत्तियो के अपघटन से भी ऐसे रसायन निकलते है जो बहुत से पादपो की वृद्धि को प्रभावित करते है । एण्टीबायोसीस मुख्यत· सूक्ष्म जीवों के लिए प्रयुक्त किया जाता है – जैसे कवक पेनिसिलियम द्वारा स्रावित एण्टी बायोसिस बहुत से जीवाणुओं की वृद्धि को रोकता है । वास्त्व मे विश्व स्तर पर प्रवास के बल, पादपो का विकास तथा बाधक तत्वो के मध्य एक सतत अन्योनक्रिया चलती रहती है ।

खण्ड (स) जैव सांख्यिकी (Bio-Statistics)

अध्याय : 12

सांख्यिकी : अर्थ, उद्धेश्य, कार्य क्षेत्र व जैवसांख्यिकी

(Statistics : Meaning, Object, Scope & Biostatistics)

परिचय : आधुनिक युग मे मानव के बहुमुखी विकास मे सख्याओं का महत्व सर्वोपरि रहा है चाहे विकास राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक या वैज्ञानिक किसी भी क्षेत्र का हो। आज के युग मे मानव हर क्षेत्र मे अधिकतर सख्याओं के रूप मे ज्ञान अर्जित करता है। क्योंकि हर बात स्मरण रखना मानव शक्ति से परे है चाहे वह कितनी ही तीव्र बुद्धि वाला क्यो न हो। इस कठिनाई का निराकरण मानव ने सख्याओं द्वारा किया और विकास के प्रत्येक क्षेत्र मे इनका सम्पूर्ण प्रयोग किया जिससे मानव ज्ञान के विकास व समस्याओं का विश्लेषण समाधान एवम् समन्वय होता रहे। इन्ही सख्यात्मक रीतियो की सहायता से ही मानव अनेक विवेकपूर्ण निर्णय लेता है। सख्याओं के आधार पर ज्ञान को स्पष्ट एव निश्चयात्मक रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

अकात्मक सूचना के अभाव मे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अनुसधान और आर्थिक नियोजन की कल्पना भी असभव है। मानव की अतरिक्ष यात्राएँ व अपोलो 11 के द्वारा चन्द्र विजय निसदेह बीसवी शताब्दी की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियाँ है जो कि साख्यिकी की गणना (Statistical Calculations) पर ही आधारित थी।

विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत समको (Data) का सग्रहण, सगठन, निर्वचन, वैज्ञानिक विश्लेषण व तर्कपूर्ण निष्कर्ष निकाले जाते है को साख्यिकी विज्ञान कहते है। साख्यिकी मे प्रयुक्त की जाने वाली सख्याओं को साख्यिकीय सामग्री या समक (Statistical Data) कहते हैं।

परिभाषाएँ : 'Statistics' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1749 ई० मे जर्मन विद्वान एकनवॉल ने किया या और उन्हे आधुनिक साख्यिकी का जन्मदाता (Father of Modern Statistics) कहा जाता है।

एकनवॉल ने साख्यिकी को एक अक समूह मानते हुए कहा कि " समक किसी भी राज्य से सम्बन्धित ऐतिहासिक एवम् वर्णानात्मक महत्वपूर्ण तथ्यो का सकलन है"।

डॉ बाउले ने साख्यिकी की तीन परिभाषाएँ दी -

(1) साख्यिकी, सामाजिक व्यवस्था को सम्पूर्ण मानकर सभी स्वरूपो मे उसका माप करने का विज्ञान है। यह परिभाषा दोषपूर्ण है क्योकि यह साख्यिकी का क्षेत्र मनुष्य तथा उसकी सामाजिक क्रियाओं तक ही सीमित करती है। इसमे साख्यिकी की केवल एक रीति मापन का ही उल्लेख किया गया है।

(2) " साख्यिकी गणना का विज्ञान है।" इस परिभाषा मे केवल गणना रीति पर ही बल दिया गया है। आगणन साख्यिकी की एक महत्वपूर्ण रीति

है परन्तु इनका प्रयोग छोटी सख्याओं के सकलन मे ही किया जा सकता है। साख्यिकी मे बडी सख्याओं का काफी प्रयोग होता है जिनकी गणना करना असभव है।

(3) 'साख्यिकी को उचित रूप मे माध्यो का विज्ञान कहा जा सकता है।'यह सत्य है कि साख्यिकी मे माध्यो का अत्यधिक महत्व है परन्तु माध्यो के अतिरिक्त कई अन्य तरीको से जैसे कि रेखाचित्रो और आरेखो के द्वारा भी तथ्यो का प्रदर्शन व तुलना की जाती है।

बॉडिंगटन के मतानुसार "साख्यिकी अनुमानो व सम्भाविताओं का विज्ञान है।"

किंग के अनुसार " साख्यिकी एकैक गणित या सकलित आगणनो के विवेचन के परिणाम से प्राप्त सामूहिक, प्राकृतिक अथवा सामाजिक गोचर घटनाओं पर निर्णय देने की रीति का विज्ञान है। " इसका अर्थ यह है कि संग्रह किये गये तथ्यो से जो भी निष्कर्ष निकाला जाता है उसकी सत्यता अथवा शुद्धता का निर्णय किस प्रकार किया जाय, इसका हल बतलाती है।

सेलिगममैन के शब्दो मे "साख्यिकी जाँच के किसी क्षेत्र पर प्रकाश डालने हेतु एकत्रित किये गये सख्यात्मक तथ्यो के सकलन, वर्गीकरण, प्रस्तुतिकरण, तुलनात्मक अध्ययन तथा विवेचन सम्बन्धी रीतियो से सम्बन्धित विज्ञान है। "

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि साख्यिकी की परिभाषा के प्रश्न पर काफी मतभेद है। विभिन्न विद्वानो ने साख्यिकी के विभिन्न पहलुओ पर पृथक पृथक जोर देते हुए भिन्न भिन्न परिभाषाएँ दी है। अतः आधुनिक विचारधारा के अनुसार *"साख्यिकी उन रीतियो का समूह है जिनके द्वारा अनिश्चितता के वातावरण मे विवेकपूर्ण निर्णय लिए जाते है।"* यह परिभाषा सक्षिप्त एवम् सारगर्भित है फिर भी इसमे विभिन्न रीतियो और उन रीतियो का प्रयोग किस विशेष सामग्री पर ही होता है, इस बात का उल्लेख नही है। इस प्रकार बहुत सक्षिप्त न होने पर भी साख्यिकी की परिभाषा निम्न शब्दो मे दी जा सकती है -

साख्यिकी वह विज्ञान है जिसमे किसी अनुसधान क्षेत्र से सम्बन्धित समको के सग्रहण वर्गीकरण, प्रस्तुतिकरण, विश्लेषण, पूर्वानुमानो और निर्वचन की रीतियो से विवेकपूर्ण निर्णय लिए जाते है व उनका विधिवत् अध्ययन किया जाता है।

जैव साख्यिकी (Bio-Statistics) :- जैव साख्यिकी, साख्यिकी की वह शाखा है जिसमे जैविक प्राणियो से सम्बन्धित समको के सकलन, गणना,विश्लेषण आदि का विधिवत् अध्ययन किया जाता है।

प्राकृतिक विज्ञानो मे भी साख्यिकीय विधियाँ बहुत उपयोगी होती है। भौतिकी और रसायन शास्त्र मे प्रयोग के परिणामो का विश्लेषण करने तथा उनसे समुचित नतीजे निकालने मे साख्यिकी नितान्त आवश्यक है। जीव विज्ञान मे आनुवाशिकी द्वारा हस्तातरित गुणो का विश्लेषण सहसम्बन्ध, प्रतीप गमन आदि साख्यिकीय रीतियो के आधार पर किया जाता है। जैव साख्यिकी का सर्वप्रथम सफलतम प्रयोग सुप्रसिद्ध आनुवाशिकी वैज्ञानिक मेण्डल

ने मटर के पौधो के साथ प्रयोगो पर आधारित आनुवाशिकी नियमो को प्रतिपादित करने मे किया। *साख्यिकी की विभिन्न विधियो द्वारा कृषि जीवविज्ञान, कृषि अर्थशास्त्र, पारिस्थितिकी* विज्ञान व अन्य सम्बन्धित विषयो पर किये जाने वाले प्रयोगो की रूपरेखा तथा उपलब्ध परिणामो से उचित निष्कर्ष निकाले जाते है, इसी कारण जीवविज्ञान का ज्ञान भी साख्यिकी ज्ञान के बिना अपूर्ण सा माना जा सकता है।

सांख्यिकी का उद्देश्य व कार्य (*Objects & Functions Of Statistics*) :

साख्यिकी का प्रमुख उद्देश्य तथ्यो और अको से उचित निष्कर्ष निकालना, अज्ञात की खोज करना और समस्याओं पर प्रकाश डालना है। इसी उद्देश्य हेतु समको (Data) को सकलित (Collect) कर तुलना की जाती है, निष्कर्ष निकाले जाते है, और कुछ करने के लिए सिफारिश की जाती है। बॉडिगटन के अनुसार " साख्यिकीय अन्वेषण का प्रमुख उद्देश्य भूतकालीन और वर्तमान तथ्यो की तुलना करके यह ज्ञात करना है कि जो परिवर्तन हुए है उनके क्या कारण रहे है और उनके क्या परिणाम भविष्य मे हो सकते है।"साख्यिकीय रीतियो के प्रयोग द्वारा ही किसी समस्या से सम्बन्धित भूतकालीन समक एकत्रित किये जा सकते है और वर्तमान प्रवृतियो से उनकी यथोचित तुलना की जा सकती है। इनके द्वारा घटनाओं मे होने वाले परिवर्तनो के कारणो और उनके प्रभावो का विवेचन किया जा सकता है। साख्यिकी के उद्देश्य तथा कार्यों को हम निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट कर सकते है -

(1) **तथ्यों को एक निश्चित संख्या के रूप में प्रस्तुत करना :** मौखिक रूप मे प्रकट किये गये तथ्यो के स्थान पर अको के रूप मे वर्णित तथ्य अधिक शुद्ध सूचना देते है। उदाहरण के तौर पर यदि कहा जाए कि गत वर्ष चित्तौडगढ मे फसल की पैदावार बहुत हुई और उसमे गेहूँ की पैदावार बहुत अच्छी हुई तो इससे कोई बात स्पष्ट नही होती है परन्तु यदि यह कहा जाय कि गत वर्ष फसल की पैदावार 100 हजार टन हुई और उसमे से गेहूँ का उत्पादन 30 हजार टन हुआ तो इससे स्थिति स्पष्ट होती है और उसका वास्तविक प्रभाव पड़ता है।

(2) **जटिल अक समूह को सरल तथा सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना :** सग्रह किये हुए अक प्रारभ मे अव्यवस्थित रूप मे होते है और एक दूसरे से सम्बन्धित अक एक स्थान पर नही होते अतः उनसे कोई परिणाम नही निकाला जा सकता और न ही उन्हे ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। जैसे कि एक बगीचे मे 2000 पुष्पी पादप है और प्रत्येक पौधे की आयु, लम्बाई और उन पर पाये जाने वाले पुष्पो की सख्या दर्ज की जाय तो इतनी लम्बी सूची से कोई भी निष्कर्ष निकालना सभव नही है। साख्यिकी का कार्य इन पादपो मे आयु, लम्बाई व पुष्पो की सख्या के कुछ वर्ग बनाकर उसे अधिक समझने योग्य बना देना है। इन्हे सारणियों, रेखाचित्रो या चित्रो के द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

(3) **तथ्यों की तुलना करना :-** *यथार्थ रूप मे रखे गये तथ्यो का तब तक कोई महत्व* नही होता जब तक कि उनकी तुलना दूसरे तथ्यो से नही की जाय। यदि केवल

यह कहा जाय कि भारत प्रतिवर्ष 6 लाख टन मूँगफली का उत्पादन करता है तो कुछ व्यक्ति सोच सकते है कि भारत बहुत कम मूँगफली का उत्पादन करता है और कुछ का विचार यह हो सकता है कि यह उत्पादन बहुत काफी है। जब तक दूसरे देशो के मूँगफली उत्पादन के अक नही दिये जाएँ और भारत की आवश्यकता नही बतायी जाए तब तक यह निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है कि उत्पादन कम है या अधिक। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही साख्यिकी, तुलना के तरीके बतलाती है। बहुत से तथ्य ऐसे होते हैं कि उन्हे तुलनात्मक रूप मे प्रस्तुत करना अनिवार्य है जैसे मूल्य, उत्पादन के सूचक अक आदि।

(4) **सह सम्बन्ध (Correlation) बतलाना :** साख्यिकीय रीतियो द्वारा यह जानकारी मिल जाती है कि दो या उससे अधिक प्रकार के तथ्यो मे पारस्परिक सम्बन्ध है या नही और यदि है तो कितना। उदाहरणतः अमुक खरपतवार नाशक दवा की इतनी मात्रा मे प्रयोग से फसली पादपो पर अमुक प्रभाव पडता है और खरपतवार समाप्त हो जाती है। इनका ज्ञान सहसम्बन्ध गुणाक द्वारा हो जाता है।

(5) **प्रतीपगमन (Regression) :** साख्यिकी मे प्रतीपगमन के सिद्धात को प्रतिपादित करने का श्रेय सर फ्रासिस गाल्टन को है जिन्होंने अपने शोध लेख "Regression Towards Mediocrity In Hereditary Stature" मे स्पष्ट किया कि सामान्यतः व्यक्तिगत ऊँचाईयो का झुकाव औसत ऊँचाई की ओर होता है। प्रतीगमन विश्लेषण द्वारा एक चर मूल्य (स्वतन्त्र चर मूल्य) का ज्ञान होने पर दूसरे चर मूल्य (आश्रित) का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

(6) **नीति निर्धारण में सहायता करना :** वर्तमान युग मे उत्पादक तथा विक्रेता का कार्य पहले से कठिन हो गया है क्योंकि एक ओर तो उपभोक्ताओ की आवश्यकताओं मे तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है, दूसरी ओर व्यवसायिक क्षेत्र मे प्रतिस्पर्धा मे निरतर वृद्धि ही रही है। अतः उत्पादक, व्यवसायी और सरकार के विभिन्न वस्तुओं की माँग और पूर्ति सम्बन्धी अको की जानकारी रखनी पड़ती है ताकि उनमे समन्वय स्थापित किया जा सके और विभिन्न वस्तुओ के उत्पादन अथवा उपयोग पर कर की व्यवस्था भी उचित रूप से की जा सके। अतः समक तथा साख्यिकीय उपकरण, उद्योग, व्यापार एवम् प्रशासन को विविध क्षेत्रो मे नीति निर्धारण सम्बन्धी सहायता प्रदान करते हैं।

(7) **अन्य विज्ञानो के नियमों की सत्यता का प्रमाण प्रस्तुत करना :** अनेक तथ्य ऐसे होते है जिन्हे हम निगमन रीति (Deductive Method) से ही मालूम कर लेते है परन्तु तर्क के इस युग मे बहुधा उन्हे तथ्यो द्वारा सिद्ध करना पडता है। जैसे कि अर्थशास्त्र का यह नियम है कि प्रत्येक कुशल व्यापारी सस्ते दाम मे वस्तुएँ खरीदकर उन्हे मँहगे भाव मे बेचता है, सामान्यत मान्य है परन्तु इसे सिद्ध करने के लिए समको की मदद ली जा सकती है। अतः साख्यिकी के द्वारा दूसरे शास्त्रो के नियमो की सहायता व्यावहारिक तथ्यो द्वारा सिद्ध की जा सकती है।

(8) **समस्या की गहनता का अध्ययन करना :** यदि किसी देश के लिए यह कहा जाए कि वहाँ अनाज की कमी है तो इसका कोई, स्पष्ट अर्थ नही निकलता क्योंकि कमी 2% भी हो सकती है और 20 प्रतिशत भी दोनो मे अत्यधिक अन्तर है। अतः वास्तविक समको की जानकारी करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्न की 20 प्रतिशत कमी है तो देश की अर्थव्यवस्था के लिए गम्भीर चेतावनी है जबकि 2% की कमी चिन्ताजनक नही है। इस प्रकार समको द्वारा ही समस्या की गम्भीरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

(9) **पूर्वानुमान लगाना :** साख्यिकीय आगणना अथवा विधियाँ वर्तमान तथा विगत कुछ वर्षों के तथ्यो के आधार पर भविष्य सम्बन्धी अनुमान लगाने मे बहुत सहायता करती है। जनसख्या, आय तथा वर्षा सम्बन्धी अनुमान बाह्य गणना (Extra-polation) द्वारा प्राप्त किये जाते है। इन अनुमानो से आयोजन बहुत सुविधाजनक हो जाता है।

सांख्यिकी का क्षेत्र (Scope Of Statistics) :

साख्यिकी के क्षेत्र को दो भागो मे बाँटा जा सकता है :-

(1) साख्यिकीय रीतियाँ (Statistical Methods)

(2) व्यावहारिक साख्यिकी (Applied Statistics)

– **(1) सांख्यिकीय रीतियाँ (*Statistical Methods*):-** *साख्यिकी सख्यात्मक तथ्यो का प्रयोग करती है और तथ्यो का एकत्रीकरण अनुमान तथा उनसे निष्कर्ष निकालने का* कार्य सरल नही है। प्रारम्भ मे तथ्यो को सग्रह किया जाता है तथा उन्हे सुव्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत करना पड़ता है ताकि उनकी आपस मे तुलना की जा सके और वह सरलता से समझ मे आ सके। अतः साख्यिकीय रीतियाँ वह है : - जिनकी सहायता से अक सग्रहण, वर्गीकरण तथा सारणीयन करके उनकी तुलना की जा सके और शुद्ध परिणाम निकाले जा सके।

साख्यिकीय रीतियो को निम्नलिखित भागो मे बाँटा जा सकता है .-

(i) **अंक संग्रहण (Data Collection) :-** इनके अन्तर्गत उन नियमो का प्रयोग आता है जो अको के सग्रहण से सम्बन्धित है।

(ii) **प्रबन्ध (Organisation) :-** *जब अको का सग्रहण पूर्ण हो जाता है तो उन्हे सुव्यवस्थित करना आवश्यक हो जाता है व इसके लिए निम्न प्रक्रियाएँ प्रयुक्तकी जाती है*

(A) **वर्गीकरण** (Classification) :- वर्गीकरण की दो रीतियाँ है :-

(i) गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification)

(ii) सख्यात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification)

(i) **गुणात्मक वर्गीकरण :-** *जब वर्गीकरण गुणो के आधार पर किया जाता है तो उसे* गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification) कहते है। यह वर्गीकरण निम्न दो प्रकार का होता है :-

(a) **द्वन्द्वभाजन वर्गीकरण** (**Dichotomy or Twofold Classification**) जब तथ्यो को एक गुण की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर दो वर्गों मे बाँटा जाता है तो ऐसे वर्ग विभाजन को द्वन्द्व भाजन वर्गीकरण कहते है ।

(b) **बहुगुण वर्गीकरण** (**Manifold Classification**) जब तथ्यो को दो या दो से अधिक गुणो के आधार पर विभाजित किया जाता है तो उसे बहुगुण वर्गीकरण कहते है ।

(ii) **संख्यात्मक वर्गीकरण** :- अको को विभिन्न वर्गों मे बाँट लिया जाता है ये वर्ग आयु, भार क्षेत्र आमदनी अथवा अन्य विशेषताओ से सम्बन्धित होते हैं। समानधर्मी अक एक ही वर्ग मे सम्मिलित किये जाते हैं ।

(B) **संक्षिप्तिकरण** (**Summary**) :- वास्तव मे अको का सक्षिप्तिकरण भी प्रबन्ध की ही एक प्रक्रिया मानी जा सकती है । अनेक अक बहुत बड़े और याद रखने मे कठिनाई उत्पन्न करने वाले होते हैं। इन्हे सरल बनाने के लिए उनको हजारो,लाखो या करोड़ो मे सक्षिप्त कर दिया जाता है ।

(C) **प्रस्तुतीकरण** (**Presentation**) :- विविध वर्गों मे वर्गीकृत करने के पश्चात् प्रत्येक वर्ग से सम्बन्धित अको को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि वह अलग होते हुए भी परस्पर सम्बन्धित दिखलाई पड़े ।

(iii) **विश्लेषण** (**Analysis**): - समको का वर्गीकरण एवम् सारणीयन करने के बाद उनका विश्लेषण करना आवश्यक होता है । विश्लेषण करने मे प्रायः विभिन्न प्रकार के माध्यो, अपकिरण के मापो, विषमता के मापो, सहसम्बन्ध, सूचकाक आदि का प्रयोग किया जाता है ।

(iv) **निर्वचन** (**Interpretation**) :- व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत अको से निष्कर्ष पर पहुँचा जाताहै । उदाहरणतः खाद्यान्न सम्बन्धी (उत्पादन, उपभोग, आयात -निर्यात आदि) अंको से यह अनुमान लगाया जाय कि देश मे अन्न की कमी है या अधिकता ।

(v) **पूर्वानुमान** (**Forecasting**) :- कई वर्षों के अको के आधार पर भविष्य के लिए अनुमान लगाए जाते है ।

(2) **व्यावहारिक साख्यिकी** (**Applied Statistics**)·- साख्यिकीय रीतियो का प्रयोग आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक अथवा अन्य क्षेत्रो मे जिस प्रकार किया जाता है वह प्रक्रिया व्यावहारिक साख्यिकी कहलाती है । व्यावहारिक साख्यिकी को भी दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है ,-

(i) वर्णनात्मक व्यावहारिक साख्यिकी (Descriptive Applied Statistics)

(ii) वैज्ञानिक व्यावहारिक साख्यिकी (Scientific Applied Statistics)

वर्णनात्मक व्यावहारिक साख्यिकी के अन्तर्गत किसी क्षेत्र मे सकलित तथ्यो का अध्ययन किया जाता है जिनका उद्देश्य विवरणात्मक सूचना प्रदान करना होता है ।

वैज्ञानिक व्यावहारिक साख्यिकी के अतर्गत समको को एकत्रित कर उनका अध्ययन कुछ वैज्ञानिक नियमो के प्रतिपादन या पुष्टीकरण के लिए किया जाता है ।

सांख्यिकी की प्रकृति (Nature of Statistics) :- सा ख्यिकी की दो हरी प्रकृ (Dual Nature) है क्योकि इसमे विज्ञान व कला दोनो के ही गुण विद्यमान है। विज्ञान, ज्ञान की उस शाखा को कहते है जिसमे निम्नलिखित लक्षण होते है :-

(1) विज्ञान ज्ञान का क्रमबद्ध समूह है।

(2) वह कारण और परिणाम के सम्बन्धो का विश्लेषण करता है।

(3) उसकी विधियाँ तथा नियम सार्वभौमिक होते है।

(4) उसमे पूर्वानुमान की क्षमता होती है।

उपरोक्त सभी लक्षण साख्यिकी मे भी पाये जाते है अतः साख्यिकी को विज्ञान कहना सर्वथा उचित है।

वैज्ञानिक विधि के चार पद होते है :-

(1) अवलोकन (Observation)

(2) परिकल्पना (Hypothesis)

(3) पूर्वानुमान (Prediction)

(4) परीक्षण (Verification)

इन चारो पदो मे साख्यिकीय विधियो व प्रक्रियाओं का पर्याप्त प्रयोग होता है।

विज्ञान यदि ज्ञान है तो कला क्रिया है। 'कला' के निम्न लक्षण होते है :-

(1) कला उन क्रियाओं का समूह है। जिनके द्वारा किसी समस्या का हल किया जाता है।

(2) कला तथ्यो का वर्णन ही नही करती है वरन् लक्ष्यो को प्राप्त करने के उपाय भी बतलाती है।

(3) कला की साधना मे विशेष चतुराई, अनुभव तथा आत्म-सयम् की आवश्यकता होती है।

साख्यिकी मे इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न समस्याओं का समाधान करने मे साख्यिकीय रीतियो और नियमो का किस प्रकार प्रयोग किया जाय। इन रीतियो का उचित प्रयोग करने के लिए विशेष योग्यता तथा आत्मसयम की आवश्यकता होती है। अन्यथा भ्रमात्मक और पक्षपात पूर्ण निष्कर्ष निकलते है। अतः साख्यिकी कला भी है।

टिप्पेट के शब्दो मे "साख्यिकी विज्ञान तथा कला दोनो है"। यह विज्ञान है क्योकि इसकी रीतियाँ मौलिक रूप मे व्यवस्थित है और उनका सर्वत्र प्रयोग होता है, और यह एक कला है, क्योंकि इसकी रीतियो का सफल प्रयोग पर्याप्त सीमा तक साख्यिकी की योग्यता व विशेष अनुभव तथा उसके प्रयोग क्षेत्र पर निर्भर होता है।

समंकों की विशेषताएँ (Characteristics of Statistics) समको की विशेषताएँ निम्नानुसार है :-

(1) **संख्याओ के रूप में प्रस्तुत (Expressed In Numbers):-** तथ्यो का प्रत्यक्ष रूप मे अको मे वर्णन करने पर ही उन्हे साख्यिकी के क्षेत्र मे माना जाता है। जैसे कि वर्ष 1990 मे खाद्यान्न की उपज 1200 लाख टन हुई जबकि 1980 मे 1120 लाख टन ही हुई थी।

(2) **व्यवस्थित संकलन (Planned Collection of Data) :-** समको को एक निश्चित योजनानुसार सुव्यवस्थित तरीके व विधि द्वारा एकत्रित किया जाना चाहिए। जैसे विभिन्न फसलो मे उगने वाली अलग अलग प्रजातियो की उपज से सम्बन्धित समक एकत्र करके औसत उपज ज्ञात की जा सकती है और उनकी आपस मे तुलना की जा सकती है और सर्वाधिक उपज देने वाली प्रजाति को किसी विशेष क्षेत्र मे उगाने के लिए अनुशसा (Recommend) की जा सकती है।

(3) **तथ्यों का समूह (Aggregates of Facts) :-** एक अकेला अक अथवा तथ्य भी समक नही माना जा सकता। व्यवस्थित अको के समूह को समक कहते है जैसे अनेक प्रजातियो की उपज सम्बन्धित तथ्य समक कहलाते हैं।

(4) **गणना या अनुमान (Enumerated or estimated)** आकड़ो का सकलन गणना व अनुमान द्वारा किया जा सकता है। सीमित क्षेत्र मे गणना विधि से शुद्ध तथ्य प्राप्त होते हैं जैसे कि अनुसधान क्षेत्र मे और विस्तृत क्षेत्र मे अधिकाशतः अनुमान विधि का प्रयोग किया जाता है।

(5) **यथोचित शुद्धता (Reasonable Standard Of Accuracy) :-** प्रत्येक जाच मे परिशुद्धता अलग अलग स्तर की हो सकती है किन्तु समको के सकलन मे शुद्धता की यथोचित मात्रा आवश्यक रूप से होनी चाहिए।

(6) ***पूर्व निश्चित उद्देश्य (Predetermined Purpose) :-*** *आंकड़े एकत्र करने से पहले उसका उद्देश्य निश्चित व सुस्पष्ट होना चाहिए अन्यथा बहुत अनावश्यक तथ्यो का संग्रहण हो सकता है अथवा कुछ आवश्यक तथ्य संग्रह होने से छूट सकते हैं।*

(7) **एक दूसरे से सम्बन्धित (Placed In Relation To Each Other) :-** समको का प्रस्तुतिकरण इस प्रकार होना चाहिए कि उनकी परस्पर तुलना की जा सके जैसे कि एक क्यारी मे पौधो की ऊँचाई व पुष्पो की सख्या तुलनात्मक नही है। समान वस्तुओं की तुलना समान वस्तुओं से ही की जा सकती है। अतः तुलना करने के लिए समक सजातीय (Homogenous) होने चाहिए जैसे कि दो क्यारियो के पौधो की ऊँचाई या पौधो की सख्या आदि।

(8) **अनेक कारणों से प्रभावित (Affected By Multiple Causes) :-** अधिकाशतः अकिक तथ्यो पर कई कारणो का प्रभाव एक साथ पडता है। उदाहरणार्थ कृषि उत्पादन पर जलवायु, मौसम, वर्षा, सिचाई खाद बीज और कृषि प्रक्रियाओं आदि सभी कारको का प्रभाव एक साथ होता है और समक प्रभावित होते है जैसे कि 1980 मे भारत मे चीनी का उत्पादन 52 लाख टन हुआ जबकि 1978 मे 35 लाख टन ही, यह किसी एक कारण से ही नही हुआ वरन् कई कारणो का एक साथ प्रभाव पड़ा होगा। वर्षा अच्छी हुई होगी, बीज अच्छा प्रयुक्त किया होगा, खाद की समुचित मात्रा का प्रयोग किया गया होगा आदि।

सांख्यिकी की सीमाएँ (Limitations of Statistics) :

यद्यपि प्रत्येक वैज्ञानिक अध्ययन व अनुसंधान मे सांख्यिकी का उपयोग नितात आवश्यक है परन्तु इसका कार्यक्षेत्र कुछ सीमाओं मे बधा हुआ है, जिनका अतिक्रमण नही किया जा सकता है।

(i) सांख्यिकी विधियाँ उन्ही समको पर प्रयोग मे लाई जा सकती हैं जिन्हे सख्याओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है अर्थात् इनका गुणात्मक तथ्यों पर उपयोग नही किया जा सकता।

(ii) यह समूह से सम्बन्धित है, इकाई से नही।

(iii) सांख्यिकीय निष्कर्ष सन्निकट है, यथार्थ नही है, अर्थात् ये औसत रूप से ही सत्य होते हैं।

(iv) *सख्याओं का गलत प्रयोग करके भ्रमात्मक निष्कर्ष निकल आते हैं।*

(v) इसका आसानी से गलत उपयोग किया जा सकता है।

(vi) *सांख्यिकीय तथ्यो का सजातीय होना आवश्यक है।*

(vii) सांख्यिकी साधन प्रस्तुत करती है, समाधान नही।

(viii) सांख्यिकी निष्कर्ष सदैव सदेह से परे नही होते।

(ix) सांख्यिकी समस्याओं एवम् सम्बन्धो के सभी पहलुओं पर प्रकाश नहीं डालती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) सांख्यिकी किसे कहते हैं ? इसकी सीमाओं का विवेचन कीजिए।

(2) सांख्यिकी की परिभाषा दीजिए और सांख्यिकी की सहायता के महत्व को समझाइए।

(3) *अपने स्वय की सरल भाषा मे सांख्यिकी की परिभाषा दीजिए और उसकी परिसीमाएँ बताईए।*

(4) सांख्यिकी विज्ञान के क्षेत्र एवम् परिसीमाओं की विवेचना करिए।

(5) निम्नलिखित का वर्णन कीजिए।

  (a) सांख्यिकी के कार्य तथा महत्व।

  (b) *सांख्यिकी की परिसीमाएँ।*

(6) *विभिन्न क्षेत्रो की समस्याओं की व्यवाहारिक आवश्यकताओं से सांख्यिकी का उदय हुआ और ऐसी समस्याओं के विश्लेषण मे ही इसका उपयोग* निहित है। उचित उदाहरण देते हुए विवेचना करिए।

(7) निम्न पर टिप्पणियाँ लिखिए :

(i) सांख्यिकी रीतियाँ। (ii) सांख्यिकी की प्रकृति।

(iii) व्यावहारिक सांख्यिकी। (iv) समको की विशेषताएँ।

(v) सांख्यिकी के उद्देश्य।

अध्याय : 13

केन्द्रीय प्रवृति के माप

(Measures of Central Tendency)

मानव मस्तिष्क मे जटिल समको को पूर्ण रूपेण समझने तथा उनकी तुलना करने का सामर्थ्य नही है। वर्गीकरण व सारणीबद्ध करके आकड़ो के विशाल परिमाण को सक्षिप्त करके आवृति बटन के रूप मे व्यक्त किया जाता है जिससे वे सरल और बुद्धिगम्य हो सके। परन्तु ये विधियाँ साख्यिकीय विश्लेषण की केवल प्रारम्भिक अवस्थाएँ है जिनसे समकमाला की समस्त विशेषताएँ परिलक्षित नही होती है। "सख्यात्मक तथ्यो के विशाल समूह को पूर्ण रूप से समझने की मानव मस्तिष्क मे अन्तर्निहीत असमर्थता, हमे ऐसे अपेक्षाकृत सक्षिप्त स्थिर माप उपलब्ध करने को विवश करती है जो समको की पर्याप्त रूप से व्याख्या कर सके (रोनाल्ड फिशर)" । समको के लक्षणो के कम से कम अको मे साराश रूप मे प्रकट करने हेतु साख्यिकी के केन्द्रीय प्रवृति के माप (Measures of Central Tendency) या साख्यिकीय माध्यो (Statistical Averages) का परिकलन (computation) किया जाता है।

केन्द्रीय प्रवृति का अर्थ

(Meaning of Central Tendency)

प्रत्येक समक माला मे एक ऐसा बिन्दु होता है जिसके आस पास अन्य समको के केन्द्रित होने की प्रवृति पाई जाती है। यह मूल्य समक श्रेणी के लगभग केन्द्र मे स्थित होता है। और उस श्रेणी के महत्वपूर्ण लक्षणो का प्रतिनिधित्व करता है।

साख्यिकी मे ऐसी सख्याएँ जो सम्पूर्ण समक श्रेणी की प्रवृत्ति को सरल व साराश रूप मे दर्शाती है एवम् जिनके इर्द गिर्द श्रेणी के अधिकाश पद एकत्र होते है केन्द्रीय प्रवृति के माप या माध्य (Averages) कहलाते है।

क्रक्सटेन व काउडेन के मतानुसार "माध्य, समको के विस्तार के अन्तर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग श्रेणी के सभी मूल्यो का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है। समक माला के विस्तार के मध्य स्थित होने के कारण "माध्य" को केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप भी कहा जाता है।"

साख्यिकी मे माध्यो का मूलभूत महत्व है। वस्तुत: साख्यिकीय विश्लेषण की अन्य बहुत सी रीतियाँ, माध्यो पर ही आधारित है। इसी कारण डॉ० बाउले ने साख्यिकी को "माध्यो का विज्ञान" (Science of Averages) कहा है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापों के उद्देश्य व कार्य

(Objects and functions of Measures of Central Tendency)

(i) **संक्षिप्त चित्र प्रस्तुतीकरण (To present Brief picture)**-- माध्यो द्वारा जटिल और अव्यवस्थित समको की मुख्य विशेषताओ का सरल, स्पष्ट व सक्षिप्त

चित्र प्रस्तुत किया जाता है ताकि उन्हे समझने और याद रखने मे कोई दिक्कत न हो। जैसे कि किसी एक बगीचे मे पिटुनिया के सौ पादपो पर पाये जाने वाले पुष्पो की सख्या को अलग-अलग याद रखना सभव नही है किन्तु उनके औसत प्रति पादप पुष्पो की सख्या सुगमता से समझी व याद रखी जा सकती है।

(2) **तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा प्रदान करना (To facilitate comparative study)**-- माध्यो की सहायता से दो या अधिक समूहो की तुलना सरलता से की जा सकती है। जैसे कि दो कृषको की कृषि उपज की तुलना या दो प्रदेशो (असम व बगाल) मे चाय उत्पादन की तुलना की जा सकती है।

(3) **सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करना (To represent the entire group)**-- माध्यो की सहायता से ही प्रतिदर्श (sample) के अध्ययन के आधार पर समग्र या समूह के बारे मे निष्कर्ष निकाले जा सकते है।

(4) **सांख्यिकी विश्लेषण का आधार (Basis of statistical Analysis)**-- माध्य ही साख्यिकी विश्लेषण का आधार है।

(5) **पथप्रदर्शन करना (To Guide Policy formulation)**-- साख्यिकी माध्यो से ऐसे मूल्य मालूम होते है जो भावी योजनाओं, क्रियाओं और नीति निर्धारित करने मे उचित मार्ग दर्शन करते है।

आदर्श माध्य की प्रमुख विशेषताऐं
(Main Characteristics of Ideal Average)

युल व केण्डाल के मतानुसार एक आदर्श माध्य मे निम्न विशेषताऐं होनी चाहिए।

(i) **स्पष्ट व स्थिर परिभाषा (clearly and rigidly defined)**-- आदर्श माध्य स्पष्ट, स्थिर व निश्चित होना चाहिए।

(ii) **सभी मूल्यों पर आधारित (Based on all observations)**-- एक आदर्श माध्य समक श्रेणी के सभी पदो पर आधारित होना चाहिए। अन्यथा वह पूरे समूह की प्रमुख विशेषताओं का सक्षिप्त चित्रण नही कर सकेगा।

(iii) **सरल व बुद्धिगम्य (easy & intelligible)**-- आदर्श माध्य सरल व स्पष्ट गुणो वाला होना चाहिए जिससे उनकी प्रकृति सुगमता से समझी जा सके। आदर्श माध्य अत्यधिक गणित निष्ठ (highly mathematical) नही होना चाहिए।

(iv) **निर्धारण की सरलता (easy to determine)** आदर्श माध्य की गणन क्रिया सरल होनी चाहिए।

(v) **प्रतिचयन के परिवर्तनों का न्यूनतम प्रभाव (least effect of fluctuations of sampling)** यदि एक ही समग्र मे से विभिन्न प्रतिदर्श (sample) चुनकर माध्य निकाले जाए तो उन माध्यो मे अधिक अन्तर नही होने चाहिए। वरन् उनमें लगभग समानता होनी चाहिए।

(vi) **बीजगणितीय विवेचन (Algebraic Treatment)**-- एक आदर्श माध्य मे कुछ ऐसी गणितीय विशेषताऐं होनी चाहिए कि जिनसे उनका बीज गणितीय (algebraic) विवेचन सरलता से किया जा सके।

सांख्यिकीय माध्यों के प्रकार (Types of statistical Averages)

माध्य तीन प्रकार के होते है

(i) **गणितीय माध्य (Mathematical Mean)**-- इनकी परिभाषा पूर्णतया गणित पर आधारित होती है । ये निम्न प्रकार के होते है–

(1) समान्तर माध्य या मध्यक (Arithmatic Mean)

(2) गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)

(3) हरात्मक माध्य (Hormonic Mean)

(4) वर्गकरणी या द्विघातीय माध्य (Quadratic Mean)

(ii) **स्थितीय माध्य (Positional Averages)**-- इनका कोई गणितीय आधार नही होता है । ये केवल किसी एक पद का मान ही दर्शाते है । कभी-२ यह माध्य केवल निरीक्षण से ही ज्ञात हो जाते है ।

ये निम्न प्रकार के होते है ।

(1) बहुलक (Mode)

(2) माध्यिकी या मध्यका (Median)

(iii) **व्यापारिक माध्य (Business Averages)**-- ये माध्य प्राय. व्यापार मे प्रयोग किए जाते है । ये निम्न प्रकार के होते है –

(1) चल माध्य (Moving Average)

(2) प्रगामी माध्य (Progressive Average)

(3) सग्रहित या सामूहिक माध्य (Composite Average)

	आधार	माध्य	संकेताक्षर
माध्य (Mean)	गणितीय	समान्तर माध्य	$\overline{X}$
		गुणोत्तर माध्य	G M
		हरात्मक माध्य	H M
		द्विघातीय माध्य	Q M
	स्थितिय	बहुलक (Mode)	Z
		मध्यका (Median)	M
	व्यापरिक	चल माध्य	
		प्रगमी माध्य	
		सग्रहित माध्य	

माध्यों के प्रकार

माध्यों की गणना के पहले मालाओं या श्रेणी की जानकारी होना आवश्यक है

समंक माला या श्रेणियाँ *(Series)*:

समक मालाएँ 3 प्रकार की होती है

श्रेणियाँ

- व्यक्तिगत (Individual)
- खण्डित (Discrete)
- सतत (continuous)
  - अपवर्जी (Exclusive)
  - समावेशी (Inclusive)
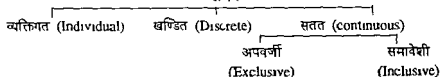
व्यक्ति गत श्रेणी मे व्यक्तिगत समक दिये हुए होते है जैसे एक बगीचे मे 100 मे से 50 पौधो पर पत्तियो की सख्या निम्नानुसार है

70, 25, 55, 36, 31, 59, 42, 63, 57, 39, 45, 65, 60, 45, 47, 49, 63, 54, 53, 64, 33, 75, 65, 42, 39, 41, 82, 52, 55, 35, 64, 30, 58, 35, 61, 15, 65, 48, 42, 26, 50, 20, 52, 40, 53, 55, 45, 46, 45, 18

उपयुक्त माला एक व्यक्तिगत माला है क्योंकि इसमे प्रत्येक पौधे की व्यक्तिगत पत्तियो की सख्या दी गई है। अगर इसे आवृत्ति वितरण के रूप मे, निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाये तो वह खण्डित माला बन जायेगी। सर्वप्रथम इन पत्तियो की सख्या को आरोही क्रम मे व्यवस्थित करके फिर खण्डित माला बनाई जावेगी।

आरोही क्रम–

15, 18, 20, 25, 26, 30, 31, 33, 35, 35, 36, 39, 39, 40, 41, 42, 42, 42, 45, 45, 45, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 52, 52, 53, 53, 54, 55, 55, 55, 57, 58, 59, 60, 61, 63, 63, 64, 64, 65, 65, 65, 70, 75, 82

खण्डित माला

पत्तियों की संख्या	पौधों की संख्या
15	1
18	1
20	1
25	1
26	1
30	1
31	1
33	1
35	2

36	1
39	2
40	1
41	1
42	3
45	4
46	1
47	1
48	1
49	1
50	1
52	2
53	2
54	1
55	3
57	1
58	1
59	1
60	1
61	1
63	2
64	2
65	3
70	1
75	1
82	1
N=50	

उपर्युक्त खण्डित माला से 10-10 का वर्ग विस्तार लेकर हम सतत् माला (continuous series) निम्न प्रकार प्राप्त कर सकते हैं।

पत्तियों की संख्या	पौधों की संख्या
(x)	(f)
0–10	0
10–20	2

20–30	3
30–40	8
40–50	13
50–60	12
60–70	9
70–80	2
80–90	1
	N = 50

उपयुक्त उदाहरण अपवर्जी (exclusive) सतत् माला का है हम समावेशी (inclusive) सतत् माला भी प्राप्त कर सकते है ।

पत्तियों की सख्या	पौधों की सख्या
(x)	(f)
1–10	0
11–20	3
21–30	3
31–40	8
41–50	13
51–60	12
61–70	9
71–80	1
81–90	1
	N = 50

समान्तर माध्य (Arithmatic Mean)-- गणितीय माध्य मे सबसे लोकप्रिय व महत्वपूर्ण समान्तर माध्य ही है, इसे सामान्य भाषा मे औसत या अक गणितीय माध्य भी कहते है ।

परिभाषा-- *किसी चर के अवर्गीकृत रूप से अथवा वर्गीकृत श्रेणी में रखे मानो के n पदो के योगफल को n से भाग देने पर प्राप्त सख्या श्रेणी का समान्तर माध्य कहलाती है ।* इसे सक्षिप्त मे समान्तर माध्य (A M) लिखा जाता है और प्राय A या $\bar{X}$ से प्रदर्शित किया जाता है ।

यदि पद X_1, X_2 X_3 X_n हो, तो

$$\bar{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + \quad X_n}{n}$$

या

$$\bar{X} = \frac{\text{पदो का योगफल}}{\text{कुल पदो की सख्या}}$$

समान्तर माध्य की गणना (Calculation of Arithmatic Mean)--
समान्तर माध्य दो रीतियो से ज्ञात किया जाता है -

(1) **प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)**-- इस रीति के अनुसार समस्त पदो के मूल्य का योग किया जाता है और प्राप्त मूल्य के योग मे पदो की सख्या का भाग देकर समान्तर माध्य ज्ञात किया जाता है। यह विधि जब चरो की सख्या कम हो तब उपयुक्त है।

सूत्रानुसार

$$\bar{X} = \frac{X_1 + X_2 + X_3 + \quad X_n}{n}$$

या

$$\bar{X} = \frac{\Sigma X}{n}$$

$\bar{X}$ = समान्तर माध्य
n = पदो की सख्या
Σ = योग
X = पद मूल्य

(2) **लघु विधि (Short cut Method)**-- इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि समक श्रेणी मे पदो की सख्या बहुत अधिक हो। इस रीति का प्रयोग करते वक्त निम्न प्रक्रियाऐं प्रयुक्त की जाती है। -

(i) **कल्पित माध्य (A)** :-- श्रेणी मे से किसी भी सख्या को कल्पित माध्य (Assumed Mean) मान लेते है। सुविधा की दृष्टि से उस पद को कल्पित माध्य लेना उपयुक्त रहता है जो कि किसी समक माला मे एक बार से अधिक आता हो

(ii) **विचलन (dx) की गणना (Calculation of deviation)**-- कल्पित माध्य से समूह के विभिन्न वास्तविक मूल्यो का विचलन बीज गणितीय चिन्हो (+) या (—) को ध्यान मे रखते हुए करते है।

(iii) **विचलनो का योग (Σdx)** -- सभी विचलनो का योग कर दिया जाता है।

(iv) **पदों की संख्या (n) से भाग देना** -- प्राप्त योग मे पदो की सख्या का भाग दे दिया जाता है।

(v) **माध्य ($\bar{X}$) ज्ञात करना** -- विचलन योग मे पदो की सख्या का भाग देने पर जो भाजनफल प्राप्त हो उसे कल्पित माध्य मे जोड़कर (चिन्हानुसार) प्राप्त होने वाली सख्या समान्तर माध्य होगी। यह विधि इस तथ्य पर आधारित है कि वास्तविक समान्तर माध्य से विभिन्न पदो के विचलनो का योग शून्य होता है।

सूत्रानुसार= $\bar{X} = A + \frac{\Sigma dX}{n}$

यहाँ $\bar{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

Σdx = कल्पित माध्य से लिये गये विचलनो का योग

n = पदो की सख्या

उदाहरण 1 :-- एक उद्यान मे पाये जाने वाले सूरजमुखी के पौधो की लम्बाई निम्नांकित है :--

सूरजमुखी के पौधे लम्बाई (cm)	A 150	B 155	C 140	D 145	E 145	F 150	G 160	H 155	I 165	J 170

प्रत्यक्ष व लघु रीति से माध्य ज्ञात करिए।

प्रत्यक्ष रीति द्वारा :--

सूत्र $\bar{X} = \frac{\Sigma X}{n}$

सूरजमुखी के पौधे	लम्बाई (cm.)
A	150
B	155
C	140
D	145
E	145
F	150
G	160
H	155
I	165
J	170
N = 10	ΣX = 1535

समान्तर माध्य $\bar{X} = \frac{\Sigma X}{n} = = \frac{1535}{10} = 153.5$ cm.

लघुरीति द्वारा;-

सूरजमुखी के पौधे	लम्बाई (cm.) X	कल्पित माध्य (A) 150 से विचलन.	dX.
A	150	150–150 = 0	00
B	155	155–150 = + 05	+05

C	140	140–150 = –10	– 10
D	145	145–150 = – 05	– 05
E	145	145–150 = – 05	– 05
F	150	150–150 = 00	00
G	160	160–150 = 10	+ 10
H	155	155–150 = + 05	+ 05
I	165	165–150 = + 15	+ 15
J	170	170–150 = + 20	+20
			$\Sigma dX = + 55 - 20$
			$= + 35$

सूत्र = $\bar{X} = A + \frac{\Sigma dX}{n}$

$$\bar{X} = 150 + \frac{(+35)}{10}$$

$\bar{X} = 150 + 3\ 5$ $= 153\ 5$ cm

उदाहरण 2 -- निम्न सारणी मे एक क्यारी के पिटुनिया के 12 पौधो पर पुष्पो की सख्या प्रस्तुत है । समान्तर माध्य का परिकलन प्रत्यक्ष वे लघु रीति से कीजिए ।

No of plants	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
No of flowers	4	6	8	10	14	12	16	4	6	8	12	8

SOLUTION BY DIRECT METHOD

S No	No of Flowers
1	04
2	06
3	08
4	10
5	14
6	12
7	16
8	08
9	12
10	04
11	06
12	08
N = 12	ΣX = 108

$$\bar{X} = \frac{\Sigma X}{n}$$

$$= \frac{108}{12}$$

$\bar{X} = 9$ flowers

Short Cut Method : - कल्पित माध्य A = 10

S. No.	No. of flowers	deviation from A = 10
1	4	4–10 = – 6
2	6	6–10 = – 4
3	8	8–10 = 2
4	10	10–10 = 0
5	14	14–10 = + 4
6	12	12–10 = + 2
7	16	16–10 = + 6
8	4	4–10 = – 6
9	6	6–10 = – 4
10	8	8–10 = – 2
11	12	12–10 = + 2
12	8	8–10 = – 2
	n = 12	– 26 + 14
		Σdx = — 12

$$\bar{X} = A + \frac{\Sigma dX}{n}$$

$$= 10 + \left(\frac{-12}{12}\right)$$

$$= 10 + (-1)$$

$$= 10 - 1 = 9$$

$\bar{X}$ = 9 Flowers

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य दोनो रीतियो द्वारा एक समान ही आता है।

खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य की गणना (Calculation of A. M. in Discrete Series) :--

(A) प्रत्यक्ष रीति :-- *खण्डित श्रेणी मे कुल पदो के मूल्य का योग ज्ञात करने के लिए प्रत्येक पद (x) को उसकी आवृति (f) से गुणा कर दिया जाता है। इन गुणनफलो, का योग ही कुल पद मूल्यो का योग (ΣfX) होता है। इस योग मे पदो की सख्या. (n) का भाग देने से समान्तर माध्य प्राप्त होता है। जैसे कि*

(i) प्रत्येक मूल्य (value or size) से उसकी आवृत्ति को गुणा करते है (fx)

(ii) गुणन फल का योग ज्ञात करते है (Σfx)

(iii) कुल आवृत्तियो का योग ज्ञात करते है (Σ f or n)

(iv) गुणनफल के योग (Σfx) मे कुल आवृत्तियो (n) के योग से भाग देकर समान्तर माध्य ($\overline{X}$) निम्न सूत्र से ज्ञात करते है ।

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{n}$$

$\overline{X}$ = Arithmatic Mean

Σfx = *summation of f X*

n = Total No of items or frequency

(B) लघुरीति :-- गणना विधि :

(i) किसी भी मूल्य को कल्पित माध्य (A) मान लेते है ।

(ii) कल्पित माध्य से वास्तविक मूल्यो के विचलन को ज्ञात करते है । (dx = x—A)

(iii) इन विचलनो (dx) को सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करते है । (f dx)

(iv) गुणनफलो का योग ज्ञात करते है (Σfdx)

(v) गुणनफलो के योग मे कुल आवृत्तियो के योग से भाग देने पर जो भाजनफल आये उसे कल्पित माध्य मे जोड़ या घटा कर समान्तर माध्य ज्ञात करते है ।

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma fdx}{n}$$

$\overline{X}$ = *समान्तर माध्य (Arithmatic Mean)*

A = कल्पित माध्य (Assumed Mean)

Σfdx = विचलनो व आवृतियो का योग
(summation of product of deviation & frequency)

n = आवृतियो का योग
(summation of frequency)

उदाहरण :-- एक वनस्पति उद्यान में **डायन्थस** के विभिन्न पौधो की ऊचाई निम्न प्रकार से है । प्राप्त आकड़ो की सहायता से समान्तर माध्य दोनो रीतियो से ज्ञात करीए ।

पौधो की ऊचाई (cm)	4	6	8	10	12	14	16
पौधों की सख्या	2	5	4	3	2	1	4

Solution Direct Method

पौधों की ऊचाई (X)	पौधों की सख्या (f)	कुल ऊचाई (fx)
4	2	8
6	5	30
8	4	32
10	3	30
12	2	24
14	1	14
16	4	64
	Σf = 21	ΣfX = 202

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{202}{21}$$

$\overline{X}$ = 9 62 cm

SHORT CUT METHOD —

S No	Height of plants (x)	No. of plants (f)	Deviation from A = 10 (X – A)	f dx
1	4	2	— 6	— 12
2	6	5	— 4	— 20
3	8	4	— 2	—8
4	10	3	0	0
5	12	2	+ 2	+ 4
6	14	1	+ 4	+ 4
7	16	4	+ 6	+ 24
				— 40 + 32
				Σf dx = — 8

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma f\,dx}{n}$$

$$\overline{X} = 10 + \left(\frac{-8}{21}\right)$$

$$\overline{X} = 10 + (-0\ 38)$$

$$\overline{X} = 10 - 0\ 38 = 9\ 62 \text{ cm}$$

उदाहरण : – एक कृषक ने गेहूँ की विभिन्न किस्मो के पैदावार निम्नानुसार प्राप्त की। प्राप्त आँकड़ो से गेहूँ की माध्य पैदावार ज्ञात करिए।

किस्म	पैदावार / एकड़ (Quintal)	आवृति
कल्याण सोना	20	10
WX	25	15
Lok – I	22	15
कोहिनूर	10	5
Raj–911	15	10

प्रत्यक्ष विधि :–

किस्म	पैदावार / एकड़ (Quintal) (X)	आवृति (f)	fx
कल्याण सोना	20	10	200
WX	25	15	375
Lok – I	22	15	330
कोहिनूर	10	5	50
Raj–911	15	10	150
		$\Sigma f = 55$	$\Sigma fx = 1105$

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

$$= \frac{1105}{55} \quad = 20\ 09 \text{ Quintal}$$

लघु विधि : –

किस्म	पैदावार / एकड़ (Quintal) (X)	आवृति (f)	A = 20 से विचलन dx (x–A)	विचलन × आवृति f.dx
कल्याण सोना	20	10	20 – 20 = 0	0
WX	25	15	25 – 20 = + 5	+ 75
Lok – I	22	15	22 – 20 = + 2	+ 30

कोहिनूर	10	5	10 - 20 = —10	— 50
Raj- 911	15	10	15 - 20 = — 5	— 50
		55		+ 105 — 100 = + 5

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma f\, dx}{\Sigma f}$$

$$= 20 + \left(\frac{+5}{55}\right)$$

$$= 20 + 0.09 \quad = 20.09 \text{ Quintal}$$

उदाहरण : एक राजकीय महाविद्यालय के वनस्पति उद्यान मे केलेन्दुला के पौधे निम्न आयु वर्ग के अनुसार लगे है तो प्राप्त समको से माध्य ज्ञात करिए ।

पौधे की आयु (दिन)	14	15	16	17	18
पौधो की सख्या	5	8	4	2	1

Solution : प्रत्यक्ष विधि :

पौधो की आयु (X)	पौधो की संख्या (f)	fx
14	5	70
15	8	120
16	4	64
17	2	34
18	1	18
	Σf = 20	Σfx = 306

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{306}{20} = 15.3 \text{ days.}$$

लघु विधि :—

पौधों की आयु (X)	पौधों की संख्या (f)	A = 15 से विचलन dx : (x − A)	f.dx
14	5	14–15 = — 1	—5
15	8	15–15 = 0	0
16	4	16–15 = + 1	+ 4
17	2	17–15 = + 2	+ 4
18	1	18–15 = + 3	+ 3
	Σ f = 20		+ 11 — 5
			Σ f d x = + 6

$$\overline{X} = \frac{\Sigma f\,dx}{\Sigma f}$$

$$= 15 + \frac{+6}{20}$$

$$= 15 + 0.3 \qquad = 15.3 \text{ days}$$

सतत् या अविच्छिन्न या अखण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य (Arithmatic Mean in Continuous Series) -- *अखण्डित या सतत् श्रेणी मे समान्तर माध्य की गणना* भी उसी प्रकार से की जाती है जैसे कि खण्डित श्रेणी मे, अन्तर सिर्फ इतना ही है कि सतत् श्रेणी मे वर्गान्तरो के मध्य मूल्य (Mid value) निकाल कर प्रयोग मे लाये जाते है और ऐसा करके हम उसे खण्डित श्रेणी मे परिवर्तित कर लेते है। मध्य मूल्य ज्ञात करने हेतु वर्गान्तरो की अपर व अधर सीमाओं को जोडकर उसमे दो का भाग दिया जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मध्य मूल्य उस वर्ग मे सम्मिलित सभी पदो का प्रतिनिधि मूल्य होता है। जैसे कि यदि (5–15) वाले वर्ग की आवृत्ति 17 है तो यह मान लिया जाता है कि 17 इकाइयो मे से प्रत्येक का मूल्य 10 है जो कि 5–15 वर्ग का मध्य मूल्य है।

सतत् श्रेणी मे समान्तर माध्य निम्न विधियो से ज्ञात किया जाता है।

(i) प्रत्यक्ष रीति (Direct Method)

(ii) लघु रीति (Short Cut Method)

(iii) पद विचलन (step deviation)

(iv) आकलन या योग विधि

(i) **प्रत्यक्ष विधि**-- पहले वर्गों के मध्य मूल्य निश्चित कर लिये जाते है तत्पश्चात् वही क्रिया प्रयुक्त की जाती है जो खण्डित श्रेणी मे अपनाई जाती है। यह विधि असमान वर्गों वाले समूह के लिए उपयुक्त है

सूत्र $\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$

यहाँ $\overline{X}$ = Arithmatic mean

X = mid value

f = frequency

Σf = summation of frequency

(ii) **लघु रीति** -- इस रीति के अर्न्तगत वर्गों के मध्य मूल्य निकालकर वही क्रिया अपनाई जाती है जो खण्डित श्रेणी मे प्रयोग मे ली जाती है।

(i) *किसी मध्य मूल्य (x) को कल्पित माध्य (A) मान लिया जाता है।*

(ii) उससे प्रत्येक मध्य मूल्य का विचलन (dx) ज्ञात किया जाता है।

(iii) मध्य मूल्य के विचलन (dx) को आवृति (f) से गुणा करके गुणनफलो का योग (Σfdx) ज्ञात कर लिया जाता है। अन्त मे

सूत्र $\overline{X} = A + \frac{\Sigma f.dx}{\Sigma f}$ से मान रख कर समान्तर माध्य ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण :— किसी बाग में आम (Mangifera indica) के पेड़ों की ऊँचाई का समान्तर माध्य दोनों विधियों से ज्ञात करो। समावेशी श्रेणी (Inclusive series)

ऊँचाई (ft) (से कम)	7	14	21	28	35	42	49	56
पेड़ों की संख्या (f)	26	57	92	134	216	287	341	360

Solution :— प्रत्यक्ष रीति :—

ऊँचाई (in feet)	मध्य मूल्य (X)	आवृति (f)	मध्य मूल्य × आवृति (fx)
0—7	3.5	26	91.0
7—14	10.5	31	325.5
14—21	17.5	35	612.5
21—28	24.5	42	1029.0
28—35	31.5	82	2583.0
35—42	38.5	71	2733.50
42—49	45.5	54	2457.00
49—56	52.5	19	997.50
		$\Sigma f = 360$	$\Sigma fx = 10829.0$

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{10829}{360} = 30.08 \text{ ft.}$$

$$\overline{X} = 30.08 \text{ ft.}$$

लघु रीति द्वारा :

ऊँचाई (in feet)	मध्य मूल्य (X)	आवृति (f)	A = 31.5 से विचलन X — A = (dx)	F.dx
0—7	3.5	26	3.5 − 31.5 = — 28	—728
7—14	10.5	31	10.5 − 31.5 = — 21	—651
14—21	17.5	35	17.5 − 31.5 = — 14	—490
21—28	24.5	42	24.5 − 31.5 = — 7	—294
28—35	31.5	82	31.5 − 31.5 = 0	0
35—42	38.5	71	38.5 − 31.5 = + 7	+497
42—49	45.5	54	45.5 − 31.5 = + 14	+ 756

49—56	52.5	19	52.5 - 31.5 = + 21	+399
		$\Sigma f = 360$		+ 1652— 2163
				$\Sigma f\,dx$ = — 511

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma f\,dx}{\Sigma f}$$

$$= 31.5 + \left(\frac{-511}{360}\right) = 31.5 - 1.42$$

$$\overline{X} = 30.08 \text{ ft.}$$

उदाहरण :— निम्न पुष्प वर्गों की अपवर्जी आवृत्ति वितरण श्रेणी से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए। Exclusive

No of Flowers	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
No of Plants	10	12	20	18	10

Solution : Direct Method | **SHORT CUT METHOD**

No of Flowers	Mid Value (X)	No of plants (f)	(fx)	A = 25 dX =(X—A)	f dx
0–10	5	10	50	—20	— 200
10–20	15	12	180	—10	— 120
20–30	25	20	500	0	0
30–40	35	18	630	+ 10	+ 180
40–50	45	10	450	+ 20	+ 200
		$\Sigma f = 70$	$\Sigma fx = 1810$	+ 380	— 320
					$\Sigma f.dx = +60$

Direct Method

$$\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{1810}{70}$$

$\overline{X}$ = 25.86

or 26 Flowers

Short Cut Method

$$\overline{X} = A + \frac{\Sigma f\,dx}{\Sigma f} = 25 + \frac{60}{70} = 25 + 0.86$$

$\overline{X}$ = 25.86

or 26 Flowers

उदाहरण :— निम्नलिखित समक माला से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

पुष्पो की सख्या	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60
पौधो की सख्या	15	10	20	18	25	12

पुष्पों की सख्या (X)	पौधों की सख्या (f)	Mid Value	fx
0–10	15	5	75
10–20	10	15	150
20–30	20	25	500
30–40	18	35	630
40–50	25	45	1125
50–60	12	55	660
	$\Sigma f = 100$		$\Sigma fx = 3140$

$$\overline{X} = \frac{3140}{100} = 31.40 \text{ Folwers}$$

or 31 Flowers

(iii) **पद विचलन रीति (Step Deviation Method) :--** अविच्छिन्न श्रेणी (continuous series) मे दिये गये प्रश्नो चाहे श्रेणी सम्मिलित (inclusive) हो या असम्मिलित (exclusive) का समान्तर माध्य पद विचलन रीति से आसानी से व कम समय मे ज्ञात किया जा सकता है। पद विचलन रीति का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि श्रेणी मे दिये गये प्रत्येक वर्गान्तर का वर्ग-विस्तार समान हो यदि एक भी वर्गान्तर का वर्ग विस्तार असमान हो तो इस विधि का प्रयोग करना अनुपयुक्त होता है। इस रीति से प्रश्न हल करने के लिए निम्न क्रिया अपनाई जाती है --

(1) श्रेणी के लगभग मध्य के किसी वर्गान्तर के मध्य बिन्दु को कल्पित माध्य मान लिया जाता है। यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि वैसे तो किसी भी मध्य बिन्दु को कल्पित माध्य माना जा सकता है परन्तु लगभग बीच वाले वर्गान्तर के मध्य बिन्दु को कल्पित माध्य मानने से गणनाये कम हो जाती है।

(2) कल्पित माध्य को प्रत्येक वर्गान्तर के मध्यबिन्दु मे से घटाते है। यहाँ पर बीजगणितीय चिन्हो का ध्यान आवश्यक रूप से रखा जाना चाहिए। ये सख्याये विचलन कहलाती है।

(3) विचलन मे वर्ग विस्तार का भाग देकर पद विचलन (x') ज्ञात कर लेते है।

(4) प्रत्येक पद विचलन को उसकी आवृति से गुणा करके गुणनफल का योग कर लेते है।

(5) योग मे आवृतियो के योग (n) का भाग देकर वर्ग विस्तार से गुणा कर लेते है। प्राप्त सख्या को कल्पित माध्य मे बीजगणितीय चिन्ह के अनुसार जोड़ देते है। और समान्तर माध्य ($\overline{X}$) ज्ञात कर लेते है।

सूत्र –

$$\overline{X} = A + \left(\frac{\Sigma fx'}{n} \times i\right)$$

यहाँ $\overline{X}$ = समान्तरमाध्य

$\Sigma f x'$ = पद विचलन × आवृति का योग

i = वर्ग विस्तार

A = कल्पित माध्य

उदाहरण :— एक वनस्पति उद्यान मे विभिन्न आयु वाले पौधो की सख्या निम्न है।

पौधों की आयु		पौधों की संख्या
0 वर्ष से ऊपर		250
10	—do—	200
20	—do—	188
30	—do—	150
40	—do—	101
50	—do—	58
60	—do—	25
70	—do—	10
80	—do—	2

उद्यान के पौधो की माध्य आयु पद विचलन रीति से ज्ञात करिए।

हल : उपरोक्त तालिका के अवलोकन से पता चलता है कि यहाँ सचयी आवृति (cumulative frequency) दी गई है। यह Inclusive series का उदाहरण है अत: स्पष्ट है कि सभी पौधे O वर्ष से ऊपर की आयु वाले है और कुल पौधो की सख्या 250 है। 0-10 वाले पौधे 50 हुए क्योंकि 200 पौधो की आयु 10 वर्ष से ऊपर है। अत इसे असम्मिलित श्रेणी में परिवर्तित करके गणना की जावेगी

आयु वर्षों में (x)	आवृति (f)	मध्य बिन्दु M.V. (x)	कल्पित माध्य से विचलन A= 35 (d x)	वर्गान्तर का भाग	(f.dx.)
0-10	50	5	–30	–3	–150
10-20	12	15	–20	–2	–24
20-30	38	25	–10	–1	–38

30-40	49	35	0	0	0
40-50	43	45	+10	+1	+43
50-60	33	55	+20	+2	+66
60-70	15	65	+30	+3	+45
70-80	8	75	+40	+4	+32
80-90	2	85	+50	+5	+10
	250				Σfdx =-16

$$\overline{X} = A + \left(\frac{\Sigma fdx}{\Sigma f} \times i\right)$$

$$= 35 + \left(\frac{-16}{250} \times 10\right)$$

$$= 35 - 0.64 = 34.36 \text{ वर्ष}$$

सामूहिक समान्तर माध्य : (Combined Arithmatic Mean) जब किसी समूह के दो या दो से अधिक हिस्सों के अलग-अलग समान्तर माध्य और उनके हिस्सों में पदों की संख्या ज्ञात हो तो उनकी मदद से पूरे समूह का समान्तर माध्य भी ज्ञात किया जा सकता है व इस सामूहिक समान्तर माध्य को ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते है।

$$\text{सामूहिक माध्य} = \frac{\overline{X_1} N_1 + \overline{X_2} N_2 + \ldots\ldots \overline{X_n} N_n}{N_1 + N_2 + \ldots\ldots N_n}$$

यहाँ $\overline{X_1}$, $\overline{X_2}$ इत्यादि विभिन्न हिस्सों के समान्तर माध्य है, N_1, N_2 आदि विभिन्न हिस्सों में इकाईयों की संख्या है।

उदाहरण : एक कृषक के खेतों में गेहूँ के विभिन्न किस्मों की पैदावार निम्न है तो विभिन्न किस्मों की औसत पैदावार बताईये।

गेहूँ की किस्म

	RR—21	Kohinoor	WX
माध्य पैदावार प्रति एकड़ (Q)	10	12	15
कुल खेतों की संख्या	200	250	100

हल :

	RR— 21	Kohinoor	WX
	$N_1 = 200$	$N_2 = 250$	$N_3 = 100$
	$\overline{X_1} = 10$	$X_2 = 12$	$X_3 = 15$
	200 × 10	250 × 12	15 × 100
कुल पैदावार	= 2000	= 3000	1500

तीनो किस्मों का सामूहिक माध्य (Combined Average)

$$\overline{X}_{123} = \frac{\overline{X}_1 \; N_1 + \overline{X}_2 \; N_2 + \overline{X}_3 \; N_3}{N_1 + N_2 + N_3}$$

$$= \frac{2000 + 3000 + 1500}{200 + 250 + 100} = \frac{6500}{550}$$

∴ सामूहिक माध्य पैदावार $\overline{X}_{123} = 11.818$ Q/ एकड़

समान्तर माध्य की गणितीय विशेषताएँ :

(Mathematical properties of Arithmetic mean)

(1) *समान्तर माध्य से लिए गये विचलनो का योग सदैव शून्य होता है अर्थात्* $\Sigma(X - \overline{X}) = 0$

(2) समान्तर माध्य की प्रमाप विभ्रम (Standard error) अन्य माध्यो की अपेक्षा कम होती है।

(3) समान्तर माध्य को पदो की सख्या से गुणा करने पर समस्त पदो के कुल मूल्य प्राप्त हो जाते है अर्थात् $\overline{X}N = \Sigma X$। अन्य किसी माध्य मे यह विशेषता नही होती है।

(4) *यदि* $\overline{X}$, ΣX *तथा* Σf *या N मे से कोई भी दो ज्ञात हो तो तीसरे का* आकलन किया जा सकता है। किसी सख्या के अशुद्ध होने पर इसी आधार पर उसको शुद्ध किया जा सकता है। इसी कारण इसका प्रयोग कुछ सामाजिक - आर्थिक समस्याओं के अध्ययन मे किया जाता है।

समान्तर माध्य के गुण (Merits of A.M.)

(1) **निश्चित संख्या :** समान्तर माध्य एक निश्चित सख्या होती है जिस पर समय, स्थान तथा व्यक्ति का कोई प्रभाव नही पड़ता है। यह गुण केवल समान्तर माध्य मे ही पाया जाता है।

(2) **सरल आकलन :** समान्तर माध्य की गणना अत्यन्त सरल है व इसे ज्ञात करने हेतु अधिक उच्च स्तरीय गणित की आवश्यकता नही पडती।

(3) **क्रम अनावश्यक :** सामान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए समस्त तथ्यो को किसी विशेष क्रम मे व्यवस्थित करने की आवश्यकता नही पड़ती। अक जिस किसी रूप मे प्रस्तुत हो, जोड कर औसत निकाला जा सकता है।

(4) **पृथक अंक अनावश्यक :** समान्तर माध्य निकालने के लिए प्रत्येक तथ्य से सम्बधित अलग-अलग अक उपलब्ध करने की आवश्यकता नही है। यदि अको का कुल योग व उनकी सख्या ज्ञात हो तो समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है। जैसे कि किसी देश की कुल पैदावार और कुल कृषि योग्य भूमि का ज्ञान हो तो प्रति

एकड पैदावार ज्ञात की जा सकती है। अलग-अलग खेतो द्वारा प्राप्त पैदावार और अलग-अलग खेतो की कृषि योग्य भूमि का ज्ञान रखने की आवश्यकता नही है।

(5) **कुल सख्या का ज्ञान सम्भव :** समान्तर माध्य का एक गुण यह है कि यदि हमे औसत ज्ञात हो और पदो की सख्या का भी पता हो तो दोनो को गुणा करके कुल सख्या की सरलता से गणना की की जा सकती है। उदाहरणार्थ एक खेत मे 5 कृषक काम करते है और औसत 2 क्विंटल मक्का की कटाई करते है तो यह स्पष्ट है कि खेत से दैनिक 10 क्विंटल मक्का की कटाई हो रही है। यह विशेषता अन्य माध्यो मे नही है।

(6) **समस्त अंकों का समान महत्व :** समान्तर माध्य मे प्रत्येक पद को समान महत्व दिया जाता है। जोड़ मे छोटे बड़े सभी पद आ जाते है। और उनके कुल योग के द्वारा ही औसत का परिकलन किया जाता है जिसमे सब समको को उनके विस्तार के अनुसार महत्व प्राप्त हो जाता है।

(7) **पूरक प्रभाव :** समान्तर माध्य का यह गुण है कि अको की अधिक सख्या होने पर बड़ी मदो का महत्व छोटी मदो द्वारा पूरा हो जाता है तथा तुलना के लिए जो औसत अक प्राप्त होता है, वह सामान्य होता है। इस प्रकार यह माध्य न्यादर्श के उच्चावचनो से भी अप्रभावित रहता है।

(8) **सामूहिक समान्तर माध्य की गणना :** यदि विभिन्न समूहो के समान्तर माध्य दिये हो तो उनके आधार पर समस्त समूहो का सामूहिक समान्तर माध्य निकाला जा सकता है।

(9) **शुद्धता :** गणितीय शुद्धता की दृष्टि से समान्तर माध्य सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए उन्नत गणित मे इनका अधिक प्रयोग किया जाता है। बीजगणित मे भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

(10) **सब अंकों को सम्मिलित किया जाता है :** समान्तर माध्य की गणना हेतु समक श्रेणी के सभी मदो को सम्मिलित किया जाता है। यदि श्रेणी का एक भी अक उपलब्ध न हो तो समान्तर माध्य की गणना नही की जा सकती।

(11) **आगे गणितीय रीतियों में प्रयोग :** समान्तर माध्य के आकलन मे किसी भी गणितीय सिद्धान्त की उपेक्षा नही की जाती, फलस्वरूप यह माध्य आगे गणितीय रीतियो में प्रयोग किया जा सकता है।

समान्तर माध्य के दोष (Demerits of A.M.)

समान्तर माध्य मे उपरोक्त गुण के कारण इसका बहुत प्रयोग होता है, किन्तु इसमें कुछ ऐसे दोष भी होते हैं जिनके कारण इसका प्रयोग करते समय पर्याप्त सतर्कता की आवश्यकता रखने की जरूरत होती है। समान्तर माध्य के कुछ महत्वपूर्ण दोष निम्न है :

(1) **दृष्टिमात्र से ज्ञान नहीं :** यदि समक माला मे सख्याऐं बहुत बड़ी हैं तो केवल दृष्टि मात्र से ही समान्तर माध्य ज्ञात नही किया जा सकता। क्योंकि बड़ी-बड़ी सख्याऐं होने पर बहुत बड़ी जोड़ या गुणा करने की आवश्यकता पड़ती है।

(2) **बहुत बड़े या छोटे मदो से प्रभावित :** यदि समक श्रेणी के सामान्य अको मे एक बडी मद आ जाये तो माध्य उससे बहुत प्रभावित हो जाता है व परिणाम अधिक सन्तोषजनक नही प्राप्त होते हैं। बहुत बडे मदो की पूर्ति सिर्फ उस स्थिति मे हो सकती है जबकि सख्याऐं बहुत अधिक हो। उदाहरणार्थ किसी आम के बाग मे तीन वृक्षो पर क्रमश: 30, 30 व 40 आम लगे है और उसी बाग के चौथे वृक्ष पर 100 आम लगे हो तो उस बगीचे मे औसत (आम प्रति वृक्ष) = $\frac{30+30+40+100}{4}$ = 50 आम हुआ, जबकि तीन वृक्षो मे से किसी पर भी 40 से अधिक आम नही है। अत: स्पष्ट है कि माध्य को इन आमो के समूह का प्रतिनिधि नही मान सकते और यह भी स्पष्ट है कि एक ही बडी सख्या समान्तर माध्य के मान को बहुत अधिक प्रभावित कर देती है।

(3) **बड़े मदों का अधिक महत्त्व :** समान्तर माध्य बड़े मदो को अधिक महत्त्व देता है तथा छोटे मदो को कम। यदि पाँच मे से चार मद छोटे हो और एक बडा हो तो समान्तर माध्य सदैव छोटे मदो से अधिक होगा। जबकि दूसरी ओर यदि चार मद बडे हो तथा एक छोटा हो तो परिणाम छोटे मदो से अधिक प्रभावित नहीं होता है।

(4) **समस्त मदो का योग आवश्यक :** समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए सारे मदो के योग अथवा अक अलग-अलग मालूम होने चाहिए। 1000 मदो मे से यदि 995 मदो के योग अगर मालूम हो तो भी समान्तर माध्य का आकलन नही किया जा सकता।

(5) **काल्पनिक संख्या :** सामान्तर माध्य बहुधा ऐसी सख्या निकलती है जो सम्पूर्ण सख्या मे मौजूद ही नही होती है। जैसे कि चार अमरुद के पेड़ो पर क्रमश: 2, 4, 6, 8 अमरुद है तो इनका औसत 5 हुआ और चारो अको मे से कोई अक 5 नही है अत: सामान्तर माध्य बहुधा एक काल्पनिक सख्या होती है।

(6) **भ्रामक :** समान्तर माध्य कभी अत्यन्त भ्रामक परिणाम प्रदर्शित करता है, जैसे कि दो कृषको ने चार वर्षों मे निम्न उत्पादन प्राप्त किये

उत्पादन क्विंटल में

	प्रथम कृषक	द्वितीय कृषक
Ist Yr.	500	800
IInd yr.	600	700
IIIrd yr	700	600
IVth yr	800	500

दोनो कृषको के औसत उत्पादन 650 Q है और इस प्रकार दोनो कृषको की आर्थिक स्थिति समान है। परन्तु समको से यह स्पष्ट है कि प्रथम कृषक लगातार उन्नति कर रहा है जब कि दूसरा कृषक लगातार अवनति कर रहा है।

(7) **हास्यास्पद परिणाम :** समान्तर माध्य द्वारा कभी-कभी अत्यन्त हास्यास्पद परिणाम निकलते है जैसे कि टमाटर के चार पौधो पर क्रमश. 3, 4, 5 व 6 टमाटर लगे तो प्रति पौधा औसत टमाटर 4 5 हुआ जो हास्यप्रद है क्योकि 4 5 टमाटर भौतिक दृष्टि से सभव नही है। हास्य व्यग पत्रिका 'पच' ने अवास्तविक समान्तर माध्य का उदाहरण देते हुए व्यगात्मक रूप से लिखा था प्रति व्यस्क स्त्री पर 2 2 बच्चो की सख्या कुछ बातो मे बिल्कुल मूर्खतापूर्ण व हास्यप्रद प्रतीत हुई और राजकीय आयोग ने यह सुझाव दिया कि मध्यम वर्गों को धन दिया जाना चाहिए। जिससे यह माध्य पूर्णांक और सुविधाजनक अक के रूप मे बढ़ाया जा सके। *(Punch, Quoted by Moroney)*। वास्तव मे दशमलव के रूप मे बच्चो की सँख्या या टमाटर की सख्या की कल्पना भी नही की जा सकती "2.2 बच्चे व 4 5 टमाटर" अवास्तविक सख्या है यह पूर्णांक मे 2 या 3 बच्चे व 4 या 5 टमाटर होने चाहिए।

(8) **अनुपयुक्तता :** अनुपात, दर व प्रतिशत आदि का अध्ययन करने के लिए यह सदा अनुपयुक्त है।

(9) जहाँ वर्ग के सिरे खुले हो वहाँ समान्तर माध्य ज्ञात नही किया जा सकता। क्योंकि खुले सिरे होने पर मध्य बिन्दु नही निकाले जा सकते है।

मध्यका (Median)

कार्नर के अनुसार मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है। यह किसी समक माला का वह मूल्य है जो कि समक माला को दो समान भागो मे विभाजित करता है। मध्यका के एक ओर के भाग के मदो के मान मध्यका के मान से कम और दूसरे भाग के मान मध्यका से अधिक होते है। दूसरे शब्दो मे मध्यका आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम मे लिखे हुए विभिन्न मदो के मध्य का मूल्य होता है। डॉ० ए० एल० बाउले के शब्दो मे "यदि एक समूह के मदो को उनके मूल्यो के आधार पर क्रम बद्ध किया जाये तो लगभग बीच का मूल्य ही मध्यका होता है।"

परिभाषा : किसी श्रेणी के मदो को यदि उनके मानो के अनुसार आरोही या अवरोही क्रम मे लिख दिया जाए तो बीच के मद का मान उस श्रेणी की मध्यका कहलाती है तथा इसे प्राय M सकेत से दर्शाते है। मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है

$$M = \text{size of} \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{Item}$$

M = मध्यका (Median)

N = मदो की सख्या *(No of Items)*

मध्यका की गणना . (Calcutation of Median)— मध्यका की गणना हेतु सर्वप्रथम समक माला को व्यवस्थित करना पड़ता है। समको को किसी मापनीय गुण (Measurable characteristic) के आधार पर आरोही या अवरोही क्रम मे व्यस्थित कर लेते है। आरोही क्रम मे सबसे पहले छोटे मद को और उसके बाद मे उससे बड़े को इसी क्रम मे दोहराते हुए अन्त मे सबसे बड़े मद को लिखते है जबकि इसके विपरीत अवरोही

क्रम मे सर्वप्रथम सबसे बडे समक और अन्त मे सबसे छोटे समक को लिखते है। फिर सूत्र के आधार पर मध्यका की गणना की जाती है। जैसे कि एक क्यारी मे डेल्फिनियम (*Delphinium*) के पौधो की ऊँचाई *10, 20, 15, 12, 18, 20 cm* है तो इसका मध्यका ज्ञात करने हेतु सर्वप्रथम इन समको को आरोही या अवरोही क्रम मे व्यवस्थित कर लेते है।

आरोही	अवरोही
10 cm	20 cm
12 cm	18 cm
15 cm	*15 cm*
18 cm	12 cm
20 cm	10 cm

सूत्र $M = size\ of\ \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}\ Item$

$$\frac{5+1}{2} = \frac{6}{2} \qquad = 3rd\ Item$$

दोनो ही क्रम मे निरीक्षण करने पर हम पाते है कि तीसरे मद का मान 15 cm. है और यह ही इस श्रेणी की मध्यका हुई।

यहाँ यह स्मरण रखने योग्य है कि मध्यका श्रेणी या आवृति वितरण के माध्य पद का मूल्य है, यह स्वय मध्यका नही है।

मध्यका की गणना विधि : (Calculation Method for Median)

(1) व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series) : व्यक्तिगत मूल्यो का मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्न प्रक्रियाएँ प्रयुक्त की जाती है।

(i) आरोही या अवरोही क्रम मे व्यवस्थित करना।

(ii) $\frac{N+1}{2}$ सूत्र के प्रयोग से मध्यका ज्ञात करना।

उदाहरण : एक बगीचे के 15 आम के पेडो की ऊँचाई (cm) निम्न है :--

58, 67, 59, 65, 63, 60, 62, 66, 64, 63, 68, 62, 60, 68, 69.

मध्यका ऊँचाई ज्ञात कीजिये।

हल : बगीचे के आम के पेडो की ऊँचाई को आरोही क्रम मे अनुविन्यासित (array) करने से निम्न तालिका बनती है.

S. No.	Height (in cm)	S No.	Height (cm)
1	58	9	64
2	59	10	65

3	60	11	66
4	60	12	67
5	62	13	68
6	62	14	68
7	63	15	69
8	63		

बगीचे के सभी पेडो को यदि ऊँचाई के अनुसार एक पक्ति मे अनुविन्यासित किया जाए तो अनुविन्यास उपरोक्त तालिका के अनुसार होगा । सूत्र के अनुसार

$$M = \frac{N+1}{2} = \frac{15+1}{2} = \text{8th item}$$

8th पेड की ऊँचाई 63 cm है ।

सम संख्याओं में मध्यका ज्ञात करना (To find Median in series having even items) : उपरोक्त उदाहरण मे सख्या विषम थी अत: मध्यका सख्या (Median No) ज्ञात हो जाती है और उस क्रम सख्या का मूल्य ही मध्यका है किन्तु जब व्यक्तिगत इकाईयो की सख्या सम (Even) अर्थात् 2 से विभाज्य होती है जैसे कि 8, 10, 12 आदि तो सूत्र द्वारा ज्ञात केन्द्रीय क्रम सख्या पूर्णांक नही होकर क्रमश: 4 5, 5.5, 6.5 आदि होती है । ऐसी क्रम सख्या का मूल्य निश्चित करने के लिए उसके दोनो ओर की दो पूर्ण क्रम सख्याओं के मूल्यो को जोड़कर 2 से भाग दिया जाता है । वही मध्यका का मूल्य होता है ।

जैसे कि $\text{size of 4 5th Item} = \frac{\text{size of 4th Item + 5th Item}}{2}$

सम सख्या होने पर सूत्र को निम्न प्रकार भी लिखा जाता है ।

$$M = \frac{N+1}{2} \text{ Item}$$

M = मध्यका

N = मदो की सख्या

उदाहरण : एक उद्यान मे *Antirrhinum majus* के 10 पौधो पर 5, 7, 6, 9, 8, 6, 3, 5, 8, 6 पुष्प लगे हो तो पुष्पो की मध्यका सख्या ज्ञात कीजिए :

Solution :--

आरोही क्रम में विन्यासित करने पर

क्र० स०	मद मूल्य	क्र० स०	मद मूल्य
1	3	6	6
2	5	7	7

3	5	8	8
4	6	9	8
5	6	10	9

मध्यका = Value of $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item

$= \frac{10+1}{2} = \frac{11}{2} =$ 5.5th Item

Value of 5.5 th item $\frac{\text{Value of 5th item + Value of 6th item}}{2}$

$= \frac{6+6}{2} = \frac{12}{2} =$ 6 पुष्प

खण्डित श्रेणी में मध्यका ज्ञात करना (To Calculate Median from Discrete series) : खण्डित श्रेणी मे मध्यका ज्ञात करने हेतु निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है :

(1) मद मूल्यो (size) को आरोही या अवरोही क्रम मे व्यवस्थित करना।

(2) समक माला मे दी गई आवृतियो की सचयी आवृति (Cumulative frequency) निकालना।

(3) मध्यका ज्ञात करने के लिए सूत्र $\left(\frac{N+1}{2}\right)$ की सहायता ली जाती है। यहाँ N का अर्थ आवृतियो की कुल सख्या से है।

(4) मध्यका मद को सचयी आवृति (Cumulative frequency) मे देखते है। मध्यका मद जिस सचयी आवृति मे आता है उसके सामने वाला पद मूल्य ही मध्यका कहलाता है।

उदाहरण : एक उद्यान में *Lathyrus* के विभिन्न पौधो की ऊँचाई निम्न है तो उनकी मध्यका ऊँचाई ज्ञात करो।

पौधो की ऊचाई (cm)	4	6	8	10	12	14	16
पौधो की सख्या	2	4	5	3	2	1	4

Solution :--

S. No.	Height of Plants (cm.) (X)	No. of plants (f)	Cumulative frequency (C. f)
1	4	2	2
2	6	4	6
3	8	5	11

4	10	3	14
5	12	2	16
6	14	1	17
7	16	4	21

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{ item}$$

$$= \frac{21+1}{2} = \frac{22}{2} = 11^{th} \text{ Item} = 8 \text{ cm}$$

उपर्युक्त सारणी मे सचयी आवृतियो को देखने पर ज्ञात होता है कि 6th इकाई तक ऊँचाई 4-6 cm है । 7th - 11th इकाई तक ऊँचाई 8 cm अत इस समक माला की मध्यका ऊँचाई 8 cm है ।

उदाहरण : एक वनस्पति उद्यान मे *Chrysanthemum* के विभिन्न पादपो पर पुष्पो की सख्या निम्न है –

पुष्पो की सख्या	8	10	12	14	16	18	20
पौधो की सख्या	3	7	12	28	10	9	6

मध्यका ज्ञात करिए

पुष्पों की संख्या	पादपों की संख्या	संचयी आवृति
X	f	C.f
8	3	3
10	7	10
12	12	22
14	28	50
16	10	60
18	9	69
20	6	75

$$\text{Median} = \left(\frac{N+1}{2}\right)^{th} \text{ item}$$

$$\text{Median} = \frac{75+1}{2} = 38^{th} \text{ Item}$$

चूकि 22 वे पौधे तक पुष्पो की सख्या 8, 10, 12 है । 23 वे पौधे से 50 वे पौधे तक सभी 28 पौधो पर पुष्पो की सख्या 14 है । अत. 38 वे पौधे पर भी 14 पुष्प होगे ।

अविच्छिन्न श्रेणी (Continuous series) : सतत् अथवा अविच्छिन्न श्रेणी मे मध्यका ज्ञात करने के लिए निम्न क्रिया विधि काम मे ली जाती है ।

(1) सबसे पहले यह देखना चाहिए की समक माला अपवर्जी (Exclusive) है या समावेशी (Inclusive) । यदि समक माला समावेशी दी हुई हो तो उसे अपवर्जी मे परिवर्तित करना चाहिए ।

(2) इसके बाद साधारण आवृतियो की सहायता से सचयी आवृतियाँ (Cumulative frequency) ज्ञात कीजिए ।

(3) इसके पश्चात् $\frac{N}{2}$ की मदद से मध्यका मद ज्ञात कीजिए । वॉघ (Waugh), मोरोनी (Moroney), क्रॉक्सटन (Croxton) आदि का मत है कि सतत श्रेणी मे मध्यका $\frac{N}{2}$ वे मद का मूल्य होता है न कि $\frac{N+1}{2}$ का जैसा कि खण्डित व व्यक्तिगत श्रेणी मे होता है ।

(4) मध्यका मद जिस सचयी आवृति मे होता है उसी से सम्बन्धित वर्गान्तर, मध्यका वर्ग कहलाता है ।

(5) *मध्यका वर्ग मे मध्यका का निर्धारण अन्तर्गणन निम्न सूत्र की सहायता से किया जाता है –*

$$M = l_1 + \frac{i}{f} \quad (m - C) \text{ or } l_1 + \left\{\frac{l_2 - l_1}{f} \; (m - C)\right\}$$

यहाँ

M = मध्यका

l_1 = मध्यका वर्ग की निम्न सीमा (Lower limit of the median class)

l_2 = मध्यका वर्ग की उच्च सीमा (Upper limit of median class)

f = *मध्यका वर्ग की आवृति* (Frequency of the median class)

m = मध्यका मद $\left(\frac{N}{2}\right)$ (Median item)

C = मध्यका वर्ग से पहले वर्ग की सचयी आवृति (Cummulative frequency of the preceeding class to the median class)

i = मध्यका वर्ग का वर्ग विस्तार (l_2 - l_1) *(Class interval of median class)*

(6) यदि समक माला अवरोही क्रम (Descending order) मे दी गई है तो निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है ।

$$M = l_2 - \frac{i}{f}(m - c)$$

अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series) :

उदाहरण : निम्न सारणी मे मध्यका ज्ञात कीजिए :

Age class (days)	0–5	5–10	10–15	15–20	20–25
No of Plants	5	8	10	9	8

Solution :--

Age in days	No. of Plants (f)	Cumulative frequency (C f)
0–5	5	5
5–10	8	13
10–15	10	23
15–20	9	32
20–25	8	40

$$M = \text{size of } \left(\frac{N}{2}\right)^{th} \text{ item}$$

$$= \frac{40}{2} = 20\text{th Item}$$

20वे मद का मूल्य मध्यका वर्ग 10—15 मे है

$$M = l_1 + \frac{i}{f}\ (m - c)$$

$$M = 10 + \frac{5}{10} \times (20 - 13)$$

$$= 10 + \frac{5}{10} \times 7$$

$$= 10 + 3.5 = 13.5$$

median age is 13.5 days

उदाहरण : 100 गन्ने (*Saccharum officinarum*) के पौधो की ऊँचाई की मध्यका निकालिये

ऊचाई (cm)	0—10	10—20	20—30	30—40	40—50
पौधो की सख्या	5	30	20	10	15

हल :--

ऊंचाई वर्ग (cm मे)	पौधों की संख्या (f)	संचयी आवृति (C f)
0—10	5	5

10—20	30	35
20—30	20	55
30—40	10	65
40—50	15	80

Median = size of $\left(\frac{N}{2}\right)^{th}$ Item = $\frac{80}{2}$ = 40th item

40वे मद का मूल्य 20 30 मध्यका वर्ग में हैं।

$$M = l_1 + \frac{i}{f}(m - c)$$

$$M = 20 + \frac{10}{20}(40 - 35)$$

$$= 20 + \frac{10}{20} \times 5$$

$$= 20 + 2.5$$

$$= 22.5 \text{ cm}$$

Median height is 22.5 cm

उपरोक्त उदाहरण मे समक आरोही (Ascending) क्रम मे दिये गये है यदि ये ही मूल्य अवरोही क्रम मे दिये होते तो सूत्र $M = l_2 - \frac{i}{f}(m - c)$ से गणना की जाती।

ऊचाई वर्ग cm	पौधों की सख्या (f)	सचयी आवृति (C.f)
40—50	15	15
30—40	10	25
20—30	20	45
10—20	30	75
0—10	5	80

मध्यका = size of $\left(\frac{N}{2}\right)^{th}$ Item

$\frac{80}{2}$ = 40th Item

40वे मद का मूल्य 20—30 मध्यका वर्ग मे है।

$$M = l_2 - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$M = 30 - \frac{10}{20}(40 - 25)$$

$$= 30 - \frac{10}{20} \times 15$$

$$= 30 - 7 5$$

$$= 22 5 \text{ cm}$$

Median Height is 22 5 cm

समावेशी श्रेणी (Inclusive series) : सम्मिलित श्रेणी या समावेशी श्रेणी मे मध्यका निकालने से पूर्व सम्मिलित श्रेणी को असम्मिलित श्रेणी मे परिवर्तित कर लेना चाहिए।

उदाहरण : निम्न सारणी मे 182 पौधो की लम्बाई से० मी० मे दी गई है इनकी मध्यका लम्बाई ज्ञात करिए

लम्बाई (cm)	45—49	50—54	55—59	60—64	65—69	70—74	75—79
पौधो की सख्या	2	10	55	21	57	32	5

हल —

लम्बाई वर्ग (cm)	वास्तविक वर्ग सीमाये	आवृति (f)	सचयी आवृति (C f)
45—49	44 5—49 5	2	2
50—54	49 5—54 5	10	12
55—59	54 5—59 5	55	67
60—64	59 5—64 5	21	88
65—69	64 5—69 5	57	145
70—74	69 5—74 5	32	177
75—79	74 5—79 5	5	182

$$M = \text{size of } \frac{N}{2} \text{th Item} = \frac{182}{2} = 91^{th} \text{ Item}$$

91वे मद का मूल्य 65—69 मध्यका वर्ग मे है।

अत $M = l_1 + \left[\frac{i}{f}(m - c)\right]$

$$M = 64.5 + \left[\frac{5}{57}(91 - 88)\right]$$

$$= 64.5 + \frac{5}{57} \times 3$$

$$= 64.5 + 0.26$$

$$M = 64 76 \text{ cm}$$

उदाहरण : निम्नालिखित तालिका मे पीपल के वृक्षो से सम्बन्धित समक दिये गये है। इस समको से माध्यका ज्ञात करिये।

आयु वर्षों में	आवृत्ति (f)
10 वर्ष से नीचे	2
20 — do —	20
30 — do —	65
40 — do —	143
50 — do —	175
60 — do —	208
70 — do —	230
80 — do —	242
90 — do —	250

हल : उपरोक्त प्रश्न मे सचयी आवृति दी गई है, इसे सरल आवृति मे परिवर्तित करना पड़ेगा।

आयु वर्षों में	संचयी आवृति (C. f)	वास्तविक आवृति (f)
0 — 10	2	2
10 — 20	20	18
20 — 30	65	45
30 — 40	143	78
40 — 50	175	32
50 — 60	208	33
60 — 70	230	22
70 — 80	242	12
80 — 90	250	8

मध्यका $= \frac{N}{2}$ अर्थात् $\frac{250}{2} = 125$वे मद का मूल्य

125वा मद 30—40 वर्गान्तर मे है।

अत $M = l_1 + \frac{i}{f}(m - c)$

$M = 30 + \frac{10}{78}(125 - 65)$

$$M = 30 + \frac{10}{78} \times 60$$

$$M = 30 + 7.69$$

$$M = 37.69 \text{ yrs}$$

असमान वर्गान्तर (Unequal class interval) : यदि वर्गान्तर असमान हो तो प्रश्न को हल करने से पूर्व वर्गान्तरो को यथा सम्भव समान कर लेना चाहिए।

उदाहरण : निम्न सारणी मे पौधो की सख्या व पुष्पो की सख्या दी गई है। मध्यका ज्ञात कीजिए

पुष्पों की संख्या	पौधों की सख्या	पुर्नगठित श्रेणी: पुष्पों की संख्या	पौधों की संख्या
0—5	5	0—10	8 (5+3+0)
5—8	3	10—20	10 (4+6+0)
10—13	4	20—30	12
13—19	6	30—40	13 (8+5)
20—30	12	40—50	7 (0+7)
30—35	8		
35—40	5		
45 & above	7		

पुष्पों की संख्या	पौधों की संख्या	सचयी आवृति
0—10	8	8
10—20	10	18
20—30	12	30
30—40	13	43
40—50	7	50

$M = \frac{N}{2}$ अर्थात् $\frac{50}{2} = 25$ वे मद का मूल्य

जो कि 20—30 मध्यका वर्गान्तर मे स्थित है।

$$M = l_1 + \left\{\frac{i}{f}(m—c)\right\}$$

$$= 20 + \frac{10}{12}(25—18)$$

$$= 20 + \frac{10}{78} \times 7$$

$$= 20 + 5.83 = 25.83$$

$M = 25.83$ or 26 Flowers

मध्यका की विशेषताएँ (Characteristics of Median)

मध्यका की निम्न विशेषताएँ है :

(1) मध्यका एक स्थिति सम्बन्धी माध्य है।

(2) मध्यका के मूल्य पर अति सीमान्त इकाईयो (Extreme items) का प्रभाव अत्यन्त कम होता है।

(3) मध्यका का आकलन उस परिस्थिति मे ही किया जा सकता है जबकि श्रेणी की मदो को सख्यात्मक रूप नही दिया जा सकता है।

(4) *अन्य माध्यो की भाँति मध्यका का गणितीय विवेचन सभव नही है।*

(5) यदि मदो की सख्या एवम् मध्यका वर्ग के विषय में सूचनाएँ दी हुई हो तो मध्यका मूल्य का निर्धारण आकड़ो के अपूर्ण होने पर भी हो सकता है।

मध्यका के गुण (Merits of median):

(1) बुद्धिमता, सुन्दरता एवम् स्वस्थता आदि गुणात्मक विशेषताओं (*Qualitative charactreistics*) *के अध्ययन के लिए अन्य माध्यो की* अपेक्षा मध्यका श्रेष्ठ समझा जा सकता है।

(2) मध्यका पर अतिसीमान्त इकाइयो का और साधारण मदो का प्रभाव नही पडता है।

(3) मध्यका को ज्ञात करना सरल व सुविधाजनक रहता है। इसकी गणना, एक साधारण व्यक्ति भी सरलता से समझ सकता है।

(4) *कभी-कभी तो मध्यका की गणना निरीक्षण मात्र से ही की जा सकती है।*

(5) मध्यका को बिन्दु रेखीय पद्धति से भी ज्ञात किया जा सकता है।

(6) मध्यका मूल्य समूह मे एक मूल्य होता है जैसे कि 3, 6, 9, 10, 12 का मध्यका 9 है जो प्रस्तुत समको मे से एक है। समूह का समान्तर माध्य 8 है जो प्रस्तुत समको से अलग है इसलिए कहा जाता है कि मध्यका किसी अक समूह का वास्तविक माध्य होता है।

(7) निश्चित निर्धारण - मध्यका का निर्धारण बिल्कुल निश्चित तथा शुद्ध हो सकता है। प्रत्येक समूह के बिल्कुल मध्य मे स्थित मद मध्यका होता है।

(8) *आवृति अज्ञात होने पर - मध्यका का निर्धारण अन्त के अको की आवृति* ज्ञात न होने पर भी हो सकता है। यदि केवल इतना पता हो कि मदो की कुल सख्या कितनी है।

(9) *वर्गान्तर मे– वर्गान्तर समूह* (Class group) *में भी मध्यका का निर्धारण* सामान्य शुद्धता से हो सकता है। इस प्रकार की स्थिति मे वर्गान्तर का विस्तार बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए।

मध्यका के दोष (Demerits of median)

मध्यका सरल होने के उपरान्त भी दोष रहित नही है, इसमे निम्न दोष या कमियाँ पाई जाती है ।

(1) अक व्यवस्था – मध्यका ज्ञात करने से पूर्व सम्बन्धित मदो को आरोही या अवरोही क्रम मे व्यवस्थित करना पडता है, जो कि कठिन कार्य होता है ।

(2) मध्यका को मदो की सख्या से गुणा करने पर मूल्य का कुल योग ज्ञात नही हो सकता है । यदि पाँच मक्का के भुट्टो (*Maize cobs*) मे क्रमश 50 80 100, 110 तथा 180 मक्का के दाने है तो इसका मध्यका 100 होगा । इसे 5 से गुणा करने पर 500 दाने हुए जबकि कुल 490 दाने ही है । इस समूह का समान्तर माध्य 94 दाने है और इसे 5 से गुणा करने पर 470 दाने ही आता है ।

(3) भ्रामक परिणाम यदि मदो के विस्तार मे बहुत भिन्नता है तो मध्यका बहुत भ्रामक परिणाम देता है जैसे यदि 5 कृषको की कृषि पैदावार 20, 100 400 500 तथा 1000 quintal गेहूँ हो तो मध्यका 400 q होगा। जो सर्वदा भ्रामक है ।

(4) मध्यका आगे गणितीय रीतियो मे प्रयोग के लिए अनुपयुक्त है ।

(5) प्रतिनिधि नही अनेक परिस्थितियो मे मध्यका प्रतिनिधि अक प्रस्तुत नही करता है जैसे पाँच क्यारियो मे क्रमश 50, 100, 200, 500 व 600 पौधे लगे है । इस दशा मे मध्यका पौधो की सख्या 200 है जो कि उचित प्रतीत नही होता ।

(6) न्यादर्श के उच्चावचनो से प्रभावित मध्यका न्यादर्श के उच्चावचनो से काफी प्रभावित है । एक ही समग्र से 10 तथा 20 इकाइयो के दो-दो पृथक न्यादर्श (Sample) लेने पर उनके मध्यका मे अन्तर होने की सम्भावना होती है । जबकि न्यादर्श मे मदो की सख्या मे अन्तर होने पर समान्तर माध्य पर अधिक प्रभाव नही पडता है ।

(7) आन्तर्गणन की मान्यताऐं अविच्छिन्न श्रेणी मे मध्यका निकालने के लिए अन्तर्गणन के सूत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि इस मान्यता पर आधारित है कि एक वर्ग की समस्त आवृत्तियाँ पूरे वर्ग मे समान रूप से फैली है किन्तु व्यवहार मे ऐसा होने पर परिणाम त्रुटिपूर्ण होते है ।

(8) यदि बडे और छोटे मदो को समान भार देना हो या न्यूनाधिक भार देने हो तो यह माध्य अनुपयुक्त है । क्योंकि यह छोटे तथा बड़े दोनो मदो को छोड़ देता है ।

बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)

बहुलक या भूयिष्ठक को अंग्रेजी मे 'Mode' कहते है। "Mode" शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के शब्द "La mode" से हुई है जिसका अर्थ ही फैशन या रिवाज। कीनी व कीपिग (Kenney व Keeping) के अनुसार सांख्यिकी मे बहुलक उस मूल्य को कहते है जो कि समक माला मे सबसे अधिक बार आता है अर्थात् जिसकी सबसे अधिक आवृत्ति हो।

बौडिंगटन (Boddington) के शब्दो मे "भूयिष्ठक या बहुलक वह रूप, प्रकार अथवा मूल्य है जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो या भूयिष्ठक सर्वाधिक घनत्व की स्थिति (position of greatest density) या मूल्यो के अधिकतम सकेन्द्रण के बिन्दु (Point of highest concentration of values) को कहते है।

क्राक्सटन एवम् काउडेन (Croxton & Cowden) के मतानुसार एक समक बटन का भूयिष्ठक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयो के अधिक से अधिक सकेन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है। इसे मूल्यो की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी माना जा सकता है।

परिभाषा :-- आकडो अथवा श्रेणी मे चर का वह मान जो सबसे अधिक बार आया हो (सबसे अधिक पुनरावृत्त हुआ हो) अर्थात् जिसकी बारम्बारता सबसे अधिक हो वह बहुलक या भूयिष्ठक (Mode) कहलाता है। इसे प्राय सकेताक्षर 'Z' से प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरणार्थ मानाकि किसी बॉस *(Bamboosa bamboo)* प्लान्टेशन मे बॉस मे पर्व सन्धियो की *सख्या* निम्न है .-- 10, 15, 17, 16, 13, 10, 11, 15, 10, 12, 15, 10, 11, 10 है। उपरोक्त समक माला मे सबसे अधिक पुनरावृत्ति (5 बार) अक 10 की हुई है अत. इस समक सग्रह का बहुलक 10 है।

भूयिष्ठक की गणना (Calculation of mode)

व्यक्तिगत श्रेणी (Individual series) :-- अवर्गीकृत समक श्रेणी अथवा व्यक्तिगत श्रेणी मे भूयिष्ठक या बहुलक निकालने की तीन विधियाँ है :--

(i) निरीक्षण द्वारा (by inspection)

(ii) व्यक्तिगत श्रेणी को खण्डित या सतत् श्रेणी मे परिवर्तित करके (by converting individual series into discrete or continuous series)

(iii) समान्तर माध्य (Mean) और मध्यका (Median) के अन्तर्सम्बन्ध की सहायता से बहुलक का अनुमान।

(i) निरीक्षण द्वारा (by inspection)

अवर्गीकृत तथ्यो मे निरीक्षण करके यह निश्चित किया जाता है कि कौन सा मूल्य सबसे अधिक बार आता है अर्थात् कौन सा मूल्य सबसे अधिक प्रचलित है। जो मूल्य सर्वाधिक प्रचलित होता है वही उन तथ्यो का बहुलक मूल्य होता है। इस विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब आवृतियाँ नियमित होतीं है, अर्थात् प्रारम्भ मे बढ़ते क्रम मे हो, सारणी के मध्य मे अधिकतम हो और फिर घटने लगे।

उदाहरण :-- *तीन उद्यानो के पौधो की सख्याओं के समूह के लिए बहुलक ज्ञात करिये :--*

(a) 30, 50, 20, 60, 50, 90, 50, 20, 80, 60, 20, 30, 50, 40, 70

(b) 516, 487, 533, 495, 489, 516, 520, 546, 540, 533

(c) 80, 110, 40, 30, 20, 50, 100, 60, 40, 10, 100, 80, 120, 60, 50, 70

हल :--

(a) 50 सख्या सबसे अधिक (चार) बार आई है, अत: भूयिष्ठक = 50 है।

(b) 516 व 533 दोनो ही सख्याये दो दो बार आवृत्त हुई है अत: यहाँ पर दो बहुलक है। इस प्रकार की श्रेणी को द्वि बहुलक (Bi modal) श्रेणी कहते है।

(c) 40, 50, 60, 80 तथा 100 प्रत्येक सख्याऐ दो दो बार आवृत्त हुई है। हम यह कह सकते है कि यहाँ पर पाँच बहुलक है। इसे बहु भूयिष्ठक (Multi modal) श्रेणी कहते है। इस स्थिति मे यहाँ यह कहना अधिक उचित होगा कि इस श्रेणी मे सुस्पष्ट बहुलक विद्यमान नही है।

(ii) **अवर्गीकृत तथ्यों को वर्गीकृत करके** -- *यदि प्रस्तुत मूल्यो की सख्या बहुत अधिक* होती है तो बहुलक का निरीक्षण द्वारा निर्धारण करना सरल नही होता है। ऐसी परिस्थिति मे व्यक्तिगत मूल्यो को आवृत्ति वितरण के रूप मे खण्डित या अविच्छिन्न श्रेणी मे परिवर्तन कर लेते है तत्पश्तात् खण्डित या सतत् श्रेणी से बहुल्क का निर्धारण करते है। बहुलक ज्ञात करने की यह रीति अधिक विश्वसनीय एवम् तर्क सगत है।

(iii) **माध्यों के औसत अन्तर्सम्बन्ध द्वारा :** यदि समक वितरण सममित (Regular or symmetrical) है अथवा आशिक रूप से विषम (Asymmetrical) है तो सम्भावित बहुलक मूल्य का निर्धारण इस विधि द्वारा किया जा सकता है। एक सममित समक वितरण मे समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक ($\overline{X}$, M, Z) का मूल्य समान होता है अर्थात् ($\overline{X}$ = M = Z); यदि वितरण आशिक रूप से विषम या असममित होतो इन तीनो माध्यो के मध्य औसत सम्बन्ध इस प्रकार होता है :--

$$(\overline{X} - Z) = 3(\overline{X} - M)$$

or $$(\overline{X} - Z) = (3\overline{X} - 3M)$$

or $$Z = 3M - 2\overline{X}$$

खण्डित श्रेणी में बहुलक ज्ञात करना (To find out mode in a discrete series) : खण्डित श्रेणी मे बहुलक निरीक्षण द्वारा अथवा समूहन विधि द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

समूहन विधि (Grouping method) : *जब श्रेणी मे अनियमितता हो अथवा दो या इससे अधिक मूल्यो की आवृत्ति सर्वाधिक हो तो यह निश्चित करना कठिन होता*

है कि किस मूल्य को बहुलक माना जाये । इस स्थिति मे "समूहीकरण द्वारा" बहुलक ज्ञात करना उचित रहता है । समूहीकरण रीति द्वारा बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न तीन कार्य करने होते है .--

(1) समूहीकरण सारणी बनाना (Grouping Table)

(2) विश्लेषण सारणी बनाना (Analysis Table)

(3) बहुलक ज्ञात करना (Mode)

(i) **समूहीकरण सारणी बनाना (Grouping Table)** यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समूहीकरण सदैव आवृत्ति (Frequencies) का ही किया जाता है न कि मूल्यो का इसके लिए सामान्यतः 6 कॉलम बनाये जाते है, जब तक कि *अधिक कॉलम बनाना अत्यन्त आवश्यक न हो ।*

(1) प्रथम कॉलम मे प्रश्न मे दी हुई आवृत्तियाँ ही लिखी जाती है ।

(2) द्वितीय कॉलम मे प्रथम आवृत्ति से दो दो आवृत्तियो को जोड़कर लिखा जाता है, और अन्त मे एक ही आवृत्ति बचे तो उसे छोड़ दिया जाता है ।

(3) तृतीय कॉलम मे प्रथम आवृत्ति को छोडकर शेष दो दो आवृत्तियो को जोडकर लिखा जाता है ।

(4) चतुर्थ कॉलम मे प्रथम आवृत्ति से तीन-तीन आवृत्तियो का योग करके योग फल लिखा जाता है ।

(5) पचम कॉलम मे प्रथम आवृत्ति को छोड़कर तीन-तीन आवृत्ति को जोड़कर लिखा जाता है ।

(6) षष्ठम् कॉलम मे प्रथम दो आवृत्ति को छोड़कर तीन-तीन आवृत्ति को जोडकर योग फल लिखा जाता है ।

इस प्रकार समूहन करने के बाद प्रत्येक कॉलम की अधिकतम सख्या को रेखाकित (Under line) कर दिया जाता है तथा उन अधिकतम आवृत्तियो के चर मूल्यो पर चिन्ह लगाकर उनकी गणना कर ली जाती है ।

(2) **विश्लेषण सारणी (Analysis Table) :** *यह सारणी उपर्युक्त सारणी मे रेखाकित* (Under lined) सख्याओं के आधार पर बनाई जाती है जिसका प्रारूप निम्न है ।

(Analysis Table)

कॉलम संख्या (Column No.)	अधिकतम आवृति वाले पद का आकार (Size of item containing maximum frequency)									
1										
2										
3										
4										
5										
6										

(3) **बहुलक ज्ञात करना (To find out mode) :** बहुलक ज्ञात करने हेतु उपर्युक्त विश्लेषण सारणी से वह मद या मूल्य निकाला जाता है जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक है। यही मद या मूल्य बहुलक होता है।

उदाहरण : एक पादप विक्रेता ने बॉगनविलिया (*Bougainvillia*) के पौधे निम्न समकों के अनुसार विक्रय किये। प्राप्त समको से बहुलक की गणना करिये।

Age of Plants (in days)	1	2	3	4	5	6	7	8
Plants sold	4	5	7	6	8	7	8	5

हल : इस प्रश्न की सारणी देखने पर ज्ञात होता है कि 5 व 8 दोनो ही आयु वर्ग के पौधो की आवृत्तियाँ 8-8 है अत: निरीक्षण रीति द्वारा यह निश्चित करना कठिन है कि किस आवृत्ति का मूल्य बहुलक है अत. इस स्थिति मे समूहन रीति (Grouping method) द्वारा बहुलक ज्ञात करना होगा।

Grouping Table

Age of Plants (in days)	No. of Plants sold (f)	Grouping frequencies by Twos		by Three's		
	1	2	3	4	5	6
1	4	9				
2	5		12	16		
3	7	13			18	
4	6		14			21
5	8	15		21		
6	7		15		23	
7	8					20
8	5	19				

इस सारणी मे प्रथम कॉलम मे प्रश्न मे दी गई आवृत्तियाँ लिखी गई है व अधिकतम आवृत्तियो को रेखाकित कर दिया गया है। दूसरे कॉलम मे प्रथम कॉलम की दो-दो आवृत्तियो का योग लिखा गया है। तीसरे कॉलम मे प्रथम आवृत्ति को छोड़कर दो-दो आवृत्तियो का योग लिखा गया है। चौथे कॉलम मे प्रथम कॉलम के तीन-तीन आवृत्तियो का योग लिखा गया है। पाँचवे व छठे कॉलम मे भी तीन-तीन आवृत्तियो का योग लिखा गया है किन्तु प्रथम, एवम् प्रथम व द्वितीय आवृत्तियो को क्रमश: पाँचवे और छठे कॉलम मे छोड़ा गया है। सभी कॉलम (1 से 6 तक) मे अधिकतम योग के समूह को रेखाकित कर दिया गया है।

अब बहुलक ज्ञात करने के लिए यह देखना आवश्यक है कि समूहो मे कौनसी आवृत्ति सबसे अधिक बार पुनरावृत्त हुई है यह विश्लेषण सारणी द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि कौन सा मूल्य बहुलक है।

Analysis Table

कॉलम संख्या (Column No.)	अधिकतम आवृति वाले मद (size of item containing maximum frequency)						
1					5		7
2					5	6	
3						6	7
4				4	5	6	
5					5	6	7
6			3	4	5		
योग	•	•	1.	2	5	.4	3

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि आकार 5 सबसे अधिक बार अर्थात् 5 बार आवृत्त हुआ है, अत. पौधो की आयु (Age of plant) 5 days ही बहुलक है। z = 5

बहुलक ज्ञात करने की दूसरी विधि – खण्डित श्रेणी मे बहुलक ज्ञात करने के लिए समूहन रीति ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु कभी-कभी सक्षिप्त व सरल विधि अपनाई जा सकती है। इसमे सबसे अधिक आवृत्तियो के आगे और पीछे की आवृत्तियो का योग मालूम करते है और जिन तीनो का योग अधिक होता है उनका मूल्य ही बहुलक होगा।

पिछले उदाहरण को इस प्रकार हल किया जा सकता है :

सम्भावित बहुलक मद	5	7
बहुलक मूल्य से पहले की आवृति	6	7
बहुलक मूल्य की आवृति	8	8
बहुलक मूल्य के बाद की आवृति	7	5
आवृत्तियो का योग	21	20

अत बहुलक 5 है न कि 7।

यह भी सम्भव है कि आवृत्तियो का कुल योग बराबर ही हो जाये। ऐसी स्थिति मे खण्डित श्रेणी मे बहुलक ज्ञात करने हेतु माध्यो के अन्तर्सम्बन्ध विधि ($Z=3m-2\bar{X}$) का प्रयोग किया जाता है।

कभी-कभी आवृत्ति वितरण की बनावट इस प्रकार होती है कि अधिकतम आवृत्ति वाला मूल्य बहुलक नही होता ऐसी स्थिति मे समूहीकरण करने पर ही बहुलक मूल्य का निर्धारण सही रूप से किया जा सकता है।

उदाहरण : एक उद्यान मे पाये जाने वाले विभिन्न पौधो की ऊँचाई और आवृत्ति बंटन निम्नानुसार है तो प्राप्त समको से बहुलक की गणना करिये।

पौधों की ऊँचाई (cm)	आवृत्ति	पौधों की ऊँचाई (cm)	आवृत्ति
1	2	7	15
2	3	8	14
3	4	9	13
4	5	10	8
5	7	11	5
6	9	—	—

हल :

पौधों की ऊँचाई	आवृत्ति	समूहन (B)					विश्लेषण सारणी कॉलम (C)	
	(A)	दो-दो के जोड़े		तीन-तीन के जोड़े				
	1	2	3	4	5	6		
1	2	5		9				
2	3		7		12			
3	4	9				16		
4	5		12	21				
5	7	16			31			
6	9		24			38	|	1
7	15	29		42			||||	4
8	14		27		35		卌	5
9	13	21				26	|||	3
10	8		13				|	1
11	5							

विश्लेषण सारणी

कॉलम संख्या	अधिकतम आवृति वाले मद										
	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1							7				
2							7	8			
3								8	9		
4							7	8	9		
5								8	9	10	
6						6	7	8			
योग						1	4	5	3	1	

पृथक से विश्लेषण सारणी बनाने के बजाय समूहन वाली सारणी मे ही एक कॉलम (c) और बढ़ाने से हमारा काम चल सकता है। जैसा कि उपरोक्त समूहन तालिका के साथ किया है। इससे स्थान व समय की बचत होती है। इसकी रीति सरल है। प्रथम कॉलम मे सर्वाधिक आवृत्ति 15 है जिसका मूल्य 7 है। अत. विश्लेषण सारणी कॉलम (c) मे ठीक (7वें) वर्ग के सम्मुख मिलान तालिका (Tally sheet) की तरह एक छोटी सी उर्ध्व रेखा (I) खीच देते है। द्वितीय कॉलम मे सर्वाधिक आवृत्ति 29 है जो 15 व 14 का योग है। 15 का मूल्य 7वे वर्ग मे और 14 का मूल्य 8वे वर्ग मे है अत: कॉलम (c) मे इन दोनो वर्गों के सामने एक एक छोटी सी रेखा खीच देते है। इस प्रकार से प्रत्येक आवृत्ति के कॉलम मे सर्वाधिक आवृति वाले वर्ग या वर्गों के सम्मुख रेखाऐ खीच देते है। यदि तीसरे कॉलम मे किसी वर्ग के सामने चार से अधिक रेखाऐं खीचनी पडे तो पाँचवी रेखा को खडी न खीच कर चारो खडी रेखाओं को पाँचवी तिरछी रेखा (IIII) से काटते हुए खीचते है। अब इन खडी रेखाओं को गिन कर इनका योग उनके सम्मुख लिख देते है जिस वर्ग के सम्मुख सबसे अधिक रेखाऐ होती है वही बहुलक वर्ग होता है।

उपर्युक्त प्रश्न के अवलोकन से सबसे अधिक आवृत्ति वाला मूल्य 7 दिखाई देता है किन्तु समूहीकरण विधि द्वारा यह ज्ञात होता है कि मूल्य 8 की आवृत्ति सबसे अधिक बार अर्थात् 5 बार आई है अत. बहुलक 8 होगा क्योंकि इसी के पास आवृत्तियो का केन्द्रीयकरण अधिक है।

अखण्डित या सतत् या अविछिन्न (Continuous series) मे बहुलक ज्ञात करना – अखण्डित श्रेणी मे बहुलक निश्चित करते समय सर्वप्रथम निरीक्षण द्वारा या समूहीकरण विधि द्वारा सबसे अधिक आवृत्ति वाले मद को बहुलक वर्ग के लिए चुन लेंगे। यदि आवृत्ति नियमित रूप से घटती बढ़ती हो तो बहुलक वर्ग को निश्चित करना सरल है परन्तु आवृत्तियाँ अनियमित रूप से घटती बढ़ती हो तो समूहीकरण विधि द्वारा बहुलक वर्ग को ज्ञात करेगे। बहुलक वर्ग मे बहुलक मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रो मे से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है।

(i) $$Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i \text{ (ignoring minus sign)}$$

श्रेणी के आरोही क्रम मे होने पर

(ii) $$Z = l_2 - \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i \text{ (ignoring minus sign)}$$

श्रेणी के अवरोही क्रम मे होने पर

(iii) $$Z = l_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

श्रेणी के आरोही क्रम में होने पर

(iv) $$Z = l_2 - \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

श्रेणी के अवरोही क्रम में होने पर

जबाके Z = बहुलक या भूयिष्ठक (Mode)

l_1 = बहुलक वर्ग की अधर सीमा (Lower limit of modal group)

l_2 = बहुलक वर्ग की ऊपरी सीमा

(Upper limit of modal group)

f_1 = बहुलक वर्ग की आवृत्ति

(Frequency of the modal group)

f_2 = बहुलक वर्ग के बाद वाले वर्ग की आवृत्ति

(Frequency of group succeeding the modal group)

f_0 = बहुलक वर्ग से पहले वाले वर्ग की आवृत्ति

(Frequency of the group preceeding the modal group)

i = बहुलक वर्ग का वर्ग विस्तार ($l_2 - l_1$)

(Class interval of modal group)

Δ_1 = प्रथम अन्तर (Delta) = Difference one (f_1 - f_0)

Δ_2 = द्वितीय अन्तर (Delta) = Difference two (f_1 - f_2)

अपवर्जी श्रेणी (Exclusive series) :

उदाहरण : एक खेत मे गन्ने के पौधो मे पर्व सन्धियो की सख्या और आवृत्ति निम्न सारणी के अनुसार है तो प्राप्त आकडो की सहायता से बहुलक की गणना करिये ।

पर्व सन्धियो की सख्या	0—5	5—10	10—15	15—20	20—25	25—30	30—35
पौधो की सख्या	3	10	22	14	4	2	1

हल :

पर्व सन्धियों की संख्या	पौधों की संख्या	समूहन					विश्लेषण सारणी	
		दो-दो के जोड़े		तीन-तीन के जोड़े				
		2	3	4	5	6		
0—5	3	13					I	1
5—10	10		(32)	(35)			III	3
10—15	(22)	(36)			(46)		IIIII I	6
15—20	14		18			(40)	III	3
20—25	4	6		20			I	1
25—30	2		3		7			
30—35	1							

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि 10-15 पर्व सन्धियो वाला वर्ग सबसे अधिक बार आवृत्त होता है अत: 10-15 वर्गान्तर ही बहुलक वर्ग है । बहुलक मूल्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करेगे ।

$$Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$$

$l_1 =$ 10 (Lower limit of modal group)

$\Delta_1 = (f_1 - f_0) = 22 - 10 = 12$

$\Delta_2 = (f_1 - f_2) = 22 - 14 = 8$

$i =$ class interval = 5

$$Z = 10 + \left(\frac{12}{12 + 8} \times 5 \right)$$

$$= 10 + \frac{60}{20} = 10 + 3$$

$$= 13$$

$Z =$ 13 पर्व सन्धियाँ ।

सम्मिलित श्रेणी (Inclusive series) में बहुलक ज्ञात करना : सम्मिलित या समावेशी श्रेणी मे बहुलक निकालने के लिए भी उपरोक्त सूत्र का ही प्रयोग किया जाता है किन्तु जिस वर्गान्तर मे बहुलक होता है उस वर्गान्तर की अपवर्जी (Exclusive) वर्ग सीमाऐं ज्ञात कर लेनी चाहिए ।

उदाहरण : निम्न सारणी मे बाँस के पेडो की लम्बाई दी गई है । इस सारणी से बहुलक ज्ञात करिये ।

लम्बाई (cm)	आवृत्ति
45—49	2
50—54	10
55—59	55
60—64	21
65—69	57
70—74	32
75—79	5

उपरोक्त सारणी से यह स्पष्ट है कि वर्गान्तर 65-69 की आवृत्ति (57) ही सर्वाधिक है अतः बहुलक 65-69 वर्गान्तर मे ही है । इस वर्ग की वास्तविक सीमाऐं 64.5 - 69.5 है । अधर सीमा 64.5 है ।

अत बहुलक $Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$

$\Delta_1 = 57 - 21 = 36$

$\Delta_2 = 57 - 32 = 25$

$i = 5$

$$Z = 64.5 + \frac{36}{36 + 25} \times 5$$

$$= \quad 64.5 + \frac{180}{61}$$

$$= \quad 64.5 + 2.95$$

$$= \quad 67.45 \text{ cm}$$

उदाहरण : एक उद्यान मे विभिन्न वृक्ष निम्न आयु वर्ग मे है । दिये गये समको से बहुलक ज्ञात करिये

आयु वर्ग (वर्षों में)	वृक्ष आवृत्ति
55—60	6
50—55	7
45—50	12
40—45	15
35—40	18
30—35	10
25—30	7
20—25	5

हल : उपरोक्त प्रश्न मे मूल्य अवरोही क्रम (Desending order) मे दिये गये है । अत सूत्र

$$Z = \quad l_2 - \left(\frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times \quad i\right)$$ का प्रयोग किया जायेगा ।

आयु वर्ग (वर्षों में)		आवृत्ति					सर्वाधिक आवृत्ति के वर्गान्तर की संख्या	
		दो-दो के जोड़े		तीन- तीन के जोड़े				
	1	2	3	4	5	6		
55—60	6	13						
50—55	7		19	25				
45—50	12	27			34		I	1
40—45	15		33			45	III	3
35—40	18	28		43			IIIII I	6
30—35	10		17		35		III	3
25—30	7	12				22	I	1
20—25	5							

बहुलक वर्गान्तर 35—40 है ।

अब सूत्र $Z = \quad l_2 - \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$ का प्रयोग करने पर

$l_2 =$ 40 (*Upper limit of the modal class*)

$\Delta_1 =$ $(f_1 - f_2)$ 18 — 15 = 3

$\Delta_2 =$ $(f_1 - f_2)$ 18 — 10 = 8

$i =$ 5 (Class interval)

$$Z = 40 - \frac{3}{3+8} \times 5$$

$$= 40 - \frac{15}{11}$$

$$= 40 - 1.36 = 38.64$$

Z = 38.64 वर्ष

असमान वर्ग विस्तार (Unequal class interval) : जब श्रेणी की सरचना असमान वर्गान्तरो के आधार पर की गई हो तो बहुलक का निर्धारण करते समय सर्वप्रथम उस श्रेणी को सशोधित करके वर्गान्तर को समान बना लेना उचित रहता है। तत्पश्चात् इस प्रकार सशोधित श्रेणी से बहुलक ज्ञात करना चाहिए।

चूकि बहुलक अपनी आसपास की आवृत्तियो से प्रभावित होता है, अत: यथासम्भव बहुलक का निर्धारण समान वर्गान्तर वाली श्रेणी मे ही करना अधिक उपयुक्त रहता है।

उदाहरण : सूबबूल *(Leucaena leucocephala)* की फलियो मे निम्न बीज सख्या वर्ग थे और उनका आवृत्ति बटन भी निम्नानुसार था प्राप्त आकडो (Data) से बहुलक ज्ञात करिये।

बीज सख्या	0—5	5—7	7—9	9—10	10—12	12—15
आवृत्ति (फलियाँ)	2	3	1	2	9	6
बीज सख्या	15—17	17—19	19—20	20—25	—	—
आवृत्ति (फलियाँ)	2	4	2	6	—	—

हल : सर्व प्रथम असमान वर्गान्तर श्रेणी को सशोधित करके वर्ग विस्तार समान कर लिये जाते है। प्रथम वर्गान्तर 0-5, दूसरा 5-10, तीसरा 10-15 और इसी प्रकार अन्तिम वर्गान्तर 20-25 तक के वर्गान्तर बना लेते है। जैसा कि नीचे दर्शाया गया है।

बीज की सख्या	0—5	5—10	10—15	15—20	20—25
आवृत्ति	2	3 + 1 + 2 = 6	9 + 6 = 15	2 + 4 + 2 = 8	6

इस श्रेणी के निरीक्षण से पता चलता है कि श्रेणी का 10-15 बीज सख्याओं वाला वर्ग बहुलक वर्ग है, क्योंकि इसी वर्ग की आवृत्ति सर्वाधिक है। अब सूत्र :

$$Z = l_1 + \frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2} \times i$$ द्वारा बहुलक मूल्य का आन्तर्गणन करेगे।

$l_1 =$ 10 (Lower limit of modal group)

$\Delta_1 =$ $(f_1 - f_0) = 15 - 6 = 9$

$\Delta_2 =$ $(f_1 - f_2) = 15 - 8 = 7$

$i =$ 5 (Class interval)

$$Z = 10 + \left(\frac{9}{9+7} \times 5\right)$$

$$= \quad 10 + \frac{45}{16} \text{ or } 10 + 2\,81$$

$$= \quad 12\,81 \text{ बीज or } 13 \text{ बीज}$$

बहुलक की मुख्य विशेषताएँ (Principal chraracteristics of mode) :

(1) बहुलक मूल्य पर असाधारण इकाइयो का प्रभाव नही पड़ता है अर्थात् इस माध्य पर श्रेणी के उच्चतम व निम्नतम अको का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

(2) वास्तविक बहुलक के निर्धारण के लिए पर्याप्त गणना की आवश्यकता होती है। यदि आवृत्ति वितरण अनियमित है तो बहुलक का निर्धारण करना भी कठिन होता है।

(3) बहुलक सर्वाधिक घनत्व वाला बिन्दु होता है, अत: श्रेणी के वितरण का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है।

(4) बहुलक के लिए बीजगणितीय विवेचन करना सम्भव नही होता है।

(5) सन्निकटित बहुलक आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

बहुलक के गुण (Merits of mode) :

(1) **सरलता :** बहुलक को समझना व प्रयोग करना सरल है। मध्यका (Median) की भाति बहुलक भी बहुधा निरीक्षण मात्र से ज्ञात हो जाता है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह केवल खण्डित श्रेणी (Discrete series) मे ही सम्भव है।

(2) **श्रेष्ठ प्रतिनिधित्व :** बहुलक मूल्य के चारो ओर समक श्रेणी के अधिकतम मूल्य केन्द्रित होते है अत: यह समक सग्रह के लक्षणो तथा रचना पर भी प्रकाश डालता है।

(3) **थोड़े मदों की जानकारी से भी बहुलक की गणना सम्भव :** बहुलक की गणना के लिए सभी मदो की जानकारी की आवश्यकता नही रहती, केवल बहुलक वर्ग के आसपास की आवृत्तियाँ ज्ञात होनी चाहिए।

(4) **बिन्दु रेखीय प्रदर्शन सम्भव :** बहुलक का निर्धारण रेखा चित्र से भी सम्भव है।

(5) **चरम मूल्यों से कम प्रभावित :** इसके मूल्यो पर चरम मदो (Extreme items) का प्रभाव नही पड़ता क्योंकि यह सभी मूल्यो पर आधारित नही होता है।

(6) **सर्वाधिक उपयोगी मूल्य :** बहुलक एक व्यावहारिक माध्य है जिसका सार्व भौमिक उपयोग है।

(7) **विभिन्न न्यादर्शों में समान निष्कर्ष :** न्यादर्श के कम या अधिक होने पर भी बहुलक वही रहता है। यह गुण अन्य माध्यो मे नही होता हैं।

बहुलक के दोष (Demerits of mode) :--

(1) **अनिश्चित तथा अस्पष्ट :** बहुलक ज्ञात करना अनिश्चित तथा अस्पष्ट रहता है। कभी-कभी एक ही समक श्रेणी मे एक से अधिक बहुलक उपलब्ध होते हैं।

(2) **चरम मूल्यों का महत्त्व नहीं :** बहुलक मे चरम मूल्यो को कोई महत्त्व नही दिया जाता है । अत जहाँ चरम मूल्यो को महत्त्व देना हो यह माध्य अनुपयोगी रहता है ।

(3) **बीजगणितीय विवेचन कठिन :** बहुलक का बीजगणितीय विवेचन नही किया जा सकता, अत यह अपूर्ण है ।

(4) **वर्ग-विस्तार का अधिक प्रभाव :** बहुलक की गणना मे वर्ग विस्तार का बहुत प्रभाव पडता है । भिन्न-भिन्न वर्ग-विस्तार के आधार पर वर्गीकरण करने पर बहुलक भी भिन्न-भिन्न आते है ।

(5) **कुल योग प्राप्त करना कठिन :** बहुलक को यदि मदो की सख्या से गुणा किया जाए तो मदो के कुल मूल्यो का योग प्राप्त नही किया जा सकता ।

(6) **भ्रम पूर्ण निष्कर्ष :** बहुलक, आवृत्तियो पर निर्भर करता है अत कभी-कभी भ्रमपूर्ण निष्कर्ष भी निकल जाते है । यदि किसी उद्यान मे 100 पौधो मे से 5 पौधो पर 10 पुष्प लगे है और शेष 95 पौधो पर 10 से अधिक पुष्प लगे है किन्तु प्रत्येक पर पुष्पो की सख्या पृथक पृथक है तो बहुलक पुष्पो की सख्या 10 होगी जो निश्चय ही औसत पुष्पो की सख्या नही है ।

(7) **क्रमानुसार रखना :** इसमे मदो को क्रमानुसार रखना आवश्यक है इसके बिना बहुलक ज्ञात करना सम्भव नही होता है ।

केन्द्रीय प्रवृत्ति की विभिन्न मापों का तुलनात्मक अध्ययन

(Comparative study of different measures of Central Tendencies)

	समान्तर माध्य (Arithmetic mean)	मध्यका (Median)	बहुलक (Mode)
1	दृढ़त परिभाषित ।	दृढ़त परिभाषित ।	दृढ़त परिभाषित ।
2.	गणितीय क्रियाओं के योग्य ।	गणितीय क्रियाओं के योग्य नही ।	गणितीय क्रिया के योग्य नही ।
3	सभी परीक्षणो पर आधारित ।	सभी परीक्षणो पर आधारित नही ।	सभी परीक्षणो पर आधारित नही ।
4	मध्यका व बहुलक की तुलना मे गणना सरल नही ।	गणना सरल है ।	गणना सबसे सरल है ।
5	निरीक्षण मात्र से गणना सम्भव नही ।	निरीक्षण मात्र से गणना सम्भव ।	निरीक्षण मात्र से गणना सम्भव ।

6	अन्तिम वर्ग के सिरे खुले होने पर गणना नही हो सकती है।	सिरे खुले होने पर भी गणना सम्भव	सिरे खुले होने पर भी गणना सम्भव
7	इसका मान प्राय श्रेणी का मद नही होता है।	यह श्रेणी का मद होता है।	यह श्रेणी का मद नही होता है।
8	प्रति दर्शों (sample) के उतार-चढ़ाव से अधिक प्रभावित नही होता है।	उतार चढ़ाव से प्रभावित हो सकता है।	प्रतिदर्शों के उतार -चढ़ाव से प्रभावित हो सकता है।
9	यह वह मान है जो मदो के लिए सम्भावित है।	यह वह मान है जो कुल बारम्बारता को दो बराबर भागो मे बाँटता है।	यह सबसे अधिक विख्यात (popular) मान देता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) केन्द्रीय प्रवृत्ति से क्या अभिप्राय है ? इसके मापने की विभिन्न रीतियो का वर्णन कीजिए।

(2) केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मापो का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

(3) 'साख्यिकीय माध्य' क्या है ? एक आदर्श माध्य की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

(4) (i) समान्तर माध्य की परिभाषा दीजिए एवम् इसके गुण व दोष लिखिये।
(ii) बहुलक की परिभाषा दीजिए तथा इसके दोष लिखिये।

(5) विभिन्न माध्यो के गुणो, दोषो तथा उपयोगो पर प्रकाश डालिए।

(6) एक उद्यान मे निम्न ऊँचाई (cm) के 10 पौधे पाये जाते है तो उनकी समान्तर माध्य ऊँचाई ज्ञात करिये।
14.2 cm, 13 5, 14 6, 13 7, 14.5, 15 0, 13.2, 14 5, 12 1, 16.5
(उत्तर 14 21 cm)

(7) एक वन मे विभिन्न वृक्ष निम्न ऊँचाई (ft.) के है तो प्राप्त आकड़ो की सहायता से मध्यका तथा बहुलक और समान्तर माध्य की गणना करिये।
25 ft., 15, 23, 40, 27, 25, 23, 25, 20
(उत्तर बहुलक 25, मध्यका 25 व समान्तर माध्य 24 77)

(8) निम्न तालिका मे पपीते *(Carica papaya)* के विभिन्न पेड़ो पर पाये पपीतो की सख्या दी गयी है, उनका मध्यका ज्ञात करिये —

पपीतो की सख्या	20	24	30	32	35	28	26
पेड़ो की सख्या	3	4	9	7	2	8	12

(उत्तर = 28 पपीते)

(9) निम्न सारणी मे सन्तरे के कुछ पेडो पर सन्तरो की सख्या दी गयी है। उनका स० माध्य, मध्यका व बहुलक ज्ञात करिये –

सन्तरो की सख्या	(10—25)	(25—40)	(40—55)
पेडो की सख्या	6	20	40
सतरो की सख्या	(55—70)	(70—85)	(85—100)
पेड़ों की सख्या	26	3	1

(उत्तर स० माध्य = 47 95, मध्यका 48 35, बहुलक 48.57)

(10) निम्न आयु वर्ग सारणी से समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक ज्ञात करिये –

आयु वर्ग (days)	0—10	10—20	20—30	30—40	40—50
पौधो की सख्या	31	40	139	29	10

(उत्तर स० मा० = 22.8, मध्यका = 23 7, बहुलक = 24 6)

(11) यदि किसी एक बगीचे के 100 पौधो की औसत ऊँचाई 3 ft. और दूसरे बगीचे के 80 पौधो की औसत ऊँचाई 3.5 ft. है तो दोनो बगीचो की सयुक्त औसत ऊँचाई ज्ञात करो।

(उत्तर 3.22 ft.)

(12) निम्न समको से समान्तर माध्य और मध्यका की गणना करिये –

पुष्पो की संख्या	5	6	7	8	9	10	11
पौधो की सख्या	15	18	25	30	12	8	7

(उत्तर स० मा० = 8.2, मध्यका = 7 पुष्प)

(13) आम के पेडो से सम्बन्धित निम्न समको से स० माध्य व मध्यका का परिकलन करिये –

No of Fruits (Below)	10	20	30	40	50	60	70	80
No of Trees	5	11	22	37	56	68	75	80

(उत्तर $\overline{X}$ = 40 75, M = 41 58)

(14) अश्वगँधा *(Withania somnifera)* के पौधो के निम्न आयु वर्ग (दिन में) व आवृत्ति बटँन से समान्तर माध्य ($\overline{X}$) और मध्यका *M* की परिगणना करिये –

आयु (दिन)	0—5	5—10	10—15	15—20	20—25	25—30
आवृति	10	25	50	07	13	05

(उत्तर : X 12.64, M 12 दिन)

(15) निम्न समको से समान्तर माध्य, मध्यका तथा बहुलक की गणना करिये –

मध्य विन्दु	14	16	18	20	22	24	26	28
आवृति	1	7	10	44	37	29	9	3

(उत्तर · X = 21.53; M = 21.43; Z = 21.93)

(16) (a) 30 कपास की गाँठो (Bells) का औसत वजन 110 पौण्ड है। उनमें से 10 कपास की गाँठों का औसत वजन 100 पौण्ड है तथा अन्य 10 गाँठो का 125 पौण्ड है। शेष गाँठो का औसत वजन ज्ञात करिये।

(b) एक जिले मे 500 कृषक है। उनकी औसत मक्का की उपज 240 Q है। 200 कृषको की औसत ऊपज 250 Q है तो शेष 300 कृषको की औसत मक्का की ऊपज ज्ञात करिये।

उत्तर (a) 105 पौण्ड (b) 233.33 Q.

(17) निम्न तालिका से समान्तर माध्य तथा मध्यका ज्ञात करिये –

Crop Cutting Yield in (kg)	Experiment Data on plot yields of Wheat (No. of Plots)	Crop Cutting yield in (Kg)	Experiment data on Plot ,yields of Wheat (No. of Plots)
over 0	216	over 240	57
" 60	210	" 300	31
" 120	156	" 360	13
" 180	98	" 420	7

(उत्तर X = 188.89 Kg.; M = 169.65 kg)

अध्याय : 14

अपकिरण के माप

(Measures of Dispersion)

अपकिरण (dispersion) : पिछले अध्याय मे हमने केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप का वर्णन करते वक्त, यह स्पष्ट किया था कि माध्य एक समक श्रेणी का प्रतिनिधि मूल्य होता है। यह मूल्य उस श्रेणी की माध्य स्थिति या सामान्य स्थिति का परिचायक मात्र होता है। माध्य मूल्यो के आधार पर समक माला की बनावट, सरचना, मद मूल्यो का माध्य मूल्य के सदर्भ मे बिखराव या विस्तार आदि के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना असम्भव है। अत केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापो (जिन्हे प्रथम श्रेणी के माध्य भी कहते हैं) के आधार पर साख्यिकीय तथ्यो का विश्लेषण व निष्कर्ष प्राय. अशुद्ध और भ्रामक होता है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापो के सम्बन्ध मे सिम्पसन और काफ्का (Simpson & Kafca) का कथन है कि "अकेला माध्य पूरी कहानी नही कहता। वह समूह का पूर्ण प्रतिनिधित्व नही करता जब तक कि हमे यह ज्ञात न हो कि व्यक्तिगत मूल्य उसके चारो ओर किस प्रकार फैले है।" नीसवेन्जर (Neiswanger) के मतानुसार समको के दो वितरण सममित (Symmetrical) हो सकते है और समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक समान होते हुए भी उनके बिखराव अथवा केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापो के चारो ओर के मूल्यो मे काफी अन्तर हो सकता है।"

उदाहरणार्थ :– *तीन कृषको का पाँच वर्षों का लाभार्जन निम्नानुसार है। (लाभ हजार रुपयो में)*

वर्ष	कृषक		
	A	B	C
1	1	8	6
2	2	7	6
3	4	6	6
4	8	5	6
5	15	4	6
माध्य	6	6	6

उपरोक्त उदाहरण मे तीनो ही कृषको का पचवर्षीय लाभ 6 हजार रु० है, किन्तु इन तीनो कृषको की आर्थिक स्थिति समान नही है क्योकि कृषक A बहुत तेजी से उन्नति कर रहा है और उसके लाभ प्रति वर्ष लगभग दुगने हो रहे है, जबकि B कृषक के लाभ लगातार गिरते जा रहे है। कृषक C का लाभ पाँचो वर्षों मे समान है। इस प्रकार माध्य बराबर होने पर भी कृषक A बहुत उन्नति कर रहा है कृषक B लगातार अवनति की ओर जा रहा है और कृषक C की स्थिति स्थिर है। उपरोक्त उदाहरण से हम इस निष्कर्ष

पर पहुँचते है कि पहले कृषक (A) के लाभ सम्बन्धी आँकडो मे विचरण अधिक है और बिखराव ज्यादा है । दूसरे कृषक (B) के लाभ के अको के बिखराव मे एक नियमितता है तथा तीसरे कृषक (C) के अको मे कोई परिवर्तन ही नही है । अत. माध्य किसी अक माला का प्रतिनिधि मूल्य होते हुए भी उस माला की बनावट की वास्तविक स्थिति स्पष्ट नही करता है और अको के विस्तार या भिन्नता की मात्रा का प्रदर्शन भी नही करता है जो उनकी वास्तविक स्थिति ज्ञात करने के लिए आवश्यक है ।

उपरोक्त रेखा चित्रो से स्पष्ट है कि दोनो श्रेणियो मे मूल्यो का बिखराव भिन्न है ।
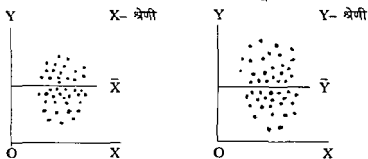
यह बिखराव श्रेणी 'x' (x - series) मे कम है जबकि श्रेणी 'y' (y - series) मे 'x' श्रेणी की तुलना मे बिखराव ज्यादा है । इस फैलाव का अध्ययन केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापो (माध्य, मध्यका व बहुलक) की सहायता से नही किया जा सकता । अत. समक माला के बिखराव के अध्ययन हेतु अपकिरण के मापो का अध्ययन आवश्यक है । अपकिरण के मापो को द्वितीय श्रेणी के औसत (Averages of second order) भी कहते है ।

केन्द्रीय प्रवृत्ति तथा सरचना के आधार पर समक मालाएँ (Series) दो प्रकार की होती है ।

(1) समक माला की सरचना मे समानता किन्तु माध्यो मे भिन्नता ।

(2) समक माला की सरचना मे भिन्नता किन्तु माध्यो मे समानता ।

समक मालाओ मे उपरोक्त दोनो प्रकार के अन्तर होने के कारण केवल मात्र माध्य के आधार पर सही निष्कर्ष नही निकाले जा सकते है । समक मालाओं की सरचना व स्वरूप के बारे मे भी सम्यक सूचना प्राप्त करना अनिवार्य है ।

समको के सम्पूर्ण मौलिक लक्षणो की प्रस्तुति हेतु निम्न चार माप ज्ञात किये जाते है :

(1) **केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप (Measures of Central Tendency) :** इस माप के द्वारा समक माला का प्रतिनिधि मूल्य ज्ञात हो जाता है ।

(2) **अपकिरण के माप (Measures of Disperision) :** इस माप से यह स्पष्ट होता है कि समक श्रेणी मे विभिन्न मूल्य, माध्य मूल्य से कितनी औसत दूरी पर फैले है ।

(3) **विषमता के माप (Measures of Skewness)** : इस माप से समको के बिखराव की दिशा की जानकारी प्राप्त होती है।

(4) **पृथुशीर्षत्व के माप (Measures of Kurtosis)** : ये आवृत्ति बटन के नुकीलेपन या चपटेपन के माप है।

अपकिरण की परिभाषा (Definition of Dispersion): अपकिरण का शाब्दिक अर्थ फैलाव या प्रसार है। डॉ० बाउले (Bowley) के अनुसार "अपकिरण मदो के विचलन (variation) का माप है।" इस प्रकार अपकिरण किसी श्रेणी के मद मूल्यो के बिखराव या विचरण की सीमा प्रदर्शित करता है। कॉनर (Connor) के शब्दो मे "जिस सीमा तक व्यक्तिगत मद मूल्यों से भिन्नता होती है उसके माप को अपकिरण कहते है।" स्पीगेल (Spigel) के मत मे "वह सीमा जहाँ तक समक एक माध्य मूल्य के दोनो ओर फैलने की प्रवृत्ति रखते है उन समको का विचरण या अपकिरण कहलाती है।"

अपकिरण के उद्देश्य (Objects of Dispersion): अपकिरण के विभिन्न माप निम्न उद्देश्यो की पूर्ति के लिए ज्ञात किये जाते है :

(1) समक श्रेणी के माध्य से विभिन्न पद मूल्यो की औसत दूरी ज्ञात करना।

(2) समक माला की सरचना के बारे मे जानकारी प्राप्त करना या दूसरे शब्दो में यह ज्ञात करना हि पद मूल्यो का माध्य के दोनो ओर बिखराव कैसा है।

(3) समको (पद मूल्यों) का सीमा विस्तार ज्ञात करना।

(4) दो या अधिक समक मालाओं मे पाई जाने वाली असमानताओं या सरचना में भिन्नता का तुलनात्मक अध्ययन करना एवम् यह निश्चित करना कि किस श्रेणी मे विचरण अधिक है।

(5) माध्य, समक श्रेणी का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व करते है यह जानकारी प्राप्त करना।

उपरोक्त उद्देश्यों के कारण अपकिरण का माप कृषि और जीव विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों मे किये गये प्रयोगों के परिणामो के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा निष्कर्ष निकालने के लिए अपकिरण के विभिन्न माप अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होते है। इसके अतिरिक्त कृषि व मत्स्य उद्योग मे उत्पादन नियन्त्रण व गुणवत्ता नियन्त्रण (Quality Control) के लिए भी अपकिरण का ज्ञान अत्यन्त लाभदायक होता है।

अपकिरण के विभिन्न माप ज्ञात करने की विधियाँ (Methods of measuring different Measures of Dispersion) : अपकिरण ज्ञात करने की निम्नाँकित प्रमुख विधियाँ है :

(1) **सीमान्तर विधि (Methods of Limits) :**

(a) विस्तार (Range)

(b) अन्तर चतुर्थक विस्तार (Inter Quartile Range)

(c) शतमक विस्तार (Percentile Range)

(2) विचलन माध्य विधि (Method of Averaging Deviations) :

(a) चतुर्थक विचलन (Quartile Deviation)

(b) माध्य विचलन (Mean Deviation)

(c) प्रमाप विचलन (Standard Deviation)

(d) अन्य माप (Other measures)

(3) बिन्दु रेखीय विधि (Graphic Method) :

(a) लॉरेन्ज वक्र (Lorenz Carve)

विस्तार (Range)

किसी समक श्रेणी मे सर्वाधिक मूल्य (Largest value) और न्यूनतम मूल्य (Lowest or smallest value) के अन्तर या अपकिरण को विस्तार कहते है । यह अन्तर यदि कम है तो श्रेणी नियमित या स्थिर कहलायेगी । इसके विपरीत यदि यह अन्तर अधिक है तो श्रेणी अनियमित कहलाती है ।

विस्तार की परिगणना (Calculation of Range) अधिकतम और न्यूनतम मूल्यो का पता लगाते है । अविच्छिन्न श्रेणी मे (Continuous series) मे न्यूनतम वर्ग की अधर सीमा (Lower limit) को न्यूनतम मूल्य और अधिकतम वर्ग की अपर सीमा (Upper limit) को अधिकतम मूल्य माना जाता है । विस्तार ज्ञात करते समय आवृत्तियो (frequencies) पर ध्यान नही दिया जाता है । विस्तार की गणना केवल मूल्यो (मापो या आकारों) के अन्तर के आधार पर ही की जाती है ।

विस्तार = अधिकतम मूल्य – न्यूनतममूल्य

(Range) = (Highest value) — (Lowest value)

R = (H) — (L)

विस्तार गुणाँक (Coefficient of Range) : विस्तार का माप निरपेक्ष (Absolute) होता है इसलिए इसकी तुलना अन्य श्रेणियो से ठीक प्रकार से नही की जा सकती अपकिरण के तुलनात्मक अध्ययन हेतु विस्तार का सापेक्ष माप (Relative measure of Range) ज्ञात करना अनिवार्य होता है । विस्तार गुणाँक की परिगणना निम्न सूत्र के प्रयोग द्वारा की जाती है –

$$\text{विस्तार गुणाँक (Coefficient of Range)} = \frac{H - L}{H + L}$$

सूत्र मे .--

H = Highest value (अपर मूल्य)

L = Lowest value (अधर मूल्य)

उदाहरण : व्यक्तिगत श्रेणी में विस्तार (Range in Individual series)

एक बगीचे मे तीन क्यारियो मे निम्न प्रजातियो के पौधो पर पुष्प निम्न प्रकार से लगे है तो विस्तार (Range) की गणना कर उनकी तुलना कीजिए :

Lathyrus odoratus	5, 3, 8, 7, 4, 6, 12, 5
Vinca rosea	15, 13, 18, 20, 10, 12, 11
Calendula	6, 1, 8, 7, 5, 4, 3, 2

हल :

Range = (H - L)

Lathuyrus	*Vinca*	*Calendula*
H = 12	H = 20	H = 8
L = 3	L = 10	L = 1
Range = 9 Flowers	= 10 Flowers	=7 Flowers

तीनो प्रजातियो के पुष्पो की सख्या समूह की तुलना हेतु विस्तार गुणाँक (Coefficient of Range) की परिगणना करनी होगी जो निम्न वत है ।

$$\text{Coefficient of Range} = \frac{H - L}{H + L}$$

$$Lathyrus = \frac{12 - 3}{12 + 3} = \frac{9}{15} = 0.60$$

$$Vinca = \frac{20 - 10}{20 + 10} = \frac{10}{30} = 0.33$$

$$Calendula = \frac{8 - 1}{8 + 1} = \frac{7}{9} = 0.77$$

अत: विस्तार गुणाँक *Lathyrus* का 0.60, *Vinca* का 0.33 और *Calendula* का 0.77 है । स्पष्ट है कि *Calendula* मे विचरणता सर्वाधिक है और *Vinca* मे यह न्यूनतम है ।

(B) **खण्डित श्रेणी में विस्तार (Range in Discrete series) :** एक उद्यान मे सूरजमुखी *(Helianthus annus)* के पौधे निम्न आयु के है तो प्राप्त समको से विस्तार गुणाँक का परिकलन करिये ।

आयु (दिन मे)	4	6	8	10	12	14
आवृत्ति	2	3	5	7	2	1

हल :

विस्तार (R) = H — L

H = 14 days

L = 4 days

R = 14 — 4 = 10 days

$$\text{Coefficient of Range} = \frac{H - L}{H + L} = \frac{14 - 4}{14 + 4}$$

$$= \frac{10}{18} = 0.55$$

टिप्पणी : इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि विस्तार की गणना करते वक्त आवृत्ति बँटन पर ध्यान नही दिया जाता है, मात्र मूल्यो का ही अन्तर किया जाता है ।

(C) सतत् श्रेणी मे विस्तार (Range in continuous series) :

(i) **अपवर्जी सतत् श्रेणी (Exclusive continuous series) :** नीबू (Citrus) से सम्बन्धित निम्न समको से विस्तार की परिगणना कीजिए .

फलों की संख्या	पौधों की संख्या
5—10	2
10—15	5
15—20	8
20—25	12
25—30	6

हल :

$$\text{Range (R)} = H - L = 30 - 5 = 25 \text{ Fruits}$$

$$\text{Coefficient of Range} = \frac{H - L}{H + L} = \frac{30 - 5}{30 + 5}$$

$$= \frac{25}{35} = 0.71$$

अपवर्जी श्रेणी मे न्यूनतम वर्ग की अधर सीमा (Lower limits) को न्यूनतम मूल्य और अधिकतम वर्ग की अपर सीमा (Upper limit) को अधिकतम मूल्य माना जाता है ।

समावेशी श्रेणी (Inclusive series) : एक पौधशाला मे शीशम *(Dalbergia)* के पौधे निम्न आयु वर्ग के अनुसार है । प्राप्त समको से विस्तार की गणना कीजिए :

पौधों की आयु (in days)	पौधों की संख्या
1—5	5
6—10	10
11—15	12
16—20	18
21—25	20

हल : समावेशी श्रेणी मे अधिकतम व न्यूनतम मूल्य ज्ञात करने के पूर्व विभिन्न वर्गों की वास्तविक सीमाओ का अभिनिर्धारण करना आवश्यक है । अत. उपरोक्त समक माला को वास्तविक सीमा निर्धारण के बाद निम्नानुसार लिखकर गणना करेगे ।

आयु वर्ग (days)	वास्तविक सीमा (days)	पौधों की संख्या
1—5	0.5—5.5	5
6—10	5.5—10.5	10
11—15	10.5—15.5	12
16—20	15.5—20.5	18
21—25	20.5—25.5	20

$$\text{Range (R)} = H - L = 25.5 - 0.5 = 25 \text{ days}$$

$$\text{Coefficient of Range} = \frac{H - L}{H + L} = \frac{25.5 - 0.5}{25.5 + 0.5} = \frac{25}{26} = 0.96$$

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य है कि विस्तार मे इकाई लिखी जानी चाहिए जबकि विस्तार गुणाक (Coefficient of Range) की कोई इकाई नही लिखी जाती है।

विस्तार के गुण (Merits of Range) :

(1) **सरल व सुगम :** विस्तार की गणना अत्यन्त सरल व समझने और निर्वचन मे सुविधाजनक है।

(2) **सीमाओं का निर्धारण :** विस्तार उन सीमाओं को स्पष्ट कर देता है जिनके मध्य पदो के मूल्यो का फैलाव है, अत: यह विचलन का एक विस्तृत चित्र दर्शाता है।

(3) **विस्तृत प्रयोग :** विस्तार का प्रयोग उत्पाद के गुण नियन्त्रण, भौगोलिक अध्ययन व किसी वर्ग श्रेणी के न्यूनतम और सर्वाधिक मूल्यो के लिए उपयोगी है।

(4) **आवृत्ति बंटन से अप्रभावित :** विस्तार की गणना हेतु आवृत्तियो की आवश्यकता नही होती, केवल मात्र मूल्यो पर ही ध्यान दिया जाता है, इस प्रकार विस्तार आवृत्ति बटन से अप्रभावित रहता है।

विस्तार के दोष (Demerits of Range):

(1) **अवैज्ञानिक माप :** विस्तार एक अवैज्ञानिक माप है क्योंकि इसमे माध्यो की उपेक्षा की जाती है। माध्य से मद मूल्यो का अन्तर अथवा आपस मे मदो के मूल्यो का फैलाव इससे ज्ञात नही हो पाता है। यह सम्भव है कि दो पद श्रेणियो का विस्तार समान हो परन्तु आकृति मे अत्यधिक अन्तर हो।

(2) **अनिश्चित :** विस्तार अपकिरण का एक अनिश्चित माप है। यदि श्रेणी के केवल न्यूनतम या अधिकतम मूल्यो मे परिवर्तन हो जाये तो विस्तार परिवर्तित हो जायेगा।

(3) **श्रेणी के समस्त मूल्यों को महत्त्व नहीं :** विस्तार मे सभी मूल्यो पर ध्यान नही दिया जाता केवल उच्चतम व निम्नतम मूल्यो को ही महत्त्व दिया जाता है, अत: इसे सभी मूल्यो का प्रतिनिधि नही कहा जा सकता।

माध्य विचलन
(Mean Deviation)

समक श्रेणी के सभी पदो के मूल्यो के श्रेणी के किसी एक माध्य (समान्तर माध्य, मध्यका या बहुलक) से विचलनो (Deviations) के समान्तर माध्य को माध्य विचलन कहते है तथा इसे समान्यतया ग्रीक अक्षर 'δ' (small delta) से प्रदर्शित करते है। माध्य विचलन की गणना मे सभी पदो के विचलनो को धनात्मक लेते हैं, अर्थात् उनका चिन्ह (+ या -) छोड़ देते है। इस प्रकार प्राप्त विचलनो को योग करके कुल मद सख्या से भाग देने पर जो सख्या प्राप्त होती है, उसे माध्य विचलन कहते है। माध्य विचलन जितना अधिक होता है उस श्रेणी मे अपकिरण या फैलाव उतना ही अधिक होता है।

माध्य विचलन की गणना हेतु निम्न क्रिया विधि अपनाई जाती है :

(i) **माध्य का चुनाव :** माध्य विचलन की गणना मे सैद्धान्तिक रूप से किसी भी माध्य (स० मा०, मध्यका या बहुलक) का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु व्यवहार मे मध्यका (या कभी समान्तर माध्य) का ही प्रयोग किया जाता है। समान्तर माध्य व मध्यका मे से भी मध्यका का प्रयोग श्रेयस्कर समझा जाता है क्योंकि मध्यका स्थिर व निश्चित माध्य है और इससे लिये गये पदो के विचलनो का योग कम होता है।

(ii) **बीजगणितीय चिन्हों की उपेक्षा :** माध्यसे विचलन लेते वक्त कुछ विचलन धनात्मक व कुछ ऋणात्मक प्राप्त होते है किन्तु सभी विचलनो को धनात्मक ही मान लिया जाता है अर्थात् योग करते समय इनके (विचलनो के) चिन्हो की उपेक्षा कर दी जाती है। विचलनो को व्यक्त करने हेतु 'd' चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। इन विचलनो (d) के दोनो ओर दो सीधी रेखाएँ || (modulus) खीच दी जाती है इस तरह | d | का अर्थ है विचलन की गणना करते समय ऋणात्मक चिन्हो का ध्यान नही रखा गया है।

(iii) **विचलनों का योग एवम् माध्य की गणना :** सभी प्राप्त विचलनो का योग करके उसमे पदो की सख्या (N) से भाग दे दिया जाता है व प्राप्त सख्या को माध्य विचलन कहते है। यदि माध्य विचलन क्रमश समान्तर माध्य, मध्यका व बहुलक से ज्ञात किया जाता है तो उन्हे क्रमशः $\delta\overline{X}$, δM व δZ सकेताक्षरो से प्रदर्शित करते है।

माध्य विचलन गुणॉक (Coefficient of Mean Deviation) माध्य विचलन अपकिरण का एक निरपेक्ष माप है श्रेणियो के तुलनात्मक अध्ययन हेतु माध्य विचलन का सापेक्ष माप ज्ञात किया जाता है। इसे माध्य विचलन का गुणॉक (Coefficient of Mean Deviation) कहते है। माध्य विचलन के गुणाक की परिगणना हेतु माध्य विचलन को उस माध्य से विभाजित कर देते है जिससे विचलन निकाला गया है।

माध्य विचलन का गुणॉक

(a) स० माध्य से $= \dfrac{\delta\overline{X}}{\overline{X}}$

(b) माध्यका से $= \frac{\delta M}{M}$

(c) बहुलक से $= \frac{\delta Z}{Z}$

विभिन्न श्रेणियो मे माध्य विचलन और उसके गुणाँक की परिगणना

1. व्यक्तिगत श्रेणी में (In Individual Series)

(a) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

(i) सर्वप्रथम समान्तर माध्य, मध्यका या बहुलक जिससे भी माध्य विचलन ज्ञात करना हो, वह माध्य ज्ञात किया जाता है।

(ii) सम्बन्धित माध्य से समस्त पद मूल्यो के विचलन ज्ञात किये जाते है, जिनमे ऋणात्मक चिन्हो पर ध्यान नही दिया जाता है।

(iii) सभी विचलनो का योग कर लेते है $(\Sigma|d|)$

(iv) विचलनो के योग $(\Sigma|d|)$ में कुल पदो की सख्या का भाग देने पर प्राप्त फल ही माध्य विचलन होता है।

(v) सूत्र के रूप मे इसे निम्न प्रकार लिखते है –

(a) समान्तर माध्य से माध्य विचलन ($\delta\bar{X}$) $= \frac{\Sigma|d\bar{x}|}{N}$ ($\bar{x}$ से विचलनो का योग)

(b) मध्यका से माध्य विचलन (δm) $= \frac{\Sigma|dM|}{M}$ (m से विचलनो का योग)

(c) बहुलक से माध्य विचलन (δz) $= \frac{\Sigma|dz|}{N}$ (z से विचलनो का योग)

(vi) प्राप्त माध्य विचलन मे उस माध्य का भाग देने पर (जिस माध्य से विचलन लिया गया है) प्राप्त फल माध्य विचलन गुणाँक होगे।

उदाहरण : एक उद्यान मे 5 अनार के पेडो पर फल निम्न प्रकार लगे हो तो समान्तर माध्य से माध्य विचलन व माध्य विचलन गुणाँक ज्ञात कीजिए

अनार के पेड़	A	B	C	D	E
अनार (फल)	5	10	12	15	13

हल :

अनार के पेड़	अनार के फल	माध्य 11 से विचलन
	X	$\lvert d\bar{x}\rvert$ $(x-\bar{x})$
A	5	6
B	10	1
C	12	2
D	15	5
E	13	3
योग	55	17

समान्तर माध्य $\overline{x} = \frac{\Sigma x}{N} = \frac{55}{5} = 11$

माध्य विचलन $\delta \overline{x} = \frac{\Sigma |d\overline{x}|}{N} = \frac{17}{5} = 3.40$

माध्य विचलन गुणाँक $= \frac{\delta \overline{x}}{N} = \frac{3.40}{5}$

$= 0.68$

यदि उपरोक्त उदाहरण मे माध्य विचलन की गणना मध्यका से की जाये तो सर्वप्रथम श्रेणी के समको को आरोही या अवरोही (Ascending or descending) क्रम मे रख कर मध्यका की गणना करते है, तत्पश्चात् मध्यका मूल्य से विचलन लेकर माध्य विचलन की गणना की जाती है जैसा कि :

अनार के पेड़	अनार	मध्यका से विचलन
	X	M = 12 |dM| = X —M
A	5	7
B	10	2
C	12	0
E	13	1
D	15	3
योग		Σ|dM| = 13

मध्यका $M =$ value of $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item

$= \frac{5+1}{2} = \frac{6}{2} = 3$rd item

$M = 12$

मध्यका से माध्य विचलन $\delta M = \frac{\Sigma |dM|}{N}$

$= \frac{13}{5} = 2.60$

मध्यका से माध्य विचलन गुणाँक $= \frac{\delta M}{N}$

$= \frac{2.60}{5} = 0.52$

खण्डित श्रेणी (Discrete series) :

प्रत्यक्ष रीति : प्रत्यक्ष रीति से खण्डित श्रेणी में माध्य विचलन की परिगणना निम्न क्रिया विधि द्वारा की जाती है :

(1) जिस माध्य के आधार पर माध्य विचलन की गणना की जाती है सर्व प्रथम उस माध्य की गणना करते है ।

(2) उस माध्य से प्रत्येक पद मूल्यो का विचलन (ऋणात्मक चिन्हों को छोडते हुए) ज्ञात करते है (| d |)

(3) सभी विचलनो को सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करके प्राप्त गुणन फलो का योग ज्ञात करते है । (Σ| f d |)

(4) निम्न सूत्र से माध्य विचलन ज्ञात करते है ।

$$\delta M = \frac{\Sigma f |dM|}{N}, \ \delta \overline{x} = \frac{\Sigma f |d\overline{x}|}{N}, \ \delta z = \frac{\Sigma |f d z|}{N}$$

(5) माध्य विचलन का गुणाँक ज्ञात करने हेतु माध्य विचलन को उस माध्य से विभाजित किया जाता है जिससे ये विचलन लिए गये है ।

उदाहरण :- मटर (Pisum sativum) के विभिन्न पौधो पर मटर की फलियाँ निम्न प्रकार से लगी है तो प्राप्त समको से समान्तर माध्य व मध्यका द्वारा माध्य विचलन और माध्य विचलन गुणाँक निकालिये -

मटर की फलियाँ (X)	4	6	8	10	12	14	16
मटर के पौधे (f)	2	4	5	3	2	1	4

हल समान्तर माध्य के आधार पर माध्य विचलन की गणना

मटर की फलियाँ (X)	पौधे (f)	f × X	समान्तर माध्य (9 71) से विचलन $|d\overline{x}|$	कुल विचलन $f|d\overline{x}|$
4	2	8	5 71	11 42
6	4	24	3 71	14 84
8	5	40	1 71	8 55
10	3	30	0.29	0 87
12	2	24	2.29	4 58
14	1	14	4 29	4.29
16	4	64	6 29	25 16
	N=21	Σfx = 204		$\Sigma f|d\overline{x}|$ 69 71

समान्तर माध्य $(\overline{x}) = \frac{\Sigma f x}{N} = \frac{204}{21}$

$= 9\ 71$

माध्य विचलन $\delta\bar{X} = \frac{\Sigma f |d\bar{X}|}{N}$

$= \frac{69.71}{21} = 3.319$

माध्य विचलन गुणाँक $\frac{\delta\bar{X}}{\bar{X}} = \frac{3.319}{9.71} = 0.342$

मध्यका के आधार पर माध्य विचलन की गणना :---

मटर की फलियाँ (X)	पौधों की संख्या (f)	संचयी आवृत्ति C.f	आवृत्ति X फलियाँ f .X	मध्यका (8) से विचलन |d M|	कुल विचलन f |dM|
4	2	2	8	4	8
6	4	6	24	2	8
8	5	11	40	0	0
10	3	14	30	2	6
12	2	16	24	4	8
14	1	17	14	6	6
16	4	21	64	8	32
	N = 21				Σf | dM | = 68

मध्यका M = value of $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{th}$ item $= \frac{21+1}{2} = \frac{22}{2}$

M = $= 11^{th}$ item = 8

M = 8

माध्य विचलन $\delta M = \frac{\Sigma f |dM|}{N} = \frac{68}{21} = 3.23$

$\delta M = 3.23$

माध्य विचलन गुणाँक $= \frac{\delta M}{M} = \frac{3.23}{8}$

$= 0.403$

सतत् श्रेणी में माध्य विचलन (Mean Deviation In Continuous Series):

सतत् श्रेणी मे वर्गान्तर समूहो के मध्य बिन्दु (Mid points) ज्ञात करके इसे (सतत् श्रेणी को) खण्डित श्रेणी मे परिवर्तित कर लेते है व मध्य बिन्दु को उस श्रेणी का मद मूल्य (x) मान लिया जाता है। शेष समस्त क्रियाऐं खण्डित श्रेणी के समान ही रहती है।

उदाहरण : निम्न सारणी मे प्रस्तुत बाँस (Bamboo) के पौधो की लम्बाई व आवृति से माध्य विचलन व माध्य विचलन गुणाँक का परिकलन कीजिए :

Length (mm)	118—126	127—135	136—144	145—153	154—162
Frequency	3	5	9	12	5
Length (mm)	163—171	172—180			
Frequency	4	2			

हल : इस श्रेणी का रूप समावेशी है अत: सर्वप्रथम विभिन्न वर्गों की वास्तविक सीमाओं का निर्धारण करेगे व उसके बाद माध्य व मध्यका की गणना करेगे :

Length (mm)	Frequency (f)	Mid Point (X)	Step Variation from (dx')	Total Variation f.dx'	Cumulative Frequency cf
117.5—126 5	3	122	—3	—9	3
126 5—135 5	5	131	—2	—10	8
135 5—144 5	9	140	—1	—9	17
144 5—153.5	12	149	0	0	29
153 5—162 5	5	158	+1	+5	34
162 5—171 5	4	167	+2	+8	38
171 5—180 5	2	176	+3	+6	40
Total	N = 40			—28 +19 =—9 Σfdx' = —9	—

समान्तर माध्य $\bar{x} = A + \frac{\Sigma f \cdot dx'}{N} \times i = 149 + \frac{-9}{40} \times 9$

$= 149 - \frac{81}{40} = 149 - 2\ 025$

$\bar{x} =$ 146 975 mm or 146.98 mm

मध्यका $M = \left(\frac{N}{2}\right)^{th}$ item size

$= \frac{40}{2}$ $= 20^{th}$ item

20^{th} item सचयी आवृत्ति 29 मे सम्मिलित है जिसका वर्ग समूह 144.5 — 153 5 है।

अत $M = l_1 + \frac{i}{f}(m-c)$

$= 144\ 5 + \frac{9}{12}\ (20—17)$

$= 144.5 + \frac{9 \times 3}{12} = 144\ 5\ +\ 2\ 25$

$= 146\ 75$ mm

Calculation of Mean Deviation

Length (mm)	Frequ ency (f)	Mid Value (X)	Dev from M =146 75 (ignoring ±)	f|dM|	Dev from $\bar{x}$ = 146.98 (ignoring ±)	f|$\overline{dx}$|
117 5—126 5	3	122	24 75	74 25	24 98	74 94
126 5—135 5	5	131	15 75	78 75	15 98	79 90
135 5—144 5	9	140	6 75	60 75	6 98	62 82
144 5—153 5	12	149	2.25	27 00	2 02	24 24
153 5—162 5	5	158	11 25	56.25	11 02	55 10
162 5—171.5	4	167	20 25	81 00	20 02	80 08
171 5—180 5	2	176	29 25	58.50	29 02	58 04
Total	40	—		436 50	—	435 12

$\delta M = \frac{\Sigma f|dM|}{N} = \frac{436\ 50}{40}$ $\qquad \delta\bar{x} = \frac{\Sigma f|dx|}{N} = \frac{435\ 12}{40}$

$= 10\ 91$ mm $\qquad = 10\ 80$ mm

मध्यका से

माध्य विचलन का गुणाँक $= \frac{\delta M}{M} = \frac{10\ 91}{146\ 75}$

$= 0\ 075$

स० माध्य से माध्य विचलन का गुणाँक $= \frac{\delta\bar{x}}{\bar{x}} = \frac{10\ 88}{146.98}$

$= 0\ 074$

माध्य विचलन के गुण (Merits of Mean Deviation) ·

(1) गणना सरल -- अपकिरण के अन्य मापो की तुलना मे माध्य विचलन की गणना सरल है तथा इसे शीघ्रता से समझा जा सकता है।

(2) प्रत्येक माध्य से सम्भव -- माध्य विचलन की गणना माध्य मध्यका अथवा बहुलक मे से किसी को भी आधार मान कर की जा सकती है।

(3) **सभी पद मूल्यों पर आधारित --** यह समक माला के सभी पद मूल्यो पर आधारित है तथा इस की गणना किसी भी माध्य से लिए गये विभिन्न पदो के विचलनो से की जा सकती है।

(4) **चरम मूल्यों से कम प्रभावित --** यह श्रेणी के चरम मूल्यो से कम प्रभावित होता है।

(5) **वितरण को महत्त्व—** माध्य विचलन से ही वितरण के महत्त्व को स्पष्ट किया जा सकता है।

(6) **समस्त मूल्यों को सापेक्ष महत्त्व --** *यह समस्त पद मूल्यो को सापेक्ष महत्त्व देता है।*

(7) **निश्चित --** यह अपकिरण का एक निश्चित माप है और इनका मूल्य शुद्ध अंक तक निकाला जा सकता है।

माध्य विचलन के दोष (Demerits of Mean Deviation) :

(1) **चिन्हों की उपेक्षा--** माध्य विचलन की परिगणना मे बीज गणितीय चिन्हो (+) या (–) को छोड दिया जाता है व सभी विचलनो को धनात्मक मान कर जोड लिया जाता है जिसे बीज गणितीय दृष्टि से शुद्ध नही माना जाता है।

(2) **अविश्वसनीय :** *कई परिस्थितियो मे माध्य विचलन असन्तोष जनक परिणाम देता है, बहुलक मूल्य अनिश्चित होने के कारण, उससे माध्य विचलन ज्ञात करना ही अनुपयुक्त है।*

(3) **समानता का अभाव :** माध्य विचलन की गणना अलग-अलग माध्यो को आधार मान कर ज्ञात करने पर माध्य विचलन भिन्न-भिन्न प्राप्त होते हैं एवम् इनने समानता का अभाव पाया जाता है।

प्रमाप विचलन
(Standard Deviation)

प्रमाप विचलन के विचार की कल्पना कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) ने सन् 1893 मे की थी। यह अपकिरण को मापने की सबसे लोक प्रिय, आदर्श और वैज्ञानिक रीति है। प्रमाप विचरण का प्रयोग सांख्यिकी व जैव साख्यिकी मे विभिन्न प्रयोगो के भिन्न-भिन्न प्रतिदर्शों से प्राप्त परिणामो मे विचलन और तुलनात्मक अध्ययन हेतु सर्वाधिक किया जाता है। प्रमाप या मानक विचलन की प्रमुख विशेषताऐं है कि :

(1) पद मूल्यो के विचलन सदैव समान्तर माध्य से ही ज्ञात किये जाते है।

(2) बीज गणितीय चिन्ह (+) या (–) को छोड़ा नही जाता है बल्कि प्राप्त विचलनो के वर्ग (Square) कर लिए जाते है। प्राप्त वर्गों के योग मे कुल मदो की सख्या को भाग देकर वर्गमूल (Square root) ले लेते है। प्राप्त अक को प्रमाप विचलन कहते है।

परिभाषा : किसी समक श्रेणी के समान्तर माध्य से लिए गये उस श्रेणी के विभिन्न पद मूल्यो के विचलनो के वर्गों के माध्य का वर्गमूल, उस श्रेणी का मानक या प्रमाप विचलन कहलाता है। मानक विचलन को ग्रीक शब्द " σ " सिग्मा (Small sigma) से प्रदर्शित करते हैं। वर्गमूल से पूर्व जो मूल्य प्राप्त होता है उसे विचरणाँक या प्रसरण (variance) कहते है।

प्रमाप विचलन गुणाँक (Coefficient of S. D.) दो श्रेणियो के तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रमाप विचलन का सापेक्ष माप (Relative Measure of Standard Deviation) ज्ञात किया जाता है जिसे प्रमाप विचलन गुणाँक (Coefficient of Standard Deviation) कहते है। प्रमाप विचलन गुणाँक ज्ञात करने के लिए प्रमाप विचलन (σ) मे समान्तर माध्य ($\overline{x}$) से भाग दिया जाता है।

प्रमाप विचलन गुणाँक Coefficient of S.D $= \frac{\sigma}{\overline{x}}$

माध्य विचलन व प्रमाप विचलन में भिन्नता

माध्य विचलन (Mean Deviation)	प्रमाप विचलन (Standard Deviation)
1 विचलन समान्तर माध्य, मध्यका या बहुलक से लिये जा सकते है।	1 विचलन सिर्फ समान्तर माध्य से ही लिये जाते है।
2 विचलनो के बीजगणितीय चिन्हो (+ व —) को छोड दिया जाता है अर्थात् ऋणात्मक विचलन भी घनात्मक मान लिये जाते है।	2 बीजगणितीय चिन्हो को छोड़ा नही जाता बल्कि प्राप्त विचलनो के वर्ग कर लिए जाते है जिससे ऋणात्मक विचलन भी घनात्मक विचलन मे परिवर्तित हो जाते है।
3 यह निरपेक्ष विचलनो का औसत (साधारण समान्तर माध्य) मात्र होता है।	3 यह विचलनो के वर्गों के माध्य (समान्तर माध्य) का वर्गमूल होता है।
4 इसमे गणितीय गुण का अभाव होता है क्योंकि यह निरपेक्ष मूल्यो पर आधारित है।	4 इसमे गणितीय गुण पाये जाते है क्योंकि इसमे बीजगणितीय चिन्हो को छोड़ा नही जाता है।
5 जब समान्तर माध्य, मध्यका या बहुलक पूर्णांक मे होते है तो इसकी गणना सरल होती है।	5 विचलनो के वर्ग ज्ञात करने के कारण इसकी परिगणना कुछ कठिन अवश्य है किन्तु यह सभी स्थितियो मे (चाहे समान्तर माध्य, पूर्णांक हो या दशमलवाँक) उपयुक्त होता है।

प्रमाप विचलन की गणना विधि (Calculation of S D) प्रमाप विचलन ज्ञात करने की दो विधियाँ है ।

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct method)

(2) लघु विधि (Shortcut method)

प्रत्यक्ष विधि (Direct method) -- *समान्तर माध्य* $(\overline{x})$ *यदि पूर्णांक (Whole Number)* मे प्राप्त हो तो इस विधि द्वारा गणना सरल रहती है । किन्तु समान्तर माध्य $(\overline{x})$ के दशमलवाँक मे होने पर लघु रीति का प्रयोग अपेक्षा कृत सरल होता है ।

व्यक्तिगत श्रेणी मे प्रमाप विचलन

(1) समको का सर्व प्रथम समान्तर माध्य $(\overline{x})$ ज्ञात करते है ।

(2) तत्पश्चात् समान्तर माध्य से समस्त पद मूल्यो के विचलन (d) ज्ञात करते हैं, विचलन (d) = $(x - \overline{x})$

(3) विचलनो के वर्ग (d^2) लेकर उनका योग करते है (Σd^2)

(4) विचलन के वर्गों के योग (Σd^2) मे पदो की कुल सख्या N का भाग देते है $\left(\frac{\Sigma d^2}{N}\right)$

(5) अब $\left(\frac{\Sigma d^2}{N}\right)$ से प्राप्त सख्या का वर्गमूल लेते है यही प्रमाप विचलन (σ) होता है,

सूत्रवत् $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$ अथवा $\sqrt{\frac{\Sigma(x - \overline{x})^2}{N}}$

यहाँ σ = प्रमाप विचलन (Standard Deviation)

Σd^2 या $\Sigma(x - \overline{x})^2$ समान्तर माध्य से विचलन के वर्गों का योग (*sum of squares of* deviation from A mean)

N = *पदो की कुल सख्या* (Total No of items)

उदाहरण : एक वन मे से काटे गये 10 वृक्षो का वजन (Kg) निम्न है । इनका प्रमाप विचलन ज्ञात करिये ।

Wt in Kg = 45, 48, 50, 52, 52, 50, 57, 58, 60, 48

हल :

वजन (kg)	समान्तर माध्य (52) से विचलन	विचलनों के वर्ग
	$d = (x - \overline{x})$	$d^2 = (x - \overline{x})^2$
45	—7	49
48	—4	16

50	— 2	4
52	0	0
52	0	0
50	— 2	4
57	+ 5	25
58	+ 6	36
60	+ 8	64
48	— 4	16
520		$\Sigma d^2 = 214$

स०मा० $\overline{x} = \frac{\Sigma x}{N} = \frac{520}{10}$ 52

$$= \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}} \quad or \quad \sqrt{\frac{214}{10}} = , \sqrt{21\ 4} = 4\ 62$$

$= 4\ 62$ kg

लघु रीति (Shortcut Method) --

लघु रीति से प्रमाप विचलन ज्ञात करने हेतु निम्न क्रिया विधि अपनाई जाती है -

(1) प्राप्त मूल्यो मे से किसी एक को कल्पित माध्य (Assumed Mean = A) मान लेते है।

(2) कल्पित माध्य (A) से प्रत्येक पद मूल्यो का विचलन ($\overline{dx} = x - A$) लेते है और उनका योग (Σdx) निकाल लेते है।

(3) विचलनो (Deviation) के वर्ग करके उनके वर्गों का योग (Σd^2x) कर लिया जाता है।

(4) निम्न सूत्रो मे से किसी एक का उपयोग करके प्रमाप विचलन कर लिया जाता है।

(I) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma dx}{N}\right)^2}$$

(II) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2x}{N} - (\overline{x} - A)^2}$$

(III) $$\sigma = \frac{1}{N}\sqrt{\Sigma d^2 \times N - (\Sigma dx)^2}$$

(IV) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2 X - N(\overline{X} - A)^2}{N}}$$

उपरोक्त चारो सूत्रो मे से तीसरा सूत्र (III) सबसे सरल व लोकप्रिय है। अत इसी सूत्र का अधिकतर प्रयोग किया जाता है। प्रयुक्त सकेतो का स्पष्टीकरण निम्न है।

σ = प्रमाप विचलन (Standard Deviation)

Σdx = कल्पित माध्य से लिये गये विचलनो का योग (Sum of deviation from assumed mean)

Σd^2x = कल्पित माध्य से लिये गये विचलनो के वर्गों का योग (Sum of squares of deviation from assumed mean)

N = पदो की कुल सख्या (Total No of items)

A = कल्पित माध्य (Assumed mean)

$\overline{x}$ = समान्तर माध्य (Arithmatic mean)

वैकल्पिक रीति -- व्यक्तिगत श्रेणी मे प्रमाप विचलन व्यक्तिगत मूल्यो के आधार (A = O मान कर) पर भी किया जा सकता है। इस रीति के अन्तर्गत सबसे पहले सभी मूल्यो का वर्ग (x^2) ज्ञात किया जाता है तथा उनका योग (Σx^2) किया जाता है वर्गों का माध्य ज्ञात करने हेतु वर्गों के योग (Σx^2) को पदो की कुल सख्या (N) से विभाजित किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त ($\frac{\Sigma x^2}{N}$) मे से श्रेणी के माध्य का वर्ग $(\overline{x})^2$ घटाकर प्राप्त सख्या का वर्गमूल निकाल लिया जाता है और यह वर्गमूल ही समक श्रेणी का प्रमाप विचलन होता है। सूत्रवत्

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N} - (\overline{x})^2}$$

उदाहरण : एक उद्यान के 10 पौधो की निम्नाकित पत्तियो की सख्या के समको से प्रमाप विचलन (S D) निकालिये।

पत्तियो की सख्या 40 45, 45, 48, 51 55 53, 54,, 59, 60

हल :

पत्तियों की सख्या	A = 48 से विचलन	विचलनों के वर्ग	पद मूल्यों के वर्ग
(X)	(dx)	(d^2x)	(x^2)
40	—8	+64	1600
45	—3	9	2025
45	—3	9	2025
48	0	0	2304
51	+3	9	2601
55	+7	49	3025
53	+5	25	2809

54	+ 6	36	2916
59	+ 11	121	3481
60	+ 12	144	3600
510	+ 44 —14 = + 30 $\Sigma dx = +30$	466 $\Sigma d^2x = 466$	$\Sigma (x)^2 = 26386$

$$\bar{x} = \frac{\Sigma x}{N} = \frac{510}{10} = 51$$

विभिन्न सूत्रो के प्रयोग से

(I)
$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma dx}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{466}{10} - \left(\frac{30}{10}\right)^2}$$

$$= \sqrt{46\,6 - 9}$$

$$= \sqrt{37\,6}$$

σ = 6 13 leaves

(II) द्वितीय सूत्र के अनुसार

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2x}{N} - (\bar{x} - A)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{466}{10} - (51 - 48)^2}$$

$$= \sqrt{46\,6 - 9}$$

$$= \sqrt{37\,6}$$

σ = 6 13 leaves

(III) तृतीय सूत्र के अनुसार

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2x - N(\bar{x} - A)^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{466 - 10(51 - 48)^2}{10}}$$

$$= \sqrt{\frac{466 - 90}{10}} = \sqrt{\frac{376}{10}}$$

$$= \sqrt{37\ 6} = 6\ 13 \text{ leaves}$$

∴ $\sigma = 6\ 13$ leaves

(IV) चतुर्थ सूत्र के अनुसार

$$\therefore \sigma = \frac{1}{N}\sqrt{N\Sigma d^2X - (\Sigma dx)^2}$$

$$= \frac{1}{10}\sqrt{466 \times 10 - (30)^2}$$

$$= \frac{1}{10}\sqrt{4660 - 900}$$

$$= \frac{1}{10}\sqrt{3760}$$

$$\sigma = \frac{613}{10} = 6\ 13 \text{ leaves}$$

(V) मूल्यवर्गों के आधार पर

$$\therefore \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N} - (\bar{x})^2} = \sqrt{\frac{26386}{10} - (51)^2}$$

$$= \sqrt{2638\ 6 - 2601} = \sqrt{37\ 6}$$

$\sigma = 6\ 13$ leaves

खण्डित श्रेणी (Discrete series) मे प्रमाप विचलन :--

प्रत्यक्ष रीति (Direct Method) :--

(i) सर्व प्रथम समान्तर माध्य की गणना करते है $(\bar{x})$,

(ii) तत्पश्चात् समान्तर माध्य से विभिन्न पद मूल्यो के विचलन ज्ञात करते है। $d = (x - \bar{x})$

(iii) प्रत्येक विचलन का वर्ग निकालते है (d^2).

(iv) विचलन के वर्गों को उसकी सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करके गुणनफल का योग करते है (Σfd^2)

(v) सूत्र का प्रयोग करते हैं ,

$$\therefore \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$$

सूत्र में –

σ = प्रमाप विचलन (*Standard Deviation*)

Σfd^2 = विचलन वर्गों व सम्बन्धित आवृत्ति के गुणन फलो का योग (Sum total of products of squares & frequencies)

N = आवृत्तियो का योग (Total No of Frequencies)

लघु रीति (*Shortcut Method*) :--

यदि समान्तर माध्य पूर्णांक मे न होकर दशमलवाँक मे हो तो लघु रीति द्वारा प्रमाप विचलन की गणना अपेक्षा कृत सरल होती है, इसकी गगना निम्न प्रकार से की जाती है :--

(1) समको मे से किसी मूल्य को कल्पित माध्य (A) मान लेते है ।

(2) कल्पित माध्य (A) से विभिन्न मूल्यो के विचलन ले लेते है $dx = (x-A)$

(3) विचलनो को सम्बन्धित आवृत्तियो से गुणा करके गुणन फल का योग (Σfdx) प्राप्त कर लेते है ।

(4) विचलनो व आवृत्तियो के गुणन फल (fdx) को पुन विचलनो से गुणा करके प्राप्त गुणनफल (fd^2x) का योग (Σfd^2x) भी लिया जाता है ।

(5) अन्त मे निम्न सूत्रो मे से किसी एक का प्रयोग करके प्रमाप विचलन ज्ञात कर सकते है ।

1) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$$

2) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - (\bar{x} - A)^2}$$

3) $$\sigma = \frac{1}{N}\sqrt{\Sigma fd^2x.N - (\Sigma fdx)^2}$$

4) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x - N(\bar{x} - A)^2}{N}}$$

उदाहरण : निम्नांकित समको से प्रमाप विचलन की गणना दोनो रीतियो से करिये ।

पौधो की ऊँचाई (cm) (x)	10	20	30	40	50	60	70
आवृत्ति (f)	1	5	11	15	13	4	1

हल :–

प्रमाप विचलन की प्रत्यक्ष विधि से गणना

पौधों की ऊँचाई (cm) (x)	आवृत्ति (f)	विचलन $\bar{x}$ = 40 से (d)= $(x-\bar{x})$	विचलन का वर्ग (d^2)	विचलन × आवृत्ति fd^2	fx
10	1	– 30	900	900	10
20	5	– 20	400	2000	100
30	11	– 10	100	1100	330
40	15	0	00	000	600
50	13	+ 10	100	1300	650
60	4	+ 20	400	1600	240
70	1	+ 30	900	900	70
Total	50		2800	7800	2000

$$\bar{x} = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{2000}{50} = 40$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N}} = \sqrt{\frac{7800}{50}} = \sqrt{156}$$

$$\sigma = \sqrt{156}$$

$$\sigma = 12489 \text{ cm}$$

प्रमाप विचलन की लघुरीति से गणना

Size (x)	Frequency (f)	deviation from A=30 (dx)	deviation × Freq. (fdx)	fdx.dx (fd^2x)	Suare of (x) $(X)^2$	Freq. × $(x)^2$ (fx^2)
10	1	— 20	— 20	400	100	100
20	5	— 10	— 50	500	400	2000
30	11	0	0	00	900	9900
40	15	+ 10	+ 150	1500	1600	24000
50	13	+ 20	+ 260	5200	2500	32500
60	4	+ 30	+ 120	3600	3600	14400
70	1	+ 40	+ 40	1600	4900	4900
Total	50		500	12800	14000	87800

$$\bar{x} = A + \frac{\Sigma fdx}{N} = 30 + \frac{500}{50} = 40$$

विभिन्न सूत्रों द्वारा प्रमाप विचलन की गणना

1) S $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N}} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2 = \sqrt{\frac{12800}{50} - \left(\frac{500}{50}\right)^2}$

$= \sqrt{\frac{1280}{5}} - (10)^2$

$= \sqrt{256 - 100}$

$= \sqrt{156} = 12\,489$ cm

2) S $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - (\bar{x} - A)^2} = \sqrt{\frac{12800}{50} - (40 - 30)^2}$

$= \sqrt{256 - 100} = \sqrt{156} = 12\,489$

S $\sigma = 12\,489$ cm

3) S $\sigma = \frac{1}{N}\sqrt{\Sigma fd^2x.N - (\Sigma fdx)^2}$

$= \frac{1}{50} \sqrt{12800 \times 50} - (500)^2$

$= \frac{1}{50} \sqrt{640000 - 250000}$

$= \frac{1}{50} \sqrt{390000}$

$= \frac{624\,49}{50} = 12\,489$ cm

S $\sigma = 12\,489$ cm

4) S $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x - N(\bar{x} - A)^2}{N}}$

$= \sqrt{\frac{12800 - 50(40 - 30)^2}{50}}$

$= \sqrt{\frac{12800 - 5000}{50}}$

$= \sqrt{\frac{7800}{50}} = 12\,489$

S $\sigma = 12\,489$ cm

सतत श्रेणी (Continuous series) में प्रमाप विचलन :--

सतत श्रेणी मे प्रमाप विचलन ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम विभिन्न वर्गों के मध्य बिन्दु (Mid point) ज्ञात कर लिये जाते है। मध्य बिन्दु के परिकलन से सतत श्रेणी, खण्डित श्रेणी मे परिवर्तित हो जाती है अत. प्रमाप विचलन की गणना के लिए शेष क्रिया व सूत्र वही प्रयुक्त होते है जो कि खण्डित श्रेणी हेतु प्रयोग मे लाये जाते है। सतत श्रेणी मे एक अतिरिक्त सूत्र जो कि पद विचलनो पर आधारित है का भी प्रयोग किया जाता है। सतत श्रेणी मे प्रमाप विचलन निम्न विधियो द्वारा ज्ञात किया जाता है .--

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)
(2) लघु विधि (*Shortcut Method*)
(3) पद विचलन विधि (*Step Deviation Method*)
(4) योग विधि (Summation Method)

(1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) :--

सर्व प्रथम समान्तर माध्य ($\overline{x}$) की गणना की जाती है तत्पश्चात् मध्य बिन्दु (Mid point) मे से माध्य को घटाकर विचलन ज्ञात करते है। विचलन का वर्ग करके उसे उसकी आवृत्ति से गुणा किया जाता है और

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$ का प्रयोग करते है

जहाँ

σ = Standard Deviation

Σfd^2 = आवृत्ति और विचलन वर्गों के गुणन फलो का योग

N = कुल आवृत्ति

लघु विधि (*Shortcut Method*) :-- *सतत् श्रेणी मे प्रमाप विचलन की परिगणना हेतु लघु रीति मे उन्ही सूत्रो मे से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है जिनका प्रयोग खण्डित श्रेणी मे किया जाता है। गणना मे मध्य बिन्दु का प्रयोग करते है।*

प्रथम सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$

द्वितीय सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - (\overline{x} - A)^2}$

तृतीय सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x - N(\overline{x} - A)^2}{N}}$

चतुर्थ सूत्र $\sigma = \frac{1}{N}\sqrt{\Sigma fd^2x.N - (\Sigma fdx)^2}$

उदाहरण :-- पिटूनिया के निम्न समको से प्रमाप विचलन तथा उनके गुणाँक की परिगणना करिए --

No of Flowers	0—2	2—4	4—6	6—8	8—10
No of Plants	2	5	15	7	1

Solution **Calculation of S D by Direct Method**

No. of Flowers	No of Plants	Mid value	Deviation from $\overline{x}$ = 5	Sq of Deviation	Product of f.d²	f.x	Square of mid value	f.x²
(X)	(f)	(X)	(d)	(d²)	(fd²)	(fx)	(x²)	(fx²)
0—2	2	1	— 4	16	32	2	1	2
2—4	5	3	— 2	4	20	15	9	45
4—6	15	5	0	0	0	75	25	375
6—8	7	7	+ 2	4	28	49	49	343
8—10	1	9	+ 4	16	16	9	81	81
Total	30	—	—	40	96	150	165	846

$$\overline{x} = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{150}{30} = 5 \text{ flowers}$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{96}{36}} = \sqrt{3.2}$$

$$\sigma = \sqrt{3.2}$$

$$\sigma = 1\,788 \text{ Flowers}$$

Coefficient of S.D $= \frac{\sigma}{\overline{X}}$

$= \frac{1\,788}{5} = 0.357$

Calculation by Short Cut Method

Flowers (X)	M V (X)	No of Plants (f)	Deviation from A = 7 (dx)	Product of f & dX	Product of fdx & dx	Square of (X)	Product of f & (x²)
(X)	(X)	(f)	(dx)	(fdx)	(fd²x)	(x²)	(fx²)
0—2	1	2	— 6	— 12	72	1	2
2- 4	3	5	— 4	— 20	80	9	45

4—6	5	15	—2	—30	60	25	375
6—8	7	7	0	0	0	49	343
8—10	9	1	+2	+2	4	81	81
Total	—	30	—10	—60	216	165	846

$$\overline{x} = A + \frac{\Sigma fdx}{N} \quad 7 + \frac{-60}{30} = 7 - 2 = 5$$

$$\overline{x} = 5 \text{ Flowers}$$

Standard Deviation

1) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{216}{30} - \left(\frac{-60}{30}\right)^2}$$

$$= \sqrt{7.20 - (2)^2} - (2)^2 = \sqrt{3.2} = 1\ 788$$

$$\sigma = 1\ 788 \text{ Flowers}$$

2) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x}{N} - (\bar{x} - A)^2} - \sqrt{\frac{216}{30} - (5 - 7)^2}$$

$$= \sqrt{7.2 - (-2)^2} = \sqrt{3.2} = 1\ 788 \text{ Flowers}$$

3) $$\sigma = \frac{1}{N}\sqrt{\Sigma fd^2x.N - (\Sigma fdx)^2}$$

$$= \frac{1}{30}\sqrt{216 \times 30 - (-60)^2} = \frac{1}{30}\sqrt{6480 - 3600}$$

$$= \frac{1}{30}\sqrt{2880}$$

$$= \frac{1}{30} \times 53\ 66 = 1\ 788 \text{ Flowers}$$

4) $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x - N\ (\overline{x} - A)^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{216 - 30\ (5 - 7)^2}{30}}$$

$$= \sqrt{\frac{216 - 120}{30}} = \sqrt{\frac{096}{30}} = \sqrt{32}$$

$= 1788$ Flowers

Coefficient of Standard Deviation $= \frac{\sigma}{\bar{x}}$

$$= \frac{1788}{5} = 03576$$

(3) पद विचलन विधि (Step Deviation Method) :-- यदि वर्ग-विस्तार समान हो तो कल्पित मध्य बिन्दु से विचलन ज्ञात करते वक्त समान वर्ग विस्तार के बराबर समापवर्तक (Common factor) निकाल लेते है। अन्य सभी क्रियाऐं प्रमाप विचलन की लघु विधि समान ही होती है।

सूत्र $\sigma = \iota \times \sqrt{\frac{\Sigma fd^2x'}{N} - \left(\frac{\Sigma fdx'}{N}\right)^2}$

सूत्र मे $= \iota =$ समापवर्तक (Common factor) है।

(4) योग विधि (Summation Method) :-- यदि वर्ग विस्तार (Class interval) समान हो तो प्रमाप विचलन की परिगणना योग विधि द्वारा भी की जा सकती है। गणना क्रिया निम्नानुसार है।

(i) पहले सचयी आवृत्तियाँ (Cumulative frequencies) बनाकर उनका जोड अर्थात् प्रथम सचयी योग (First cumulation total = $\Sigma cf1$) निकाल लेते है फिर इस योग को कुल आवृत्तियो से विभाजित कर F1 प्राप्त कर लेते है।

$$F_1 = \frac{\Sigma cf_1}{N} \quad \text{या} \quad \frac{\text{प्रथम सचयी योग}}{\text{आवृत्तियो का योग}}$$

(ii) इसी प्रकार सचयी आवृत्तियो के आधार पर द्वितीय सचयी योग (Second cumulation total = $\Sigma cf2$) निकाल लेते है। इस योग मे कुल आवृत्तियो का भाग देकर F2 प्राप्त करते है।

$$F_2 = \frac{\Sigma cf_2}{N} \quad \text{या} \quad \frac{\text{द्वितीय सचयी योग}}{\text{आवृत्तियो का योग}}$$

(iii) निम्न सूत्र का प्रयोग कर प्रमाप विचलन ज्ञात करते है।

$$\sigma = \iota \times \sqrt{2F_2 - F_1 - (F_1)^2}$$

यहाँ $\sigma =$ Standard Deviation

i = Class interval (वर्ग विस्तार)

F_1 = First cumulation total divided by total no of items

F_2 = Second cumulation total divided by total no of items

व्यवहार मे इस रीति का प्रयोग बहुत कम किया जाता है ।

उदाहरण :-- निम्न आवृत्ति वितरण मे प्रमाप विचलन (i) पद विचलन व (ii) योग विधि द्वारा ज्ञात करिये

Age (yrs)	1—5	6—10	11—15	16—20	21—25	26—30
No of Plants	2	3	7	10	5	3

हल . --

Age (Yrs)	M V	Freq	By Step Deviation			By Summation	
	(X)	(f)	(d'X) A = 13 i = 5	fdx'	fd^2x'	First cumulation cf_1	Second cumulation cf_2
1—5	3	2	—2	—4	8	2	2
6—10	8	3	—1	—3	3	5	7
11—15	13	7	0	0	0	12	19
16—20	18	10	+1	10	10	22	41
21—25	23	5	+2	10	20	27	68
26—30	28	3	+3	9	27	30	98
Total	—	30	—	22	68	98	235

प्रमाप विचलन पद विचलन विधि द्वारा

$$\sigma = \frac{i}{N}\sqrt{\Sigma fd^2x' . N - (\Sigma fdx')^2}$$

$$= \frac{5}{30}\sqrt{68 \times 30 - (22)^2}$$

$$= \frac{5}{30}\sqrt{2040 - 484} = \frac{5}{30}\sqrt{1556}$$

$$= \frac{5}{30} \times 39.45 = 6.57 \ yrs$$

σ = 6.57 yrs

योग विधि द्वारा प्रमाप विचलन

$$F_1 = \frac{\Sigma cf_1}{\Sigma f} = \frac{98}{30} = 3\,267$$

$$F_2 = \frac{\Sigma cf_2}{\Sigma f} = \frac{235}{30} = 7\,833$$

$$\sigma = i \times \sqrt{2F_2 - F_1 - (F_1)^2}$$

$$= 5 \times \sqrt{2 \times 7\,833 - 3\,267 - (3\,267)^2}$$

$$= 5 \times \sqrt{15\,666 - 3\,267 - 10\,673}$$

$$= 5 \times \sqrt{1\,726}$$

$$= 5 \times 1\,314$$

$$= 6\,57 \text{ yrs}$$

विचरण गुणाँक (Coefficient of variation) :-- विचरण गुणाँक एक सापेक्ष माप (Relative measure) है । इसका प्रतिपादन कार्ल पियरसन (Karl Pearson) ने 1895 मे किया था । अत इसे कार्ल पियरसन का विचरण गुणाँक भी कहते है । कार्ल पियरसन के अनुसार "विचरण गुणाँक माध्य मे होने वाला प्रतिशत विचरण है जबकि प्रमाप विचलन को माध्य मे होने वाला सम्पूर्ण विचरण माना जाता है ।"

दो या अधिक श्रेणियो मे अपकिरण की मात्रा की तुलना करने के लिए विचरण गुणाँक का प्रयोग किया जाता है । विचरण गुणाँक ज्ञात करने हेतु प्रमाप विचलन के गुणाँक को 100 से गुणा कर देते है तो यह विचरण गुणाँक कहलाता है ।

सूत्रानुसार :--

$$\text{Coefficient of variation} = \frac{\sigma}{\bar{x}} \times 100$$

प्रमाप विचलन के गुण (Merits of Standard Deviation)

(1) **समस्त पदों पर आधारित : --** प्रमाप विचलन श्रेणी के समस्त पदो पर आधारित होता है ।

(2) **निश्चित व स्पष्ट माप :--** प्रमाप विचलन स्पष्ट व निश्चित माप है । इसे प्रत्येक स्थिति मे मापा जा सकता है ।

(3) **प्रतिचयन परिवर्तनों का न्यूनतम प्रभाव :--** आकस्मिक परिवर्तनो का सबसे कम प्रभाव पड़ता है ।

(4) **उच्चतर बीज गणितीय अध्ययन में प्रयोग :--** प्रमाप विचलन की गणना के लिए विचलनो के वर्ग बनाये जाते है, फलस्वरुप सभी पद धनात्मक हो जाते हैं । अत इसका अग्रिम विवेचन भी किया जा सकता है ।

(5) **उपयोगिता:–** विभिन्न श्रेणियो के विचरणशीलता की तुलना करने, मापो की अर्थपूर्णता की जाँच करने, वितरण सीमाऐं निर्धारित करने आदि मे प्रमाप विचलन अपकिरण का सवश्रेष्ठ माप माना जाता है।

(6) **निर्वचन की सुविधा:–** निर्वचन की सुविधा के कारण श्रेणी की आकृति को समझना सरल होता है।

प्रमाप विचलन के दोष (*Demerits of S.D.*)

(1) **जटिल परिगणना :–** प्रमाप विचलन की गणना क्रिया अपेक्षाकृत कठिन व जटिल है। क्योंकि इसमे विचलनो के वर्ग और फिर उसके औसत का वर्गमूल ज्ञात करना सरल गणितीय क्रिया नही है।

(2) **चरम मूल्यों से प्रभावित : –** प्रमाप विचलन पर चरम पदो का अधिक प्रभाव पड़ता है। क्योंकि इसे ज्ञात करने मे मूल्यो के विचलन लिये जाते है और फिर उन विचलनो के वर्ग ज्ञात किये जाते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

(1) अपकिरण की परिभाषा दीजिए तथा इसके विभिन्न माप लिखिये।

(2) अपकिरण के मापो के रूप मे विस्तार, माध्य विचलन और प्रमाप विचलन के गुण व दोषो की विवेचना करिये।

(3) माध्य विचलन व प्रमाप विचलन की तुलना करिये।

(4) सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

(a) अपकिरण गुणाँक (*Coefficient of Dispersion*)

(b) विचरण गुणाँक (Coefficent of variation)

(c) प्रसरण (Variance)

(5) एक कृषक के उत्पादन सम्बन्धी निम्न समको से मध्यका, माध्य विचलन तथा उसके गुणाँक का परिकलन करिये।

(a) 3000 Q, 4000, 4200, 4400, 4600, 4800, 5800 Q

(b) 4000 Q. 4200: 4,400: 4600: 4,800 Q

उत्तर (a) $M = 4400; \delta M = 571.41$, C of $\delta M = 0.129$

(b) $M = 4400; \delta M = 240$, C of $\delta M = 0.055$

(6) एक क्यारी मे विभिन्न साईज के पौधे निम्न आवृत्ति बटन मे पाये जाते है तो उनका माध्य विचलन एवन् उसके गुणाँक की गणना करिये।